

भाषा
जुलाई-अगस्त 2026

आई. एस. एस. एन.
0523-1418

आषाढ़-श्रावण-भाद्रपद
विक्रम संवत् 2083

वर्ष 1961 से निरंतर प्रकाशित
अंक 326, वर्ष 65

भाषा

जुलाई-अगस्त 2026



केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों/रचनाकारों हेतु दिशानिर्देश संबंधी नियमावली

1. 'भाषा' पत्रिका में मुख्य रूप से भारतीय भाषाओं पर आधारित भाषावैज्ञानिक, शोधपरक, साहित्यिक, तुलनात्मक साहित्य तथा अनूदित रचनाओं को प्राथमिकता दी जाएगी। इसके अलावा प्रवासी साहित्य तथा समसामयिक विमर्शों (स्त्री/दलित/आदिवासी आदि) पर भी लेख प्रकाशित किए जाएंगे।
2. रचनाकारों से प्लेगरिज्म संबंधी वचनबद्धता अनिवार्य है।
3. लेखों में संदर्भ-सूची देना अनिवार्य है। संबंधित संदर्भ प्रत्येक पृष्ठ के नीचे अंकित होने चाहिए।
4. समीक्षा केवल दो वर्ष पुरानी पुस्तकों की ही प्रकाशित की जाएगी। समीक्षा हेतु पुस्तक की दो प्रतियाँ ली जाएँगी। स्वतः की गई समीक्षा को प्रकाशित किए जाने के लिए संपादन-मंडल बाध्य नहीं है।
5. 'भाषा' पत्रिका में केवल केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक वर्तनी का प्रयोग ही किया जाएगा।
6. पत्रिका में प्रकाशन हेतु हस्तलिखित रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाएँगी। हस्तलिखित रचनाएँ प्राप्त होने की स्थिति में रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी।
7. 'भाषा' में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ अनिवार्य रूप से टंकित रूप में यूनिकोड फॉन्ट में ही स्वीकार की जाएँगी।
8. लेख सामान्यतः फुलस्केप आकार के दस पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए। लेख इत्यादि भेजते समय इस आशय का प्रमाण-पत्र भी भेजा जाए कि रचना मौलिक तथा अप्रकाशित है तथा किसी भी रूप में अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुई है।
9. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है।
10. 'भाषा' पत्रिका में प्रकाशित अंकों से संबंधित लेखकों/रचनाकारों/पाठकों की टिप्पणियाँ तथा सुझावों को पत्रिका के अंत में 'आपने लिखा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाएगा।
11. पत्रिका की ई-प्रति पीडीएफ स्वरूप में यथासमय निदेशालय की आधिकारिक वेबसाइट (www.chdpublication.education.gov.in) पर अपलोड की जाएगी।
12. सामग्री के प्रकाशन के संबंध में प्रधान संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा पत्रिका, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066



भाषा

जुलाई—अगस्त 2026

॥ उंन मः सिद्धां अत्राह्म उंरुक्क व

प्रधान संपादक

हितेंद्र कुमार मिश्र

परामर्श मंडल

बल्देव भाई शर्मा

ए. अच्युतन

कुमुद शर्मा

ओकेन लेगो

भगवान त्रिपाठी

बलराम

प्रत्यूष दुबे

संपादक

नूतन पाण्डेय

संपादक मंडल

प्रदीप कुमार ठाकुर

रमना

रामअवतार

कार्यालयीन व्यवस्था

विक्रान्त हुड्डा

संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)

वर्ष : 65 अंक : 4 (326)

© भारत सरकार

जुलाई-अगस्त 2026

संपादकीय कार्यालय

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

उच्चतर शिक्षा विभाग

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम

नई दिल्ली-110066

वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in / www.chd.education.gov.in

ई-मेल : bhashaunit@gmail.com दूरभाष : 011-20862356

बिक्री केंद्र 1

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 दूरभाष : 011-20862356 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

बिक्री केंद्र 2 :

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054, वेबसाइट : www.deptpub.gov.in, ई-मेल : acop-dep@nic.in दूरभाष : 011-23817823/ 9689 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

निर्देश :

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) 211766 JR.ADMN. OFFICER CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया ऊपर दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भेजें।
3. 'भाषा' पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :		(डाकखर्च सहित)
1. एक प्रति का मूल्य	= रु. 100.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	= रु. 500.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	= रु. 2500.00	
4. दसवर्षीय सदस्यता शुल्क	= रु. 5000.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

भाषा पत्रिका में प्रकाशित सामग्री का पुनर्प्रकाशन तथा पत्रिका की अनधिकृत बिक्री करना गैरकानूनी है।

आवरण चित्र: श्री सिद्धेश्वर, हनुमान नगर, कंकडबाग, पटना

अनुक्रमणिका

प्रधान संपादक की कलम से
संपादकीय

धरोहर

1. माता का आंचल

शिवपूजन सहाय

9

स्मृति शेष

2. बशीर बद्र: बिछड़ने के बाद भी
हमारे साथ

शिवकुमार बिलगरामी

19

आलेख

3. सामाजिक पुनर्जागरण में संत रैदास
के विचारों की प्रासंगिकता

अनिल राय

25

4. 'फीजी हिंदी' और आयातित विदेशी
शब्दावली

विमलेश कांति वर्मा

34

5. दीवार के पीछे से आधा दिखता आदमी

हेमन्त कुकरेती

56

6. अवधी का वैभव और 'पद्मावत'

शारदा द्विवेदी

66

7. राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भाषा

प्रत्यूष दुबे

72

8. विद्यापति का सामाजिक-राजनीतिक
दर्शन व भारतीय लोकजीवन की
जीवंतता

सुजीत ठाकुर

77

9. 'सरस्वती' की देश चिंता

रवि रंजन पाण्डेय

87

10. बज्जिका भाषा के साहित्य में
राष्ट्रीय-चेतना

विनोद कुमार सिन्हा

96

11. भाषा प्रौद्योगिकी एवं भारतीय भाषाएँ:
विकास, चुनौतियाँ और संभावनाएँ

राम किशोर

105

12. तुलसीदास के काव्य में 'भायप' भक्ति

अमन कुमार

112

13. छत्तीसगढ़ के कमार जनजातीय समूह
की 'कमारी' बोली का क्रिया-रूप

जयपाल सिंह प्रजापति

124

14. असमिया लोकसाहित्य में भारतीयता के रंग

नीतामणि बरदलै

134

यात्रा वृत्तांत

15. दमण की काली रेत और लहरों
के सानिध्य में

कुबेर कुमावत

140

कहानी

16. प्रेरणा (असमिया/हिंदी)

मूल व अनुवाद—हरि लुईटेल
(उपाध्याय)

147

17. नक्शा (पंजाबी/हिंदी)

मूल व अनुवाद—
जगतारजीत सिंह

154

18. मिट्टी की खुशबू

पुष्पेश कुमार 'पुष्प'

160

19. दादा जी कविता	देवेन्द्र कुमार मिश्रा	163
20. सरकारी नौकरी (तमिल / हिंदी)	मूल-एस. वीरापांडियन अनुवाद— पी सरस्वती	170
21. माचिस की तीली (बांग्ला / हिंदी)	मूल-सुकांत भट्टाचार्य अनुवाद— नीलम शर्मा 'अंशु'	174
22. उचित शब्द की तलाश में	राजेन्द्र उपाध्याय	178
23. जोग लिखी पाती	शैलेन्द्र चौहान	180
परख		
24. सिक्किम: लोकजीवन और संस्कृति (सिक्किम: लोकजीवन और संस्कृति— वीरेन्द्र परमार)	राम प्रकाश यादव	182
25. समकालीन संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति: 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' (उम्मीद की तरह लौटना तुम—पंकज सुबीर)	सिद्धेश्वर	186
26. शब्द सजगता से भाषिक—संपन्नता तक (शब्द संधान—कमलेश कमल)	सुशांत कुमार पाण्डेय	193
27. सहज अनुभवों का संचय : पृथ्वी घूम रही है (पृथ्वी घूम रही है— उमाकांत खुबालकर)	श्यामसुंदर पाण्डेय	197
आपने लिखा		204
सदस्यता फॉर्म		206

प्रधान संपादक की कलम से

मुंशी प्रेमचंद ने अपने लेख 'साहित्य का उद्देश्य' में लिखा है कि 'भाषा साधन है, साध्य नहीं। अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया था, वह क्योंकर पूरा हो।' प्रेमचंद की इन पंक्तियों से यह सहज ही पता चल जाता है कि हिंदी भाषा अपनी विकासयात्रा के क्रम में उस मंजिल तक पहुँच चुकी है, जहाँ वह अखिल भारतीय स्तर पर समूचे भारत का प्रतिनिधित्व कर सकती है। हालाँकि प्रेमचंद यह बात उस समय कह रहे हैं जब स्वतंत्रता आंदोलन अपने चरम पर है। इस समय हिंदी साहित्य में छायावाद और राजनीतिक परिदृश्य में महात्मा गांधी छाए हुए हैं। किंतु ध्यान देने की बात यह है कि प्रेमचंद हिंदी भाषा की भूमिका को लेकर कितने सचेत हैं। उनका आशय यही है कि भाषा के माध्यम से हम उन भावों को महत्त्व दें जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है एवं मानव हृदय का परिष्कार कर उसे देशहित के लिए आत्मोत्सर्ग हेतु प्रेरित करती है।

आज जब हम प्रेमचंद के निधन के 90 वर्षों बाद के भारत को देखते हैं तो यह परिलक्षित होता है कि भारत और उसकी सभी भारतीय भाषाएँ कृतसंकल्पित होकर एक 'नए' और 'विकसित' भारत के निर्माण की ओर अग्रसर हैं। यह भावना स्वयं में महत्त्वपूर्ण है। शायद प्रेमचंद का आशय इसी तरह के 'भावों' को आगे बढ़ाने की तरफ होगा। एक तरह से वे उस समय राष्ट्रीय साहित्यिक जागरण की बात कर रहे थे। आज इसी राष्ट्रीय जागरूकता की पुनः आवश्यकता है और इसका हेतु बनेंगी हिंदी और भारतीय भाषाएँ। केंद्रीय हिंदी निदेशालय भी भारतीय भाषाओं के माध्यम से इसी दिशा में नवोत्थान हेतु प्रयासरत है। इस क्रम में वह अखिल भारतीय स्तर पर भारतीय भाषाओं पर केंद्रित विभिन्न राष्ट्रीय आयोजनों के माध्यम से विभिन्न भारतीय भाषाओं के मध्य सामंजस्य स्थापन का प्रयास कर रहा है। 'भाषा' पत्रिका का यह अंक भी इसी प्रयास की एक कड़ी है। प्रस्तुत अंक में ऐसे कई वैचारिक लेख हैं, जो भारतीय भाषाओं पर केंद्रित हैं। इसके अंतर्गत वे भाषाएँ भी अंतर्निहित हैं जिनकी अपनी एक समृद्ध भाषाई परंपरा है, भले ही वे स्थानीय भाषाओं के रूप में विद्यमान हैं। केवल किसी अनुसूची मात्र में शामिल न होने से उनका महत्त्व कम नहीं हो जाता। वे भी असल में भारत की आत्मा से जुड़ी भारतीय भाषाएँ हैं। यही कारण है कि 'भाषा' में हम भारतीय भाषाओं की

कृतियों को विशेष महत्त्व देते हैं, जो हमारी राष्ट्रीय एकता के धागे को मजबूती प्रदान करती हैं। उनमें भी भारतीयता के वही तत्त्व मौजूद हैं, जो अन्य भारतीय भाषाओं में गुंफित हैं।

‘भाषा’ पत्रिका भारतीय भाषाओं की एक आवश्यक पत्रिका है। अपने कलेवर में साहित्य के साथ-साथ विभिन्न भाषाओं के मध्य समानता के सूत्रों की तलाश करना इसका एक मुख्य प्रयोजन है जिससे राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक समरसता एवं सौहार्द का भावोत्पादन हो सके। उम्मीद करता हूँ कि पत्रिका का यह अंक आपकी उम्मीदों पर खरा उतरेगा। इस अंक में ‘देहाती दुनिया’ उपन्यास के प्रकाशन के सौ वर्ष पूरे होने के अवसर पर ‘धरोहर’ शीर्षक के अंतर्गत उक्त उपन्यास के एक अंश को प्रकाशित किया जा रहा है। इस अंक को आप सभी पाठकों तक पहुँचाने में कर्मरत भाषा एकक की समस्त टीम के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ। आपके बहुमूल्य सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी। 80वें स्वतंत्रता दिवस के पुनीत अवसर पर आप सभी को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ। जय हिंद!



(हितेंद्र कुमार मिश्र)

संपादकीय

“हितेन सह सहितं साहित्यं”— अर्थात् जो समस्त लोक के हित का वाहक हो, वही साहित्य है। साहित्य को केवल शब्दों का संयोजन नहीं, बल्कि मनुष्य की चेतना, अनुभवों, संवेदनाओं, संघर्षों, सपनों और उनको पूर्ण करने की प्रक्रिया में आगे बढ़ने का सकारात्मक और सर्वाधिक विश्वसनीय उपक्रम कहा जा सकता है। साहित्य समय का साक्षी होने के साथ-साथ समय का मार्गदर्शक, समय का निर्माता और समय का प्रहरी भी है। प्रत्येक युग में साहित्य ने समाज को उसके यथार्थ से परिचित कराया है, उसे आत्मावलोकन की दृष्टि दी है और भविष्य के निर्माण के लिए प्रेरित किया है। यही कारण है कि साहित्य केवल सौंदर्य का उत्सव नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर निहित मानवीय गुणों का उद्बोधक भी है। हम चाहें कितना भी भौतिकतावादी हो जाएँ लेकिन हमें स्वीकारना ही होगा कि सभ्यताओं का उत्थान केवल आर्थिक समृद्धि से नहीं, बल्कि वहाँ के नागरिकों के हृदय में बसने वाली उनकी संवेदनशीलता से होता है। जहाँ संवेदना जीवित रहती है, वहाँ संवाद जीवित रहता है; जहाँ संवाद जीवित रहता है, वहाँ लोकतंत्र, मानव और मानवीय गरिमा सुरक्षित रहती है। युग बदलते हैं, राजसत्ताएँ बदलती हैं, विज्ञान और तकनीक नए आयाम प्राप्त करते हैं किंतु साहित्य अपनी मानवीय संवेदना के कारण ही काल की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ प्रत्येक पीढ़ी को दिशा देता रहता है।

जुलाई-अगस्त का यह अंक ऐसे समय में आपके समक्ष उपस्थित है जब विश्व अभूतपूर्व परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल क्रांति और वैश्विक संचार ने जीवन की गति को तीव्र बना दिया है। सूचनाओं का महासागर हमारे सामने है, परंतु प्रश्न यह है कि क्या हम उन सूचनाओं का सकारात्मक उपभोग करने लायक खुद को बना सके हैं? निश्चित ही ज्ञान का विस्तार यदि करुणा, विवेक और नैतिकता से न जुड़ सके तो वह अपूर्ण और रिक्त ही कहा जाएगा और इस रिक्तता को सिर्फ और सिर्फ साहित्य ही भर सकता है।

वर्तमान परिदृश्य में आज साहित्य को भी अनेक चुनौतियों से दो-चार होना पड़ रहा है। पर्यावरण संरक्षण, लैंगिक समानता, सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक मूल्य, वैश्विक शांति, सांस्कृतिक संवाद और मानवीय गरिमा जैसे प्रश्न आज साहित्य के केंद्र में हैं। त्वरित प्रसिद्धि की आकांक्षा, सतही विमर्श, मुँह बाएँ खड़ा अप्रामाणिक सूचनाओं का महासागर, सार्थक विचारों की शून्यता, डिजिटल माध्यमों का जीवन में अनधिकार प्रवेश तथा बाजारवादी प्रवृत्तियाँ साहित्य की गंभीरता को प्रभावित कर रही हैं। ऐसे समय में साहित्यिक शुचिता के प्रश्न पर विचार करना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। इस चुनौती भरे समय में मात्र लिखकर अपने दायित्व की पूर्ति समझ लेना साहित्यकार का कर्तव्य नहीं, उसे लिखने से आगे बढ़ते हुए, तात्कालिक लोकप्रियता से ऊपर उठकर स्थायी मानवीय मूल्यों का संवाहक बनना है। उसे भाषा की मर्यादा, विचार की गरिमा और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करना भी आवश्यक है। उसे समझना है कि शब्दों की शक्ति तभी सार्थक होती है जब वे समाज को जोड़ें, विभाजित न करें; वे चेतना को जागृत करें, उसे भ्रम से आवृत न करें। समय बदलता रहेगा, अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते रहेंगे, परंतु

साहित्यकार का महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक दायित्व तभी पूर्ण होगा जब वह मनुष्य को, विशेषतया युवा पीढ़ी को अधिक मानवीय, अधिक उदार और अधिक उत्तरदायी बनाने में सक्षम हो सकेगा।

यह सब तभी संभव होगा जब हम नई पीढ़ी को साहित्य से जोड़ने का यत्न करें। यदि युवा पीढ़ी केवल सूचना की उपभोक्ता बनकर रह जाएगी और साहित्य से दूर हो जाएगी, तो समाज का भावनात्मक संतुलन प्रभावित होगा। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों, साहित्यिक संस्थाओं और डिजिटल मंचों को मिलकर ऐसी पठन-संस्कृति विकसित करनी होगी जिसमें साहित्य जीवन का स्वाभाविक हिस्सा बने, नई पीढ़ी साहित्य से केवल पाठ्यक्रम के माध्यम से नहीं, बल्कि जीवन के अनुभवों के साथ जुड़े। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के इस युग में भी मौलिक चिंतन, कल्पना और संवेदना का कोई विकल्प नहीं है और इन्हें सबसे अधिक पुष्ट साहित्य ही करता है। साहित्य तब तक जीवंत रहेगा, जब तक समाज अपने अनुभवों को शब्द देने और दूसरों के अनुभवों को आत्मसात् करने की क्षमता बनाए रखेगा।

यह अंक उसी विश्वास का विनम्र विस्तार है। इस अंक में संकलित विविध शोध लेख, विचारपूर्ण रचनाएँ, कहानी, कविता, यात्रावृत्तांत और समीक्षा आदि विविध साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ हैं जो हमारी साझा सांस्कृतिक चेतना की महत्त्वपूर्ण दिशाएँ हैं। हमारा विश्वास है कि यह अंक पाठकों को विचार, संवेदना और संवाद की नई दिशाओं से परिचित कराएगा। भाषा का यह अंक साहित्य के प्रति एक सांस्कृतिक संकल्प-पत्र है। आइए स्वतंत्रता दिवस के पुनीत पर्व पर संकल्प लें कि हम साहित्य को केवल पढ़ने का नहीं, उसे अपने आचरण में उतारने का संकल्प लें, क्योंकि अंततः वही सभ्यता दीर्घजीवी होती है जिसके पास समृद्ध ज्ञान के साथ-साथ जीवित संवेदना भी होती है। शब्द जब लोकमंगल के लिए समर्पित होते हैं, तभी वे साहित्य बनते हैं और साहित्य जब जीवन से जुड़ता है, तभी वह कालजयी होता है।

शुभकानाओं सहित!

नूतन पाण्डेय

नूतन पाण्डेय
(संपादक)

(‘देहाती दुनिया’ उपन्यास से एक अंश)

शिवपूजन सहाय*

(अगस्त 1893—जनवरी 1963)

जहाँ लड़कों का संग, तहाँ बाजे मृदंग
जहाँ बुढ़ों का संग, तहाँ खरचे का तंग

हमारे पिता तड़के उठकर, निबट-नहाकर पूजा करने बैठ जाते थे। हम बचपन से ही उनके अंग लग गए थे। माता से केवल दूध पीने तक का नाता था। इसलिए पिता के साथ ही हम भी बाहर की बैठक में ही सोया करते। वह अपने साथ ही हमें भी उठाते और साथ ही नहला-धुलाकर पूजा पर बिठा लेते थे। हम भभूत का तिलक लगाकर उनको दिक करने लगते थे। कुछ हँसकर, कुछ झुंझलाकर और कुछ डाँटकर वह हमारे चौड़े लिलार में त्रिपुंड कर देते थे। हमारे लिलार में भभूत खूब खुलती थी। सिर में लंबी-लंबी जटाएँ थीं। भभूत रमाने से हम खासे ‘बम-भोला’ बन जाते थे।

पिताजी हमें बड़े प्यार से ‘भोलानाथ’ कहकर पुकारा करते। पर असल में हमारा नाम था ‘तारकेश्वरनाथ’। हम भी उनको ‘बाबूजी’ कहकर पुकार करते और माता को ‘मइयाँ’।

जब बाबूजी रामायण का पाठ करते तब हम उनकी बगल में बैठे-बैठे आइने में अपना मुँह निहारा करते थे। जब वह हमारी ओर देखते तब हम कुछ लजाकर और मुस्कुराकर आइना नीचे रख देते थे। वह मुस्कुरा पड़ते थे।

पूजा-पाठ कर चुकने के बाद वह राम-नाम लिखने लगते। अपने एक ‘रामनामा बही’ पर हजार राम-नाम लिखकर वह उसे पाठ करने की पोथी के साथ बाँधकर रख देते। फिर पाँच सौ बार कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों पर राम-नाम लिखकर आटे की गोलियों में लपेटते और उन गोलियों को लेकर गंगाजी की ओर चल पड़ते थे।

उस समय भी हम उनके कंधे पर विराजमान रहते थे। जब वह गंगा में एक-एक आटे की गोलियाँ फेंककर मछलियों को खिलाने लगते तब भी हम उनके

* हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार, संपादक और प्रतिष्ठित पत्रकार।

कंधे पर ही बैठे-बैठे हँसा करते थे। जब वह मछलियों को चारा देकर घर की ओर लौटने लगते तब बीच रास्ते में झुके हुए पेड़ों की डालों पर हमें बिठाकर झूला झुलाते थे।

कभी-कभी बाबूजी हमसे कुश्ती भी लड़ते। वह शिथिल होकर हमारे बल को बढ़ावा देते और हम उनको पछाड़ देते थे। वह उत्तान पर जाते और हम उनकी छाती पर चढ़ जाते थे। जब हम उनकी लंबी-लंबी मूँछें उखाड़ने लगते तब वह हँसते-हँसते हमारे हाथों से मूँछों को छुड़ाकर उन्हें चूम लेते थे। फिर जब हमसे खट्टा और मीठा चुम्मा माँगते तथा हम बारी-बारी कर अपना बायाँ ओर दाहिना गाल उनके मुँह की ओर फेर देते थे। बायें का खट्टा चुम्मा लेकर जब वह दाहिने का मिठा चुम्मा लेने लगते तब अपनी दाढ़ी या मूँछ हमारे कोमल गालों पर गड़ा देते थे। हम झुँझलाकर फिर उनकी मूँछें नोचने लग जाते थे। इसपर वह बनावटी रोना रोने लगते और हम अलग खड़े-खड़े खिल-खिलाकर हँसने लग जाते थे।

उनके साथ हँसते-खेलते जब हम घर आते तब उनके साथ ही हम भी चौके पर खाने बैठते थे। वह हमें अपने ही हाथ से, फूल के एक कटोरे में गोरस और भात सानकर खिलाते थे। जब हम खाकर अफर जाते तब मइयाँ थोड़ा और खिलाने के लिए हठ करती थी। वह बाबूजी से कहने लगती— आप तो चार-चार दाने के कौर बच्चे के मुँह में देते जाते हैं; इससे वह थोड़ा खाने पर भी समझ लेता है कि हम बहुत खा गये; आप खिलाने का ढंग नहीं जानते—बच्चे को भर-मुँह कौर खिलाना चाहिए।

जब खायेगा बड़े-बड़े कौर

तब पायेगा दुनिया में ठौर

देखिये, मैं खिलाती हूँ। मरदुए क्या जाने कि बच्चों को कैसे खिलाना चाहिए और महतारी के हाथ से खाने पर बच्चों का पेट भी भरता है। यह कह वह थाली में दही-भात सानती और अलग-अलग तोता, मैना, कबूतर, हंस, मोर आदि में बनावटी नाम से कौर बनाकर यह कहते हुए खिलाती जाती कि जल्दी खा लो, नहीं तो उड़ जायेंगे; पर हम उन्हें इतनी जल्दी उड़ा जाते थे कि उन्हें उड़ने का मौका ही नहीं मिलता था।

जब हम सब बनावटी चिड़ियों को चट कर जाते थे तब बाबूजी कहने लगते—अच्छा, अब तुम 'राजा' हो गए, जाओ खेलो।

बस, हम उठकर उछलने-कूदने लगते थे। फिर रस्सी में बँधा हुआ काठ का घोड़ा लेकर नंग-धड़ंग बाहर गली में निकल जाते थे।

जब कभी मइयाँ हमें अचानक पकड़ पाती तब हमारे लाख छटपटाने पर भी एक चुल्लू कड़वा तेल हमारे सिर पर डाल ही देती थी। हम रोने लगते और बाबूजी उस

पर बिगड़ खड़े होते; पर वह हमारे सिर में तेल बोथकर हमें उबटकर ही छोड़ती थी। फिर हमारी नाभि और लिलार में काजल की बिंदी लगाकर चोटी गूँथती और उसमें फूलदार लट्ठू बाँधकर रंगीन कुर्ता-टोपी पहना देती थी। हम खासे 'कन्हैया' बनकर बाबूजी की गोद में सिसकते-सिसकते बाहर आते थे।

बाहर आते ही हमारी बाट जोहनेवाला बालकों का एक झुंड मिल जाता था। हम उन खेल के साथियों को देखते ही, सिसकना भूलकर, बाबूजी की गोद से उतर पड़ते और अपने हमजोलियों के दल में मिलकर तमाशे करने लग जाते थे।

तमाशे भी ऐसे-वैसे नहीं, तरह-तरह के नाटक! चबूतरे का एक कोना ही नाटक-घर बनता था। बाबूजी जिस छोटी चौकी पर बैठकर नहाते थे, वही रंगमंच बनती। उसी पर, सरकंडे के खंभों पर कागज का चँदोआ तानकर, मिठाइयों की दूकान लगाई जाती। उसमें चिलम के खोनचे पर खपड़े के थालों में ढेले के लड्डू, पत्तों की पूरी-कचौरियाँ, गीली मिट्टी की जलेबियाँ, फूटे घड़े के टुकड़ों के बताशे आदि मिठाइयाँ सजाई जातीं। ठीकरों के बटखरे और जस्ते के छोटे-छोटे टुकड़ों के पैसे बनते। हमी लोग खरीदार और हमी लोग दूकानदार! बाबूजी भी दो-चार गोरखपुरिये पैसे से मिठाइयाँ खरीद लेते थे।

थोड़ी देर में मिठाई की दूकान बढ़ाकर हमलोग घरौंदा बनाते थे। धूल की मेंड़ दीवार बनती और तिनकों का छप्पर। दातून के खम्भे, दियासलाई की पेटियों के किवाड़, घड़े के मुहड़े की चूल्हा-चक्की, दीबे की कड़ाही और बाबूजी की पूजावाली आचमनी की कलछी बनती थी। पानी के घी, धूल के पिसान और बालू की चीनी से हमलोग ज्योनार तैयार करते थे। हमी लोग ज्योनार करते और हमी लोगों की ज्योनार बैठती थी। जब पंगत बैठ जाती थी तब बाबूजी भी धीरे-से आकर, पाँत के अन्त में, जीमने के लिए बैठ जाते थे। उनको बैठते देखते ही हम लोग हँसकर और घरौंदा बिगाड़कर भाग चलते थे। वह भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते और कहने लगते-फिर कब भोज होगा भोलानाथ?

कभी-कभी हमलोग बरात का भी जुलूस निकालते थे। कनस्तर का तम्बूरा बजता, अमोले को घिसकर शहनाई बजाई जाती, टूटी चूहेदानी की पालकी बनती, हम समधी बनकर बकरे पर चढ़ लेते और चबूतरे के एक कोने से चलकर बरात दूसरे कोने में जाकर दरवाजे लगती थी। वहाँ काठ की पटरियों से घिरे, गोबर से लिपे, आम और केले की टहनियों से सजाये हुए छोटे आँगन में कुल्हिये का कलसा रखा रहता था। वही पहुँचकर बरात फिर लौट आती थी। लौटने के समय, खटोली पर लाल ओहार डालकर, उसमें दुलहिन को चढ़ा लिया जाता था। लौट आने पर बाबूजी ज्यों ही ओहार उधारकर दुलहिन का मुख निरखने लगते, त्यों ही हमलोग हँसकर भाग जाते।

थोड़ी देर के बाद फिर लड़कों की मंडली जुट जाती थी। इकट्ठा होते ही राय जमती कि खेती की जाय। बस, चबूतरे के छोर पर घिरनी गड़ जाती और उसके नीचे की गली कुआँ बन जाती थी। मूज की बटी हुई पतली रस्सी में एक चुक्कड़ बाँध गराड़ी पर चढ़ाकर लटका दिया जाता और दो लड़के बैल बनकर 'मोट' खींचने लग जाते। चबूतरा खेत बनता, कंकड़ बीज और टेंगा हल—जुआटा। बड़ी मेहनत से खेत जोते, बोये और पटाये जाते। फसल तैयार होते देर न लगती, और हमलोग हाथों—हाथ फसल काट लेते थे। काटते समय गाते थे—

ऊँच नीच में बई कियारी
जो उपजी सो भई हमारी

फसल को एक जगह रखकर उसे पैरों से रौंद डालते थे। कसोरे का सूप बनाकर ओसाते और मिट्टी के दीये के तराजू पर तौलकर राशि तैयार कर देते थे। इसी बीच बाबूजी आकर पूछ बैठते थे—इस साल की खेती कैसी रही भोलानाथ?

बस, फिर क्या, हमलोग ज्यों—का—त्यों खेत—खलिहान छोड़कर हँसते हुए भाग जाते थे! कैसी मौज की खेती थी!

ऐसे—ऐसे नाटक हमलोग बराबर खेला करते थे। बटोही भी कुछ देर ठिठककर हम लोगों के तमाशे देख लेते थे।

जब कभी हमलोग ददरी के मेले में जानेवाले आदमियों का झुण्ड देख पाते तब कूद—कूदकर चिल्लाने लगते थे—

चलो भाइयो ददरी, सातू पिसान की मोटरी

अगर किसी दूल्हे के आगे—आगे जाती हुई ओहारदार पालकी देख पाते, तब खुब जोर से चिल्लाने लगते थे—

रहर में रहर पुरान रहरी
डोला की कनिया हमार मेहरी

इसी पर एक बार एक बूढ़े वर ने हमलोगों को बड़ी दूर तक खदेड़ कर ढेलों से मारा था। उस खूसट खब्बीस की सूरत आज तक हमें याद है। न जाने किस ससुर ने वैसा जमाई ढूँढ निकाला था! वैसा घोड़मुहाँ आदमी हमने कभी नहीं देखा।

आम की फसल में कभी—कभी खूब आँधी आती है। आँधी के कुछ दूर निकल जाने पर हमलोग बाग की ओर दौड़ पड़ते थे। वहाँ चुन—चुनकर घुले—घुले 'गोपी' आम चाबते थे।

एक दिन की बात है, आँधी आई और पट पड़ गई। आकाश काले बादलों से ढक गया। मेघ गरजने लगे। बिजली कौंधने और ठंडी हवा सनसनाने लगी। पेड़ झूमने और जमीन चूमने लगे। हमलोग चिल्ला उठे—

एक पइसा की लाई
बजार में छितराई
बरखा उधरे बिलाई

लेकिन बरखा न रुकी; और भी मूसलाधार पानी होने लगा। हमलोग पेड़ों की जड़ में धड़ से सट गये, जैसे कुत्ते के कान में अँठई चिपक जाती है। मगर बरखा जमी नहीं, थम गई।

बरखा बंद होते ही बाग में बहुत-से बिच्छू नजर आए। हमलोग डरकर भाग चले। हमलोगों में बैजू बड़ा ढीठ था। उसने बड़े ढंग से एक बिच्छू को धागे में बाँधकर लटका लिया। रास्ते भर वह हमलोगों को उससे डरवाता आया। संयोग की बात, बीच में मूसन तिवारी मिल गए। बेचारे बूढ़े आदमी को सूझता कम था। बैजू उनको चिढ़ाकर बोला—

बुढ़वा बेईमान माँगे करैला का चोखा

हमलोग ने भी, बैजू के सुर में सुर मिलाकर यही चिल्लाना शुरू किया। मूसन तिवारी ने बेतहाशा खदेड़ा। हमलोग तो बस अपने-अपने घर की ओर आँधी हो चले।

जब हमलोग न मिल सके तब तिवारीजी सीधे पाठशाला में चले गए। वहाँ से हमको और बैजू को पकड़ लाने के लिए चार लड़के 'गिरफ्तारी वारण्ट' लेकर छूटे। इधर ज्यों ही हमलोग घर पहुँचे त्यों ही गुरुजी के सिपाही हमलोगों पर टूट पड़े। बैजू तो नौ-दो-ग्यारह हो गया; मगर हम पकड़ गए। फिर तो गुरुजी ने हमारी खूब खबर ली, छठी का दूध याद करा दिया!

बाबूजी ने यह हाल सुना। वह दौड़े हुए पाठशाला में आये। गोद में उठाकर हमें पुचकारने और फुसलाने लगे। पर हम दुलराने से चुप होनेवाले लड़के नहीं थे। रोते-रोते उनका कन्धा आँसुओं से तर कर दिया। वह गुरुजी की चिरौरी करके हमें घर ले चले। रास्ते में फिर हमारे साथी लड़कों का झुंड मिला। वे जोर से नाचते और गाते थे—

माई पकाई गरर—गरर पूआ
हम खाइब पूआ, ना खेलब जूआ

फिर क्या था, हम रोना-धोना भूल गए। हम हठ करके बाबूजी की गोद से उतर पड़े और लड़कों की मंडली में मिलकर लगे वही तान-सुर अलापने। तब तक सब लड़के सामनेवाले मकई के खेत में दौड़ पड़े। उसमें चिड़ियों का झुंड चर रहा था। वे दौड़-दौड़कर उन्हें पकड़ने लगे; पर एक भी हाथ न आयी। हम खेत से अलग ही खड़े होकर गा रहे थे—

रामजी की चिरई, रामजी का खेत

खा लो चिरई, भर-भर पेट

हमसे कुछ दूर बाबूजी और हमारे गाँव के कई आदमी खड़े होकर तमाशा देख रहे थे और यही कहकर हँसते थे कि 'चिड़िया की जान जाय, लड़कों का खिलौना'। सचमुच 'लड़के और बन्दर पराई पीर नहीं समझते'।

इतने में बैजू दो गौरैयाँ को पकड़कर लाया ही तो। उसने बड़ी फुर्ती से, अँगौछे से ढँककर, उन्हें पकड़ा था। बस, उसके पीछे-पीछे लड़कों का झुंड चला। कुछ दूर आगे बढ़कर हमलोगों ने उसे घेरा, चिड़ियों को देखना चाहा। मगर वह सबसे सयाना था। झापाटे से उसकी ओर हाथ उठाकर अँगौछा फहरा दिया और कहा, वह देखो, उड़ गई।

हमलोग आसमान ताकने लगे और वह आगे बढ़कर हँसने लगा। पर उसके लाख चक्का देने पर भी हमलोगों ने उसका पिंड न छोड़ा। जब वह चकरबे में पड़ गया तब उसे दिखलाते ही बना। फिर तो लड़के ने चिड़ियों को बंदर के घाव की तरह गींज डाला।

इसपर बैजू बहुत बिगड़ा। वह उन्हें छिपाकर यह कहते हुए ले गया कि जाता हूँ, उन्हें पकाकर खाने। बस, हमलोग निराश होकर उसकी ओर देखते ही रह गये।

अब हमलोगों के मन में इस बात की डाह पैदा हो गई कि अकेले बैजू ही कैसे शिकार खाएगा और हमलोग यों ही रह जाएँगे। यह बात मन में आते ही शिकार खाने के लिए ऐसी जीभ चली कि एक टीले पर जाकर हमलोग चूहों के बिल में पानी उलीचने लगे।

नीचे से ऊपर पानी फेंकना था। हम सब थक गये। तब तक गणेशजी के चूहे की रक्षा के लिए शिवजी का साँप निकल आया। रोते-चिल्लाते हमलोग बेतहाशा भाग चले! कोई औंधा गिरा, कोई अंटाचित्त किसी का सिर फूटा, किसी के दाँत टूटे! सभी गिरते-पड़ते भागे। हमारी सारी देह लहू-लुहान हो गई। पैरों के तलवे काँटों से छलनी हो गए।

हम एक सुर से दौड़े हुए आए और घर में घुस गए। उस समय बाबूजी बैठक के ओसारे में बैठकर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उन्होंने हमें बहुत पुकारा; पर उनकी अनसुनी करके हम दौड़ते हुए मइयाँ के पास ही चले गए। जाकर उसी की गोद में शरण ली।

'मइयाँ' चावल अमनिया कर रही थी। हम उसी के आँचल में छिप गए। हमें डर से काँपते देखकर वह जोर से रो पड़ी और सब काम छोड़ बैठी। अधीर होकर हमारे भय का कारण पूछने लगी। कभी हमें अंग भर कर दबाती और कभी हमारे अंगों को अपने आँचल से पोछकर हमें चूम लेती। बड़े संकट में पड़ गई।

झटपट हल्दी पीसकर हमारे घावों पर थोपी गई। घर में कुहराम मच गया। हम केवल धीमे सुर से 'साँ...साँ...साँ' कहते हुए मइयाँ के आँचल में लुके चले जाते थे। सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। रोंगटे खड़े हो गए थे। हम आँखें खोलना चाहते थे; पर वे खुलती न थीं। हमारे काँपते हुए ओठों को मइयाँ बार-बार निहारकर रोती और बड़े लाड़ से हमें गले लगा लेती थी।

इसी समय बाबूजी दौड़े आये। आकर झट हमें मइयाँ की गोद से अपनी गोद में लेने लगे। पर हमने मइयाँ के आँचल की प्रेम और शांति के चँदोबे की— छाया न छोड़ी। तब बाबूजी उलटे हमीं पर खफा होकर कहने लगे—

मैं बार-बार मना करता था कि बेकार इधर-उधर विललाते मत फिरो; बरसात का दिन है, चारों ओर साँप-बिच्छू का दौर-दौरा है; पर मेरी बात सुनता कौन है? जहाँ पेट में दाने पड़े कि लापता हुए। पाठशाला जाने का नाम सुनकर ही जर चढ़ जाता है।

फिर मइयाँ पर बिगड़कर गरजते हुए बोले— एक लड़का होता है, बात मानता है; पर यह तो इतना हठी हुआ जाता है कि कभी मेरी बातों पर कान ही नहीं देता। जरा-सा कुछ होता जाता है, तो तुम भी सिर पर आसमान उठा लेती हो। अगर मैं डाँट-डपट करता हूँ, तो तुम आकाश-पाताल एक कर डालती हो। लड़का क्या है, नाक का फोड़ा है। लड़के का लाड़-प्यार तो हद-से-हद खाने-पीने और पहनने तक है। पढ़ने-लिखने में लड़के का दुलार करना उसे कौड़ी का तीन बनाना है। तुम्हारी ही करनी से इसकी यह दुर्गति हुई है। लो, अब उसका फल भोगे, रातभर देवी-देवता गुहराती रहो। हाय भूत, हाय प्रेत कह-कहकर मन्नतें मानो, वैद-हकीमों के पैर पूजो, प्रसादी चढ़ाओ। और तो तुम्हारा किया कुछ होगा नहीं, जरा-सी बात पर घर में बैठी-बैठी मुफ्त के आँसू बहाया करो; गया तो मैं।

बाबूजी की बातें सुनते ही मइयाँ झल्ला उठी। बिलखकर बोली— आप मुझपर इतने लाल-पीले क्यों हो रहे हैं? आखिर लड़का ही तो है। बरसात हो या जाड़ा, दिन हो या रात, इसको क्या खबर है? रोज तो खा-पीकर आप ही के साथ रहता है। न जाने आज इसको कैसे कुत्ता काट गया कि दिन-भर पाजी लड़कों के साथ लगा फिरा। मैं तरसती ही रहती हूँ कि तनिक मेरे पास आकर बैठता, मुझसे कुछ भी भर-मुँह बोलता; मगर यह तो आदि से आप ही की नींद सोता जागता और आप ही की बात बोलता-बतराता है। मैं तो जानती भी नहीं कि कब आप इसे पाठशाला भेजते हैं और कब यह वहाँ से आकर क्या करता-धरता है। हाँ, आज तो सुना है कि हत्यारे गुरु ने इसको पकड़वाकर छड़ी से पीटा है। देखती हूँ कि रोते-रोते इसकी आँखें सूज गई हैं। वह गुरु है कि कसाई! उसे क्या ईश्वर ने लड़के-बच्चे नहीं दिए हैं? जान पड़ता है, उसके दिल में तनिक भी नेह-छोह नहीं है। निगोड़े ने ऐसा बेदरद होकर

मारा है कि इसकी पीठ पर छड़ी की साटें उखड़ आई हैं! न जाने आपका कितना पोढ़ कलेजा है कि आपने इसे सटासट छड़ी खाते देखा है! मैं होती, तो उस मुँह—जले का हाथ चूल्हे में झोंक देती। वह होता कौन है जो मेरे बच्चे को दूब की साट से भी छूएगा? मेरी चलती तो मैं हरगिज ऐसे चांडाल गुरु के पास अपने लड़के को न भेजती। मेरा लड़का बिना पढ़े ही रहेगा। जीता बचेगा, तो बहुत पढ़ेगा। मुझे इसकी जिंदगी की भूख है, कमाई की नहीं। सुख से जाता रहेगा, तो मजूरी करके भी गुजर कर लेगा। आधा पेट ही खायेगा, मैं विपत ही झेलूँगी, बला से, यह आँखों के सामने तो बना रहेगा। मैंने ही इसे पाल—पोसकर इतना बड़ा किया है तो अब आप भी बबुआ के बाबूजी बने फिरते हैं। मैंने जनमाया है, तो दुलार करेगा कौन? आज जरा—सी बात पर आपने इसका खाना—पीना और पहनना तक उघट दिया। जिसको भगवान खाने—पीनेवाला देते हैं वही न खिलाता—पिलाता है? जिसके कोई है ही नहीं, वह क्या खाक खिलावेगा? मेरी ही करनी से इसकी यह दशा हुई है, तो रहने दीजिए अपनी माया—ममता। यह बाप का सुख देख चुका। जैसे मैंने नौ महीनों तक दुःख सहकर, अपना खून पिलाकर, इसकी अपनी जिंदगी का सहारा बनाया है वैसे ही इसके लिए अब भी रात—रात भर जागूँगी, जंतर—मंतर और झाड़ फूँक कराऊँगी, ओझा और वैद के पैर पड़ूँगी, देवी—देवता मनाऊँगी, जैसे—तैसे सब कुछ कर लूँगी। आप जो बने सो कीजिए, नहीं तो इसके जले घाव पर नमक मत छिड़किये। जिसने एक बूँद से इतना बड़ा पिंड सँवारा है, यह तो इसकी खोज—खबर लेगा न? या वह भी आप ही की तरह बिगड़ उठेगा आप तो ऐसी बातें कर गये हैं, जिनसे मालूम होता है कि आप कभी इसकी तरह लड़के रहे ही न हों? क्या आप वह दिन इतनी जल्दी भूल गए जब ठाकुर दुआर जाने की बेर, इसी बेटे के लिए, तारकेसरनाथ के मंदिर में धरना देकर, दो दिन तक आप बिना अन्न—जल के ही पड़े रह गए थे?

बाबूजी ने शान्त भाव से मुस्कराते हुए कहा— मैं कुछ भी नहीं भूला हूँ और न कभी भूल सकता हूँ, सब कुछ याद है। मगर तुमने तो मेरी बातों का मतलब ही नहीं समझा, मेरे कहने का अर्थ ही पलट दिया। भोलानाथ को मैं तुमसे किसी कदर कम प्यार नहीं करता, पर तुम्हारा प्यार अंधा है, और मेरा प्यार आँखवाला। तुम अगर पढ़ी—लिखी होतीं, दिन—दुनिया देखे रहतीं, भला—बुरा समझे रहतीं, तो भूलकर भी ऐसी रूखी बातें न करतीं। बच्चे की पैदाइश से ही तुम लोगों की नीयत खोटी हो जाती है। कहो तो कैसा नीच विचार है कि जीता रहेगा तो मजूरी करके भी आधा पेट खायेगा। जिसे तुम कलेजे का टुकड़ा कहती हो, आँखों का तारा समझती हो, उसी की होनहारी के लिए ऐसी बढ़िया असीस? तुम अभी गुरुजी को गएडों गालियाँ बक गई हो। क्या इससे तुम्हारे बच्चे का कल्याण न होगा? तुमको क्या पता है कि उस्ताद की छड़ी में कैसा जादू भरा है? तुमको तो सिर्फ 'बेटेवाली' कहलाने की साध पूरी

करनी है। पर मूर्ख संतान पैदा करने से तो माता का निपूती रहना ही अच्छा है। जो माता अपने बच्चे के भावी सुख की चिंता न करके उसे केवल अपनी साध पूरी करने का साधन बना डालती है, वह माता अंत में बहुत पछताती है। और सच पूछो, तो वह माता कहे जाने योग्य है भी नहीं। तुम्हारी तरह मैं 'बेटेवाला' नाम धराना नहीं चाहता। मैं इसकी कमाई खाने के लिए दुनिया में बैठा न रहूँगा। इसे सदा के लिए संसार में सुखी बना जाने की इच्छा से ही मैं इसको बराबर अपने साथ रखता हूँ— अपने ही सुझाव पर चलना सिखाता हूँ। पर इधर मैं सुधारता जाता हूँ, इधर तुम चौका लगाए चली जाती हो। करो जो रुचे सो, मेरा तो कहते-कहते गला बैठ गया। होगा वही जो परमात्मा चाहेगा, मैं कहाँ तक सिर धुनूँ।

मइयाँ—मुझे आपकी बात सुनने और समझने की सुध नहीं है। मेरा लड़का जब से दौड़ा हुआ आया है, तभी से काँप रहा है। इसका दम फूल रहा है। कुछ बोलता भी नहीं। आँखें भी नहीं खोलता। न जाने कहीं डरा है या कहीं गिर पड़ा है या किसी लड़के ने मारा है, कुछ मालूम नहीं होता! पंडित जी को बुलाकर दिखला दीजिए। महंथजी को भी बुला लीजिए। वह भी गंडा—तावीज करते हैं। मेरा विश्वास है कि पंडितजी के भभूत देने से यह जरूर अच्छा हो जाएगा। बाबाजी को बुलवाकर कालीजी और महावीरजी के यहाँ संपुट पाठ का संकल्प करा दीजिए। जो करना हो, जल्दी कीजिए। मेरा दिल घबरा रहा है! न जाने आज किसका मुँह देखकर उठी हूँ। मेरे जाने में तो कुछ 'बतास' का फेर है। आजकल हवा—बयार बिगड़ी हुई है। परसों ही महँगू के बेटे को आसेब के फेर से अनायास दाँत लग गया था।

बाबूजी— सचमुच तुम लड़के को बिलुकुल डरपोक बनाए जा रही हो। यह तो अभी लड़का ही है, पर तुम तो इससे भी नादन हो गई हो। यह एक—भर डरा है, तो तुम दस—भर हल्ला मचाकर इसकी घबराहट को बढ़ा रही हो। अभी से इसके मन में इस तरह डर समाया रहेगा, तो बड़ा होने पर, डरकर छिपने के लिए, यह कहाँ तुम्हारा अँचरा ढूँढता फिरेगा? भ्रम से भूत पैदा होता है। सन्देह छोड़ दो! नरम बिछौने पर हवा में सुलाकर सिर में गुलरोगन मालिश करो। पैरों में नागफनी के काँटे चुभे हुए देख पड़ते हैं, हरी दूब पीसकर गाय के गाढ़े दही के साथ तलवों में लेप दो, और घावों पर कपूर मिलाया हुआ गाय का कच्चा घी लगा दो, आराम से नींद आ जाएगी।

मइयाँ— नहीं, मैं इसको अभी सोने न दूँगी। आजकल कीड़े बहुत निकलते हैं। हो सकता है कि उसी ने काटा हो। आज मेरी आँखों में नींद कहाँ? जब तक यह आँख न उठावेगा, तब तक मेरी आँख न लगेगी। आप बाहर का काम देखिये, मेरी तो इसका मुख निरखते—ही—निरखते रात सिरा जाएगी। जहाँ इसकी पलकें खुलीं और एक बार भी इसने 'मइयाँ' कहकर पुकारा कि मेरी जान में जान आयी।

बाबूजी—अच्छा, तो अब रोना कल्पना छोड़कर मेरे कहने के मुताबिक तदबीर करो। मैं फौरन सब इंतजाम करके आता हूँ।

बाबूजी बाहर चले गए। मइयाँ उनकी बताई तदबीरें करने लगीं। सचमुच उनकी बात सच निकली। पैरों की जलन और घावों का दर्द कम होने लगा। हमारी आँखें झपकने लगीं। अंग—अंग में ठंडक छा गई। छाती का धड़कना बंद हो गया। साँस की चाल धीमी हो गई। मइयाँ ने कोमल हाथों से मीठी—मीठी थमकियाँ देकर हमें अपना अचरा उढ़ा दिया और आँखों में ही रात काटती रही। हमें क्या पता कि फिर क्या—क्या गुल खिला। हम तो मइयाँ के अँचल में— करुणा के क्रोड़ में— शान्ति के शिविर में— ममता की मंजूषा में— वात्सल्य की बाटिका में स्नेह के सुख—सदन में चैन से सोये पड़े थे!



कृत—कृत्य नहीं जो हो पाए;
प्रत्युत फाँसी पर गए झूल
कुछ ही दिन बीते हैं, फिर भी
यह दुनिया जिनको गई भूल!
— उनको प्रणाम!

— नागार्जुन

बशीर बद्र: बिछड़ने के बाद भी हमारे साथ

शिवकुमार बिलगरामी*

कुछ लोग अपने उत्कृष्ट साहित्य सृजन से देश की सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना को इतना अधिक प्रखर बना देते हैं कि वह युगों-युगों तक याद किए जाते हैं। उनका अस्तित्व उनकी रचनाओं से कहीं आगे-लोगों की स्मृतियों, संवेदनाओं और जीवन-दृष्टि में रच बस जाता है। डॉ. बशीर बद्र ऐसे ही शायर थे। उनके निधन का समाचार सुनकर ऐसा लगा जैसे उर्दू ग़ज़ल की महफ़िलों में वर्षों से रौशन चिराग़ बुझ गया। किंतु एक सच यह भी है कि ऐसी हस्तियाँ कभी रूखसत नहीं होतीं। वह अपने अश्आर, अपनी फ़िक्र और ज़िंदगी के प्रति अपने सकारात्मक नज़रिये के कारण अपने चाहने वालों के दिलों में हमेशा ज़िंदा रहती हैं।

28 मई 2026 को भोपाल में डॉ. बशीर बद्र ने अंतिम साँस ली। उनके जाने के साथ आधुनिक उर्दू ग़ज़ल का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय समाप्त हो गया, लेकिन साहित्य का इतिहास केवल जन्म और मृत्यु की तिथियों से नहीं लिखा जाता। वह उन शब्दों से निर्मित होता है जो समय की सीमाओं को लॉंघकर पीढ़ियों तक मनुष्यता को आलोकित करते रहते हैं। बशीर बद्र उन्हीं विरले रचनाकारों में थे जिनकी शायरी आने वाले समय में भी उतनी ही आत्मीयता से पढ़ी और सुनी जाएगी, जितनी उनके जीवनकाल में होती रही।

15 फ़रवरी 1935 को फ़ैज़ाबाद (वर्तमान अयोध्या) में जन्मे सैयद मोहम्मद बशीर ने बचपन से ही साहित्यिक अभिरुचि का परिचय दिया। किशोरावस्था में पिता के निधन ने उन्हें जीवन की कठोर वास्तविकताओं से परिचित कराया। बाद में उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की और मेरठ कॉलेज में उर्दू के अध्यापक बने। आगे चलकर वे विभागाध्यक्ष के पद तक पहुँचे।

बशीर बद्र कहा करते थे कि उन्होंने सबसे बड़ी तालीम दुनिया की किताब से हासिल की है। जीवन ने उन्हें जो अनुभव दिए, वही उनकी शायरी की असली पूँजी

* उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के “अदम गोंडवी सम्मान” से सम्मानित प्रतिष्ठित गीतकार एवं ग़ज़लकार। इनकी रचनाओं में सामाजिक सरोकार, राष्ट्रीय चेतना और मानवीय संवेदनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है। देशभक्ति गीत ‘जयहिंद वंदे मातरम्’ और पर्यावरण-आधारित अंतरराष्ट्रीय पुरस्कृत गीत ‘पृथ्वी मंथन’ सहित इनकी कई रचनाओं को देश के विख्यात गायकों ने स्वर दिया है।

बने। यही कारण है कि उनकी गज़लों में बनावटीपन नहीं है बल्कि उनकी शायरी में जीवन का सच्चा अनुभव बोलता है।

आज जब हम उन्हें याद कर रहे हैं, तो केवल एक लोकप्रिय शायर को नहीं, बल्कि एक ऐसे संवेदनशील इंसान को याद कर रहे हैं जिसने जीवन के अनेक दुःख, संघर्ष और त्रासदियाँ झेलने के बावजूद अपने भीतर की मोहब्बत को मरने नहीं दिया। उन्होंने अपने अनुभवों की राख से उम्मीद के फूल उगाए और अपने ज़ख्मों को नफरत का कारण नहीं, बल्कि इंसानियत को समझने का माध्यम बनाया।

दरअसल, बड़े शायर वही होते हैं जो अपने निजी दुःख को समूची मानवता की संवेदना में रूपांतरित कर दें। बशीर बद्र की शायरी इसी दुर्लभ क्षमता की मिसाल है। उन्होंने हमें केवल प्रेम करना नहीं सिखाया, बल्कि मनुष्य को उसकी कमजोरियों और मजबूरियों के साथ स्वीकार करना भी सिखाया। शायद यही कारण है कि उनके अश्आर साहित्यिक उद्धरणों से आगे बढ़कर लोगों के जीवन का हिस्सा बन गए।

डॉ. बशीर बद्र किस दर्जे के शायर थे, इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उनके शेर आमजन से लेकर देश के शीर्ष राजनीतिक नेताओं तक की ज़बान पर रहे। 6 फरवरी, 2018 को संसद में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा के दौरान कांग्रेस नेता मल्लिकार्जुन खड़गे ने उनका प्रसिद्ध शेर पढ़ा—

*दुश्मनी जम के करो लेकिन यह गुंजाइश रहे,
जब कभी हम दोस्त हो जाएँ तो शर्मिंदा न हों।*

अगले ही दिन प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने उत्तर में बशीर बद्र का यह शेर उद्धृत किया।

*जी बहुत चाहता है सच बोलें,
क्या करें हौसला नहीं होता।*

यह प्रसंग बताता है कि उनकी शायरी राजनीतिक सीमाओं से परे भारतीय सार्वजनिक जीवन का हिस्सा बन चुकी थी।

आधुनिक उर्दू गज़ल में उनका महत्त्व केवल एक लोकप्रिय शायर का नहीं है। उन्होंने गज़ल को अभिजात्य दायरों से निकालकर आम आदमी की ज़िंदगी से जोड़ा। उनकी शायरी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सहजता है। वे कठिन से कठिन भाव को इतने सरल अंदाज़ में व्यक्त करते थे कि पाठक को लगता है जैसे वह उसकी अपनी ही कहानी हो।

यहाँ पर हम एक बात और जोड़ना चाहेंगे कि उर्दू गज़ल का इतिहास निरंतर परिवर्तन का इतिहास है। हर बड़े शायर ने अपने समय की संवेदना के अनुरूप उसकी भाषा, विषय और अभिव्यक्ति का विस्तार किया है। मीर तकी मीर ने प्रेम और मानवीय पीड़ा को गहराई दी, ग़ालिब ने दार्शनिक चिंतन और बौद्धिक जटिलता जोड़ी, दाग़ देहलवी ने भाषा को नफ़ासत और रवानी प्रदान की, फ़िराक़ गोरखपुरी ने भारतीय

सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक भावबोध का समावेश किया तथा फैज़ अहमद फैज़ ने ग़ज़ल को सामाजिक और राजनीतिक सरोकारों से जोड़ा। इन सबके बाद यदि किसी शायर ने ग़ज़ल को आम आदमी के घर तक पहुँचाया, तो वह बशीर बद्र हैं।

बशीर बद्र की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने ग़ज़ल की भाषा को कठिन फ़ारसी शब्दावली से मुक्त कर रोज़मर्रा की बातचीत के बेहद सरल, आत्मीय और जीवंत मुहावरों से जोड़ा। उनके यहाँ न तो कृत्रिम अलंकरण है और न ही शब्दाडंबर। वे ऐसे शब्द चुनते हैं जो हर शिक्षित व्यक्ति की दैनिक भाषा का हिस्सा हैं। घर, शहर, बारिश, धूप, शाम, रास्ता, हाथ, दोस्त, आईना, दरवाज़ा, तन्हाई, ख़ामोशी आदि। यही कारण है कि उनका शेर पहली बार सुनने वाला भी उसे तुरंत याद कर लेता है।

उनका यह मशहूर शेर आधुनिक महानगरीय जीवन का शायद सबसे सटीक चित्रण है—

*कोई हाथ भी न मिलाएगा जो गले मिलोगे तपाक से,
ये नए मिज़ाज का शहर है, ज़रा फ़ासले से मिला करो*

मीर या ग़ालिब के यहाँ ऐसा सामाजिक यथार्थ इस रूप में नहीं मिलता। बशीर बद्र का एक बड़ा गुण यह है कि वे निर्णय नहीं सुनाते, बल्कि मनुष्य को समझने की कोशिश करते हैं।

*कुछ तो मजबूरियाँ रही होंगी,
यूँ कोई बेवफ़ा नहीं होता*

यहाँ शिकायत नहीं, सहानुभूति है। यही आधुनिक मनोविज्ञान है। इसी तरह उनके लेखन में मानव-स्वभाव की एक अजीब विडंबना देखने को मिलती है —

*सर झुकाओगे तो पत्थर देवता हो जाएगा,
इतना मत चाहो उसे, वो बेवफ़ा हो जाएगा*

यहाँ प्रेम के साथ मनोविज्ञान भी जुड़ जाता है।

उनका एक और अत्यंत चर्चित शेर है—

*अजीब शख्स है नाराज़ हो के हँसता है,
मैं चाहता हूँ ख़फ़ा हो तो वो ख़फ़ा ही लगे*

यह आधुनिक रिश्तों की जटिलता को सहज सरल भाषा में व्यक्त करने का अनुपम उदाहरण है।

बशीर बद्र साहब के अश्रार में जीवन दर्शन और मानव मनोविज्ञान को बहुत बारीकी से उकेरा गया है —

*मैं चुप रहा तो और ग़लतफ़हमियाँ बढ़ीं,
वो भी सुना है उसने जो मैंने कहा नहीं*

बशीर बद्र साहब ने ग़ज़ल को किताबों से निकालकर मुशायरों, रेडियो, टेलीविज़न और अंततः सोशल मीडिया तक पहुँचा दिया। उनके अनेक शेर आज

कहावतों की तरह बोले जाते हैं। यह किसी भी शायर की सबसे बड़ी सफलता है। बशीर बद्र की सबसे महत्वपूर्ण देन यह नहीं कि उन्होंने नए विषय चुने, बल्कि यह है कि उन्होंने नए मुहावरे गढ़े। उन्होंने सिद्ध किया कि महान कविता कठिन शब्दों से नहीं, बल्कि गहरी अनुभूति और सच्ची अभिव्यक्ति से जन्म लेती है। उनकी शायरी में आधुनिक जीवन की विडंबनाएँ हैं, पर निराशा नहीं; दर्द है, पर कटुता नहीं; प्रेम है, पर भावुकता नहीं; दर्शन है, पर दुरुहता नहीं। इसीलिए बशीर बद्र केवल एक लोकप्रिय शायर नहीं, बल्कि उर्दू गज़ल की भाषा में ऐतिहासिक परिवर्तन के प्रतिनिधि शायर हैं। आने वाली पीढ़ियाँ उन्हें उस रचनाकार के रूप में याद रखेंगी जिसने गज़ल को नई ज़बान, नए मुहावरे, नए श्रोता और नए पाठक दिए।

गज़ल में इतना कुछ नयापन लाने के कारण ही शायद बशीर बद्र को नई गज़ल का 'इमाम' कहा जाता है। उन्होंने क्लासिकी गज़ल की परंपरा को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक जीवन की नई संवेदनाओं को आवाज़ दी। उनकी गज़ल में प्रेम, विरह और सौंदर्य के साथ-साथ आधुनिक जीवन का अकेलापन, रिश्तों का क्षरण और मनुष्य की आंतरिक बेचैनी भी उपस्थित है।

उनके प्रसिद्ध अशआर—

कोई फूल धूप की पत्तियों में हरे रिबन से बँधा हुआ,
वो गज़ल का लहजा नया-नया, न कहा हुआ न सुना हुआ
जिसे ले गई है अभी हवा वो वरक था दिल की किताब का
कहीं आँसुओं से मिटा हुआ कहीं आँसुओं से लिखा हुआ
और

कभी यूँ भी आ मेरी आँख में कि मेरी नज़र को ख़बर न हो,
मुझे एक रात नवाज़ दे, फिर उसके बाद सहर न हो।

उनके गज़ल नई गज़ल की ताज़गी, कोमलता और नवीन अभिव्यक्ति के सुंदर उदाहरण हैं। शास्त्रीय गज़ल का संसार मुख्यतः इश्क़, हुस्न, हिज़्र, विसाल और सूफ़ियाना अनुभूतियों के इर्द-गिर्द घूमता रहा है। उसकी भाषा अपेक्षाकृत सांकेतिक और फ़ारसी प्रभाव से युक्त थी। इसके विपरीत नई गज़ल ने अपने समय की सामाजिक और मानवीय वास्तविकताओं को केंद्र में रखा। उसने प्रेम के साथ-साथ अकेलेपन, विस्थापन, टूटते रिश्तों और सामाजिक विडंबनाओं को भी अभिव्यक्ति दी। लेकिन इसके बावजूद डॉ बशीर बद्र ने रिवायती गज़ल की परंपरा की अनदेखी नहीं की। उन्होंने गज़ल की मूल संरचना— बहर, काफ़िया और रदीफ़ को सुरक्षित रखते हुए उसके कथ्य का विस्तार किया। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि उन्होंने परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सुंदर संतुलन स्थापित किया।

यद्यपि बशीर बद्र साहब के कुछ नज़्म संग्रह भी प्रकाशित हुए किंतु उन्हें गज़ल संग्रह जैसी व्यापक लोकप्रियता और जनस्वीकृति प्राप्त नहीं हो पाई। 'आसमों',

‘आमद’ तथा ‘आहट’ जैसे संग्रहों में अनेक गंभीर और कलात्मक रचनाएँ निहित हैं, जिनमें गज़लों के साथ उनकी नज़्में भी शामिल हैं, किंतु आम पाठक उन्हें प्रायः उनके चर्चित अश्रुआर के माध्यम से ही याद करता है। उनकी लंबी नज़्में और सामाजिक-वैचारिक विषयों पर आधारित रचनाएँ साहित्यिक आलोचकों और गंभीर पाठकों के बीच सराही गईं, परंतु उन्हें मुशायरों और जनसंचार माध्यमों में उतनी लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई जितनी गज़लों को हुई। इसका कारण उनकी रचनात्मक कमजोरी नहीं, बल्कि उनकी गज़लों का असाधारण प्रभाव था। छोटे, मार्मिक और उद्धरणयोग्य शेरों ने उन्हें जन-जन तक पहुँचाया, जबकि उनका नज़्मकार रूप अपेक्षाकृत कम चर्चित रह गया। फिर भी आसमाँ, आमद और आहट जैसे संग्रह उनके बहुआयामी काव्य-व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण दस्तावेज़ हैं।

जीवन ने उन्हें अनेक आघात दिए, परंतु सबसे बड़ी त्रासदी 1987 के मेरठ दंगों के दौरान घटी, जब उनका घर जला दिया गया। उनका निजी पुस्तकालय और अनेक अप्रकाशित पांडुलिपियाँ राख हो गईं। किसी लेखक के लिए इससे बड़ा दुःख शायद ही कोई हो। लेकिन इस घटना के बाद भी उनकी शायरी में तलख मिज़ाजी नहीं आई। उन्होंने अपनी शायरी में किसी फ़िरके या तबके को निशाना नहीं बनाया। उन्होंने कभी भी इंसानियत और मोहब्बत की बात करना नहीं छोड़ा।

उनका प्रसिद्ध शेर—

*लोग टूट जाते हैं एक घर बनाने में,
तुम तरस नहीं खाते बस्तियाँ जलाने में।*

सिर्फ एक व्यक्ति के दर्द का बयान नहीं, बल्कि हमारे समय की सामूहिक त्रासदी का दस्तावेज़ बन चुका है। बशीर बद्र का मानना था कि राजनीति करने वाले व्यक्ति को शायर नहीं होना चाहिए और शायर को राजनीतिक व्यक्ति नहीं बनना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपने समय की विसंगतियों को भी मानवीय संवेदना के स्तर पर अभिव्यक्त किया। उनकी दृष्टि मनुष्य को बाँटने वाली शक्तियों के विरुद्ध और इंसानियत को जोड़ने वाली ताकतों के पक्ष में थी।

मुशायरों में उनकी लोकप्रियता अद्वितीय थी। उनकी प्रस्तुति में ऐसा अपनापन था कि श्रोता उनसे भावनात्मक रूप से जुड़ जाते थे। भारत ही नहीं, विदेशों में भी आयोजित मुशायरों में उन्हें असाधारण लोकप्रियता प्राप्त हुई। उनकी साहित्यिक उपलब्धियाँ भी उल्लेखनीय हैं। ‘इकाई’, ‘आमद’, ‘आहट’, ‘इमेज’, ‘आसमान’ और ‘आस’ जैसे संग्रह आधुनिक उर्दू गज़ल/नज़्म की मूल्यवान धरोहर हैं। आलोचना के क्षेत्र में भी उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। आज़ादी के बाद उर्दू गज़ल का तनकीदी मुताला तथा ‘बीसवीं सदी में गज़ल’ जैसी पुस्तकें उनके गंभीर अध्ययन की परिचायक हैं।

सन् 1999 में उन्हें उनके ग़ज़ल संग्रह 'आस' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार दिया गया। इसी वर्ष भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मश्री' से भी सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त अनगिनत साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं ने उन्हें उनके साहित्यिक योगदान के लिए सम्मानित किया और सराहा।

जीवन के अंतिम वर्षों में वे लगभग एक दशक तक डिमेंशिया (स्मृति क्षीण होना) और शारीरिक अशक्तता जैसी बीमारी से जूझते रहे। यह भी एक विडंबना ही है कि जिस शायर ने लाखों लोगों की ज़बाँ पर चढ़ने वाले और दिल में उतर जाने वाले अनगिनत अश्रु दिए, वही अपनी स्मृति के क्षीण होने की पीड़ा से गुज़रा। लेकिन उनकी लोकप्रियता और सम्मान में कभी कोई कमी नहीं आई।

आज जब हम उन्हें याद करते हैं तो उनका यह शेर पहले से कहीं अधिक अर्थवान प्रतीत होता है—

*उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो,
न जाने किस गली में ज़िंदगी की शाम हो जाए।*

वास्तव में बशीर बद्र स्वयं एक उजाले की तरह थे। उन्होंने ग़ज़ल को नया मुहावरा, नई संवेदना और नया आत्मविश्वास दिया। उन्होंने साबित किया कि साहित्य की सबसे बड़ी शक्ति उसका मानवीय दृष्टिकोण है। उनकी शायरी हमें प्रेम करना, क्षमा करना, रिश्तों की कद्र करना और इंसान बने रहना सिखाती है।

डॉ. बशीर बद्र अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी ग़ज़लें महफ़िलों को आबाद करती रहेंगी। नई ग़ज़ल के इस महान शायर को यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी कि हम उनकी शायरी में निहित प्रेम, सहिष्णुता और इंसानियत के संदेश को आगे बढ़ाएँ। डॉ. बशीर बद्र जैसी अज़ीम अदबी शख़्शियत न तो कभी रुखसत होती है और न ही कभी मिटती है। अपने अश्रु के ज़रिए वो हमेशा हमारे बीच मौजूद हैं।



संपर्क

शिवकुमार बिलगरामी— 418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट, अभय खंड-4, इंदिरापुरम,
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश-201012
मोबाइल-9868850099, ई-मेल: shivkumarbilgrami99@gmail.com

आलेख

सामाजिक पुनर्जागरण में संत रैदास के विचारों की प्रासंगिकता

अनिल राय*

यह लेख संत रविदास के सामाजिक-आध्यात्मिक चिंतन और उनके द्वारा प्रतिपादित समतामूलक दृष्टिकोण का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। मध्यकालीन भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत विषमताओं, धार्मिक रूढ़ियों और सामंती संरचनाओं के प्रतिरोध में संत रैदास का उदय एक क्रांतिकारी हस्तक्षेप था। उन्होंने कर्म और गुण को मनुष्य की वास्तविक पहचान बताते हुए जन्माधारित वर्ण-व्यवस्था को चुनौती दी। 'बेगमपुरा' की उनकी अवधारणा न केवल एक आदर्श सामाजिक ढाँचा है, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और सामूहिक मुक्ति के सिद्धांतों पर आधारित वैकल्पिक समाज-दृष्टि भी है। उनकी वाणी में निहित मानवतावाद, सांप्रदायिक सद्भाव और आंतरिक शुचिता का सिद्धांत आधुनिक समाज में भी सामाजिक पुनर्जागरण का आधार प्रदान करता है। यह अध्ययन आज के संदर्भ में संत रविदास की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

संत रविदास भारतीय भक्ति आंदोलन के उन प्रमुख संतों में से एक थे, जिन्होंने अपने विचारों और कार्यों से समाज को एक नई दिशा दी। उनके जीवन और शिक्षाओं में समानता, सामाजिक न्याय और मानवीय मूल्यों का गहरा समावेश था। वे उस समय के समाज में व्याप्त जातिवाद, भेदभाव और धार्मिक रूढ़िवादिता के विरुद्ध खड़े हुए और अपने विचारों के माध्यम से लोगों को आत्मज्ञान और मानवता की ओर प्रेरित किया। संत रैदास के विचार न केवल उनके समय में बल्कि आज भी सामाजिक पुनर्जागरण के संदर्भ में प्रासंगिक हैं। उनके विचारों में ऐसे मूल्य निहित हैं जो समाज को बेहतर बनाने और मानवता को एकजुट करने में सहायक हो सकते हैं।

संत रैदास सामाजिक समरसता के कवि हैं। कवि मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मूलतः तो वह भक्त थे, लेकिन उनकी कविताओं में काव्य के तत्त्व भी मिलते हैं। हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल जब किसी के बारे में लिखते थे

* प्रकाशित पुस्तकें—'निर्गुण काव्य में नारी', 'भक्ति संवेदना और मानवमूल्य' आदि। ढाई वर्ष तक दक्षिण एशिया अध्ययन विभाग, चीन में विजिटिंग प्रोफेसर आई, सी.सी. आर चेयर। संप्रति— डीन अंतरराष्ट्रीय संबंध (मानविकी एवं समाजविज्ञान) एवं वरिष्ठ प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

तो वह एक तरह से आप्त वाक्य हो जाता था। निर्गुणिया संतों पर उन्होंने बहुत कम लिखा, जिसे लेकर उन पर बहुत सारे आक्षेप भी लगाए गए कि ये जो खंडन-मंडन वाली प्रवृत्ति के साधक थे, वे उन्हें बहुत पसंद नहीं थे। यही कारण है कि रैदास जी पर भी अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में बस एक सवा एक पेज ही लिखा। यही हालत कबीर की भी थी, जबकि कबीर पर देश-विदेश में अनेक शोध हुए हैं और अभी भी हो रहे हैं, लेकिन रैदास जी का नाम इसलिए और ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है कि दो राजघरानों से जुड़े संतों ने रैदास जी का नाम लिया, जिसमें से एक हैं मीराबाई। समग्र मध्यकालीन समाज सामंती व्यवस्था के गिरफ्त में था और ऐसे में एक स्त्री का लोक-लाज कुल की मर्यादा का त्याग कर संत बनना एक क्रांतिकारी कदम था। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि एक ऐसे व्यक्ति को अपना गुरु कहना जो कि तथाकथित नीच जाति से संबंधित थे। मीरा का संबंध राजघराने से था और ऊपर से वह एक महिला। वह महिला जो दमनकारी सत्ता प्रतिष्ठान की परवाह नहीं करती है और साधुओं के बीच में बैठती है। मीरा ने कहा है –

भाया छाँड़याँ, बंधा छाँड़याँ, छाँड़याँ सगाँ सूरयाँ।

साधां ढिंग बैठ बैठ, लोक लाज खूयाँ।¹

अर्थात् संतों के बीच बैठ-बैठकर, साधुओं के बीच बैठ-बैठकर मैंने लोक लाज को बहा दिया। संकेत यह है कि ऐसे सामंती क्रूर परिवेश में एक स्त्री जब तक लोक-लाज नहीं त्यागती है, तब तक वह बृहत्तर समाज का हिस्सा नहीं बन पाती है।

हमारे धार्मिक ग्रंथों में बहुत से ऐसे ग्रंथ भी पाए जाते हैं जिनमें शूद्रों और स्त्रियों का उल्लेख एक साथ मिलता है। जहाँ शूद्र है, वहाँ स्त्री। मध्यकालीन सामंती परिवेश की सामाजिक संरचना में स्त्री और शूद्र दोनों की स्थिति लगभग एक जैसी थी। हालाँकि मनु ने यहाँ तक कहा था कि— 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः', लेकिन यह भी सत्य है कि उस समाज में स्त्रियों के बहुत से अधिकार छीन लिए गए थे। आज भी दक्षिण भारत के कई मंदिरों में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है जिसके लिए आज भी वे संघर्ष कर रही हैं।

रैदास जी जिस समाज से आए थे वह कोई सुखद समाज नहीं था। वे उस जाति से जुड़े हुए थे जो चमड़े का कार्य करते थे और एक तरह से देखा जाए तो वह दरिद्र समाज था जिसका उल्लेख करते हुए रैदास स्वयं कहते हैं –

ऐसी मेरी जाति बिख्यात चमार,

हिरदै राम गोब्यंद गुण सार।।²

अर्थात् मेरी जाति लोक प्रसिद्ध चमार जाति है किंतु मेरे हृदय में गोविंद के गुणों का सार भरा हुआ है। अपनी वाणी में रैदास जी कहते हैं कि वह एक ऐसा दरिद्र

1. चतुर्वेदी परशुराम, (1976), मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग

2. शरण जगदीश, (2011) रैदास ग्रंथावली, साहित्य संस्थान, पृष्ठ 203

समाज था, जिसको देखकर सब लोग हँसते थे। ऐसी स्थिति में रहते हुए समाज में अलग स्थान बनाना कोई मामूली बात नहीं थी।

रैदास या रविदास उनके बहुत सारे नाम साहित्य जगत में प्रसिद्ध हैं। गुजरात में तो वे रोहिदास के नाम से जाने जाते हैं। सत्ता प्रतिष्ठान से टकराने के लिए रैदास एवं सभी संतों ने यदि कोई रास्ता अपनाया तो वह भक्ति का रास्ता ही अपनाया। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन सामाजिक समरसता की पृष्ठभूमि से ही तैयार हुआ था, जिसका लक्ष्य था—

*जाति-पांति पूछे नहीं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।³*

जाति-पांति, भारतीय समाज की ज्वलंत सच्चाई है। दुनिया में अमीर और गरीब तो हर जगह होते हैं, लेकिन खंड-खंड जातियों में बँटा हमारा यह समाज भले ही अखंडता में एकता का आप्त वाक्य क्यों न देता हो, सामाजिक समरसता में बहुत बड़ी बाधा है।

संत रैदास का जीवन जाति-आधारित सामाजिक भेदभाव का एक सजीव उदाहरण था। वे समाज के निम्न वर्ग से आते थे और एक चर्मकार परिवार में जन्मे थे। उस समय का समाज जाति के आधार पर गहराई से विभाजित था और उनके जैसे व्यक्तियों को घृणा और अपमान का सामना करना पड़ता था। लेकिन संत रैदास ने इन बाधाओं को अपने जीवन का केंद्र नहीं बनने दिया। उन्होंने भेदभावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दी और यह सिद्ध किया कि मनुष्य की सच्ची पहचान उसके कर्म और विचारों में निहित होती है, न कि उसकी जाति या सामाजिक स्थिति में। यह विचार आज भी सामाजिक पुनर्जागरण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, जब जातिगत भेदभाव विभिन्न रूपों में समाज में विद्यमान है।

रैदास ने अपने जीवन और कृतित्व के माध्यम से एक आदर्श समाज की कल्पना प्रस्तुत की। उन्होंने 'बेगमपुरा' की अवधारणा दी, जो एक ऐसा समाज है जहाँ किसी का शोषण नहीं, गरीबी, दुःख या भेदभाव नहीं है। 'बेगमपुरा' का अर्थ है *दुख-रहित नगर*। यह एक ऐसा आदर्श है, जिसमें समानता, स्वतंत्रता और समता के मूल्य सर्वोपरि हैं। इस समाज में न कोई जातिगत भेदभाव है, न ही कोई कर लगाने वाला है, और न ही कोई सामाजिक अवरोध। आज जब हम जाति, धर्म और वर्ग के आधार पर बढ़ती असमानताओं और विभाजनों का सामना कर रहे हैं, तब संत रैदास जी का यह विचार और अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

रैदास लगभग कबीर के समकालीन थे। जिस समय इनका जन्म हुआ, उस समय के परिवेश में सबसे बड़ा झगड़ा हिंदू और मुसलमान का था। इन दोनों धर्मों

3. शुक्ल रामचंद्र, (1997) हिंदी साहित्य का इतिहास, इंडियन प्रेस लिमिटेड, पृष्ठ 83

में जो बुराइयाँ आ गई थीं, जो कर्मकांड आ गए थे, जो बाह्य आडंबर आ गए थे, उसके प्रति सभी संतों ने उपेक्षा का भाव दिखाया है; क्योंकि उनका यह मानना था कि यह जो बाह्य आडंबर हैं वह गरीबों के शोषण के माध्यम हैं। इसीलिए जो भारतीय वर्ण-व्यवस्था में तथाकथित अवर्ण जातियाँ (वर्ण व्यवस्था में निम्न समझी जाने वाली जातियाँ) थीं, उन्हें मंदिरों में प्रवेश का अधिकार प्राप्त नहीं था। इन संतों ने सबसे बड़ा जो जागरण का काम किया वह यह था कि मनुष्य और मनुष्य में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। ये सारे भेद हमारे बनाए हुए हैं, भगवान ने किसी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र बनाकर नहीं भेजा है। इसके लिए रैदास ने यह कहा कि कोई जाति 'जन्मना' नहीं होती, लेकिन हमारे समाज में यह मान लिया गया है कि जिसका जन्म जिस जाति में हुआ है, वह उसी जाति का हो जाता है। ब्राह्मण के यहाँ आप पैदा हुए हैं, चाहे नीच कर्म कर रहे हैं तो भी आप ब्राह्मण हैं। इसका प्रत्याख्यान, इसका विरोध रैदास के यहाँ मिलता है। भगवान कृष्ण ने 'गीता' में कहा था –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।⁴

अर्थात् ये चारों वर्ण मैंने ही बनाए हैं, लेकिन गुण और कर्म के हिसाब से। जन्मना वाली बात वहाँ नहीं थी। देखिए रैदास अपनी वाणी में इसे कितने सुंदर ढंग से प्रस्तुत करते हैं –

ब्राह्मण खतरी बैस सूद रैदास जनम ते नाहि।

जो चाहइ सुबरन कउ पावइ करमन माहि।।⁵

'सुबरन' के कई अर्थ होते हैं, सुंदर वर्ण, सुंदर रूप, सोना इत्यादि। रैदास कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता। यदि कोई मनुष्य उच्च वर्ण को प्राप्त करना चाहता है तो वह केवल सुकर्म से ही प्राप्त कर सकता है। सुकर्म ही मनुष्य को ऊँचा और दुष्कर्म ही नीचा बनाता है। 'गीता' का सार भी यही 'कर्मवाद' ही है, इसलिए रैदास जी कहते हैं कि यह जो जाति-पांति का भेद है, निरर्थक है। संतों ने जाति-पांति को महत्त्वहीन माना है। कबीरदास भी कहते हैं—

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।

मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।⁶

अर्थात् साधु की जाति नहीं होती इसलिए उसकी जाति नहीं पूछनी चाहिए। साधु का ज्ञान जाति-पांति से परे होता है। किसी भी व्यक्ति की विद्वत्ता या ज्ञान, उसकी जाति-पांति के बंधनों से मुक्ति होता है। व्यक्ति का महत्त्व उसके ज्ञान से ही होता है।

संतों में रैदास जी एक ऐसे संत हैं जिन्होंने हमारी जाति व्यवस्था को समाज के लिए 'रोग' कहा है—

4. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, अध्याय 4, श्लोक 13

5. शरण जगदीश, (2011) रैदास ग्रंथावली, साहित्य संस्थान, पृष्ठ 95

6. सिंह युगेश्वर, (2001) कबीर समग्र (भाग- 1), हिंदी प्रचारक पब्लिकेशन, वाराणसी, पृष्ठ 455

जात पांत के फेर मंदि, उरझि रहइ सब लोग।
मानुषता कूं खात हइ, रैदास जात कर रोग।।⁷

अज्ञानतावश सभी लोग जाति-पांति के चक्कर में उलझकर रह गए हैं। रैदास कहते हैं कि यदि वे इस जातिवाद के चक्कर से नहीं निकले तो एक दिन जाति का यह रोग संपूर्ण मानवता को निगल जाएगा।

संत का आदर्श समाज केवल सामाजिक समानता तक सीमित नहीं था; उन्होंने नैतिक और आध्यात्मिक सुधार पर भी जोर दिया। उनका मानना था कि समाज में सुधार लाने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर सुधार अनिवार्य है। उन्होंने नैतिकता, सच्चाई और प्रेम को जीवन के मूलभूत तत्वों के रूप में प्रस्तुत किया। उनका यह दृष्टिकोण आज के समय में अत्यधिक प्रासंगिक है, जब समाज नैतिक पतन, भ्रष्टाचार और स्वार्थपरता से ग्रस्त है।

संत रैदास की शिक्षाएँ केवल सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं थीं; वे मानवता को एकजुट करने का भी संदेश देती थीं। उन्होंने भाईचारे और सह अस्तित्व के मूल्य को बढ़ावा दिया। उनका मानना था कि जाति, धर्म और सामाजिक स्थिति के आधार पर मानवता को विभाजित करना गलत है। उनके इस विचार ने न केवल भारतीय समाज बल्कि पूरे विश्व के लिए एक नई दिशा प्रस्तुत की। आज जब दुनिया आतंकवाद, सांप्रदायिकता, जातिवाद और वर्ग संघर्ष से जूझ रही है, संत रविदास का यह संदेश अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

जाति-पांति के बंधनों के जो दंश हैं, उनकी निस्सारता से हम सब परिचित हैं लेकिन यह भी एक ज्वलंत सच्चाई है कि ये जाति-पांति और नस्ल के बंधन हमारे समाज को अभी भी जकड़े हुए हैं। इस सच्चाई से रैदास हमें रु-ब-रु करवाते हैं। रैदास का महत्त्व इस बात से अधिक बढ़ जाता है कि कबीर ने इन्हें 'संतों का संत' कहा था। आप सोचिए कि संत होना ही बड़ी बात है और कबीर तो रैदास को 'संतों का संत' कहते हैं, हालाँकि आज संत और संतई की परिभाषा भी अब बदल गई है मीराबाई के कुछ पदों में रैदास को अपना गुरु मानने के संकेत मिलते हैं। जहाँ मीराबाई कहती हैं—

गुरु मिलिआ संत गुरु रविदास जी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी।⁸

जिसके पास ज्ञान है वह सामर्थ्यवान है। वह दुनिया को साध सकता है इसलिए रैदास जी भी ज्ञान के प्रति सचेत करते हैं। अब सवाल यह है कि ज्ञान कौन देता है? जाहिर है गुरु देता है। संतों की पूरी परंपरा में चाहे वह रैदास हों, कबीर हों, नानक, सेन, पीपा हों, रज्जब जी हों, ये सब गुरु को बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। कबीरदास ने तो भगवान से भी ज्यादा गुरु को महत्त्व दिया —

7. शरण जगदीश, (2011) रैदास ग्रंथावली, साहित्य संस्थान, पृष्ठ 95

8. <https://hindi-kavita.com/HindiDoheBhagatRavidas.php>

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पायें।
बलिहारी गुरु आपनो जिन गोविंद दियो बताय॥⁹

संतों ने इस ओर भी समाज का ध्यान केंद्रित किया कि गुरु कैसा होना चाहिए?
गुरु के पास अगर अधिकचरा ज्ञान है तो वह गुरु अपने शिष्यों को अंधी खोह में ले
जाएगा, कुएँ में गिराएगा—

जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधा-अंधा ठेलिया, दून्युँ कूप पड़ंत॥¹⁰

वे सावधान करते हैं कि गुरु का भी अच्छे से चुनाव करो इस गुरु शिष्य परंपरा
में एक और संदर्भ है जिसमें यह पता चलता है कि जो 'झाली' की रानी थी वह भी
अपने आप को रैदास जी की शिष्या मानती थी। मध्यकालीन साहित्य में भक्तिकाल
एक तरह का एनसाइक्लोपीडिया था और 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास ने अनेक
संतों की रचनाओं के संग्रह के साथ-साथ उन संतों के चरित्र का छोटे-छोटे पदों में
संकेत किया है। नाभादास ने रैदास जी के संदर्भ में कहा था कि ये 'नीर क्षीर विवेकी'
हैं। 'नीर क्षीर विवेकी' का अर्थ है कि दूध का दूध और पानी का पानी अलग कर देना।
यह बड़ा मुश्किल कार्य है। भारतीय साहित्य में ऐसी कवि प्रसिद्धि एवं लोक विश्वास
है कि हंस एक ऐसा विवेकी पक्षी है जो दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है।
इसका अर्थ यहाँ यह है कि ज्ञान की जितनी श्रेणियाँ हैं उन सब श्रेणियों की गुत्थियों
को रैदास जैसा गुरु ही सुलझा सकता है।

रैदास जी सांस्कृतिक एकता के रचनाकार हैं। इस देश की जो संस्कृति है, जो
विभिन्न संस्कृतियों, भोज्य पदार्थों, वेशभूषा तथा विभिन्न भाषाओं से मिलकर बनी है;
इन सबमें रैदास एकत्व का भाव स्थापित करते हैं। रैदास ने सांप्रदायिक समस्याओं
पर गंभीरता से विचार किया। सांस्कृतिक एकता के संदर्भ में वे कहते हैं —

एकै माटी के सब भांडे, सबका एकै सिरजनहारा।

एकै घट व्यापै रैदासा, सबको एकै घड़े कुम्हारा॥¹¹

आज से लगभग छह सौ वर्ष पहले संत रैदास जब यह पद सबको गाकर सुनाते
थे, तो उनका क्या आशय था, उस समय के समाज को वे क्या बताना चाहते थे, क्या
उनकी सीख आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी उनके समय में थी, गुरु रैदास
के ये शब्द समाजहित के लिए उपयोगी हैं। इनकी वाणी दूसरे संतों की तरह किसी
नए धर्म या पंथ का आरंभ नहीं करती। वह मनुष्य को धार्मिक होने का मतलब
सिखाती है। उन्होंने ऐसे समय में जन्म लिया था, जब भारतीय समाज भेदभाव की

9. सिंह युगेश्वर, (2001) कबीर समग्र (भाग-1), हिंदी प्रचारक पब्लिकेशन, वाराणसी, पृष्ठ 219

10. दास श्याम सुंदर, (2013) कबीरग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 11

11. <https://navbharattimes.indiatimes.com>

/astro/spirituality/speaking-tree/-/articleshow/480154.cms

समस्या से त्रस्त था और सामंतीय शोषण की प्रवृत्ति अपनी पराकाष्ठा पर थी। यह सब कुछ धर्म के नाम पर होता था। ऐसे में रैदास व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को महत्त्व देते थे। वे एकता के महत्त्व एवं आवश्यकता को रेखांकित करते थे और इस बात के लिए प्रेरित करते थे कि सब लोग स्वाभाविक रूप से भेदभाव को भुलाकर समन्वित जीवन बसर करें, तभी समाज का हित होगा।

संत रविदास ने यह स्पष्ट किया कि सच्ची आध्यात्मिकता का आधार मानवता है। उनका मानना था कि हर व्यक्ति के भीतर ईश्वर का वास होता है, और सभी मनुष्य समान हैं। यह विचार उस समय की धार्मिक रूढ़िवादिता के खिलाफ था, जो केवल उच्चजातियों को आध्यात्मिकता का अधिकारी मानती थी। उन्होंने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से यह संदेश दिया कि भक्ति और ईश्वर प्राप्ति के लिए किसी बाहरी कर्मकांड या जाति-धर्म की आवश्यकता नहीं है। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' इस बात का प्रमाण है कि आंतरिक पवित्रता और सच्ची भक्ति ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है। यह विचार आज के समय में भी सामाजिक पुनर्जागरण के लिए बेहद प्रेरणादायक है, जब बाहरी दिखावे और धार्मिक कट्टरता ने मानवता को विभाजित कर रखा है।

रैदास जी की शिक्षाओं में जाति और वर्ग के भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाने की ताकत थी। उन्होंने मानव समानता की शिक्षा दी और यह संदेश दिया कि हर व्यक्ति को अपनी गरिमा का अधिकार होना चाहिए। उनके विचार इस बात का समर्थन करते हैं कि किसी भी समाज की प्रगति तभी संभव है जब उसमें हर व्यक्ति को समान अवसर मिले। आज भी जब सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ व्यापक रूप से विद्यमान हैं, संत रविदास के विचार न केवल प्रेरणा देने वाले हैं बल्कि समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।

रैदास कहते हैं कि यदि कोई ब्राह्मण गुणहीन है तो उसकी पूजा मत करो। यदि कोई चांडाल है, अंत्यज है, निम्न जाति का है लेकिन उसकी करनी अच्छी है, वह गुण युक्त है, प्रवीण है तो उसके चरणों की पूजा करनी चाहिए—

रैदास ब्राह्मण मति पूजिए, जए होवै गुन हीन।

पूजिहिं चरन चंडाल के, जउ होवै गुन प्रवीन।¹²

रैदास उस मध्यकालीन परिवेश में यह बात कह रहे हैं, जिसमें जाति के बंधन जकड़े हुए थे और समाज में वर्णव्यवस्था का अधिक प्रभाव था। आधुनिक समय में जब सामाजिक असमानता, जातिवाद और वर्ग संघर्ष के कारण समाज टूट रहा है, तब संत रैदास की शिक्षाएँ हमें एक नई राह दिखा सकती हैं। उनकी शिक्षाएँ केवल विचारधारा नहीं हैं; वे क्रियाशील योजनाएँ हैं, जो समाज को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक हैं।

12. शरण जगदीश (2011), रैदास ग्रंथावली, साहित्य संस्थान, पृ.—97

रैदास जी ने यह दिखाया कि सामाजिक परिवर्तन के लिए केवल आलोचना पर्याप्त नहीं है; इसके लिए एक सकारात्मक दृष्टिकोण और आदर्श प्रस्तुत करना भी आवश्यक है। उन्होंने बेगमपुरा की अवधारणा के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि समाज को किस दिशा में जाना चाहिए। आज जब हम सामाजिक सुधार की बात करते हैं, तो हमें संत रैदास के विचारों को ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि वे न केवल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं बल्कि एक ऐसा दृष्टिकोण भी देते हैं, जो समाज को एकजुट और सशक्त बना सकता है।

उनका जीवन और उनकी शिक्षाएँ यह प्रेरणा देती हैं कि परिवर्तन संभव है, बशर्ते हम उसमें विश्वास करें और उसे लागू करने का साहस रखें। रैदास जी का यह दृष्टिकोण आज के समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि सामाजिक सुधार के लिए उनके विचार और आदर्श हमें एक ठोस आधार प्रदान करते हैं। उनके विचार हमें यह सिखाते हैं कि समाज में बदलाव लाने के लिए हर व्यक्ति को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी और समानता, प्रेम और करुणा के मूल्यों को अपनाना होगा।

संत रैदास जी की शिक्षाओं का प्रभाव उनके समय से लेकर आज तक व्यापक रूप से देखा जा सकता है। भक्ति आंदोलन में उनकी भूमिका ने समाज को जागरूक करने और सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी शिक्षाओं ने 'गुरु ग्रंथ साहिब' जैसे महान ग्रंथों में स्थान पाया, जो यह प्रमाणित करता है कि उनके विचार कालजयी हैं।

संत रैदास जी के विचारों की प्रासंगिकता न केवल उनके समय तक सीमित है, बल्कि यह वर्तमान और भविष्य के समाज के लिए भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। उनका जीवन और शिक्षाएँ सामाजिक पुनर्जागरण के लिए एक प्रेरणास्रोत हैं और मानवता के विकास के लिए मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती हैं। संत रैदास का विचार—विमर्श जाति, धर्म और सामाजिक विभाजन के विरुद्ध एक सशक्त बौद्धिक प्रतिरोध के रूप में उभरता है। उन्होंने भक्ति को सामाजिक न्याय का माध्यम बनाते हुए समानता और मानवीय गरिमा को आध्यात्मिक तथा सामाजिक दोनों स्तरों पर सर्वोपरि रखा। उनकी 'बेगमपुरा' की संकल्पना एक वैकल्पिक सामाजिक आदर्श प्रस्तुत करती है, जो समतामूलक व्यवस्था, निर्भयता और शोषण—रहित जीवन की ओर संकेत करती है। समकालीन संदर्भ में, जब समाज जाति—आधारित हिंसा, असमानता और सांप्रदायिक द्वंद्व से ग्रस्त है, संत रैदास की शिक्षाएँ सामाजिक पुनर्जागरण, नैतिक उत्थान और मानवतावादी समाज की निर्माण—प्रक्रिया के लिए अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध होती हैं।



संपर्क

अनिल राय— 86, अमित अपार्टमेंट सेक्टर-13 रोहिणी, दिल्ली-110085,
मोबाइल-9868907919, ई-मेल: anilrai1963@gmail.com

‘वर्चस्व’

एक वियावान जंगल था उसमें शेर, हाथी, गाय, बकरी, सुअर आदि अनेकों जानवर रहते थे।

आश्चर्य की बात ये थी कि एक शेर को एक बकरी के बच्चे से प्यार हो गया। प्यार इतना बढ़ा कि वह सब काम छोड़का अर्थात् शिकार करना छोड़कर उसी की देखभाल में रहने लगा।

ये बात दूसरे शेरों को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने आकर उस शेर को समझाया और कहा कि वह उस बकरी के बच्चे से मोह छोड़ दे नहीं तो वे उस बकरी के बच्चे को मार डालेंगे।

शेर भी बहुत जिद्दी था, जब तक मैं जिन्दा हूँ मेरे उस बकरी के बच्चे का कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता।

सोच लो। कहकर सभी शेर जंगल में वापिस चले गए।

और इस घटना के ठीक दूसरे दिन सभी शेरों ने बकरी के बच्चे पर आक्रमण कर दिया। शेर ने जान की बाजी लगा दी और बकरी के बच्चे को बचाते-बचाते अपनी जान दे दी। सभी शेरों ने मिलकर उसे मार डाला।

जंगल के अन्य जानवरों ने उन शेरों से पूछा कि आपने अपने ही शेर को क्यों मार डाला।

तभी सभी ने एकस्वर में कहा, ‘कई बार अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए यदि अपने या अपनो की बलि भी देनी पड़े तो कोई बात नहीं। बकरी का बच्चा मामूली सा था। शेर उसे पाल रहा था। अगर हम अपने शिकार से प्रेम करने लगेंगे तो जिएंगे कैसे। मामूली और ताकतवर के बीच का फर्क तो रहना ही चाहिए।

उनकी यह बात सुन कर जंगल के शेष जानवर सहम गए थे। बकरी का बच्चा अब सुरक्षित नहीं था

— पूरन सिंह

‘फीजी हिंदी’ और आयातित विदेशी शब्दावली

विमलेश कांति वर्मा*

प्रवास की प्रक्रिया और प्रवासन की लंबी अवधि के कारण प्रवासी अपनी भाषा को संजोकर रखता हुआ भी जीवनयापन के लिए स्थानीय भाषा को अपनाने के लिए विवश होता है। नए परिवेश में अपनी अभिव्यक्ति को सहज बनाने के उपक्रम में नए देश की शब्दावली को विशेषकर संज्ञा और क्रिया शब्दों को पहले अपनाता है और ये शब्द प्रायः उसके दैनिक जीवन से संबंधित होते हैं— यथा अभिवादन संबंधी शब्दावली, नाते-रिश्ते की शब्दावली, खानपान की शब्द संपदा आदि। इसके बाद वह विशेषण और क्रिया विशेषण अपनाता है। धीरे-धीरे उसकी भाषा में अनेक शब्द ऐसे आ जाते हैं जिसे उसके अपने परिवार वाले या गाँव वाले नहीं समझ पाते हैं और यही उसकी नई भाषा ‘प्रवासी हिंदी’ के नाम से अभिहित होती है और उसे अपने मूलस्थान के निवासियों और दूसरों से अलग करती है।¹

गिरमिट प्रथा के अधीन जो भारतीय श्रमिक के रूप में मॉरीशस (1834) गुयाना (1838), त्रिनिदाद और टोबागो (1845), दक्षिण अफ्रीका (1871), सूरीनाम (1873) व फीजी (1879) आदि देशों में गए उन सभी प्रवासी भारतीयों की हिंदी में अनेक शब्द आपको ऐसे मिलेंगे जो आपको अपरिचित लगेंगे और उनके अर्थ बिना ठीक से समझे उन भारतीयों को आप पूरी तरह ठीक से समझ भी नहीं सकेंगे। आज आवश्यकता है कि प्रवासी हिंदी की शब्दावलियों का विधिवत् अध्ययन हो और उनके कोश बनें जिससे उनकी भाषा और साहित्य पर अच्छा शोधपरक काम हो सके। विदेशी विद्वानों द्वारा इस दिशा में थोड़ा-बहुत काम हुआ है पर यह क्षेत्र इतना बड़ा और महत्वपूर्ण है कि इस पर अभी बहुत काम होना बाकी है।²

* लब्धप्रतिष्ठ भाषावैज्ञानिक और प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य के विशेषज्ञ। प्रमुख रचनाएँ— ‘फीजी का सृजनात्मक स्वरूप और विकास’ ‘फीजी में हिंदी’, ‘सूरीनाम का सृजनात्मक’ हिंदी साहित्य आदि। भारतीय उच्चायोग फीजी में वरिष्ठ राजनयिक के रूप में प्रथम सचिव रहे।

1. विमलेश कांति वर्मा, हिंदी और उसकी उपभाषाएँ, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृष्ठ 319
2. विमलेश कांति वर्मा, गिरमिटिया हिंदी, गवेषणा अंक 124 अप्रैल-जून 20 21 पृष्ठ 23- 34, केंद्रीय हिंदी संस्थान, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

फीजी हिंदी के भाषिक स्वरूप पर उपलब्ध हिंदी में एक ही पुस्तक है जो मेरे और सुश्री सुनंदा वर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'फीजी हिंदी— हिंदी का विश्व फलक'³ शीर्षक से केंद्रीय हिंदी संस्थान, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने वर्ष 2023 में प्रकाशित की थी। इसी शृंखला में सरनामी हिंदी पर मेरी एक अलग पुस्तक सुश्री भावना सक्सेना के सहलेखन में "सरनामी हिंदी— हिंदी का विश्व फलक"⁴, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने वर्ष 2021 में प्रकाशित की थी।

फीजी हिंदी पर अंग्रेजी में लिखित तीन पुस्तकें मेरे देखने में आई हैं और ये तीनों ही पुस्तकें इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि फीजी हिंदी पर लिखी गई ये पहली पुस्तकें हैं जो यह संकेत देती हैं कि विद्वत समाज हिंदी की इन विदेशी भाषिक शैलियों के महत्व को समझने लगा था और इस प्रकार नई दिशा में अध्ययन और अनुसंधान का यह श्रीगणेश था। पहली पुस्तक का शीर्षक 'फीजी हिंदी'⁵ है (1977)। इसके लेखक रोडनी मोग हैं। यह पुस्तक फीजी हिंदी की व्याकरणिक संरचना पर प्रकाश डालती है। दूसरी पुस्तक सुश्री सूज़न होब्स का 'फीजी हिंदी—अंग्रेजी—फीजी हिंदी शब्द कोश'⁶ (1985) है और तीसरी जेफ. सीगल की पुस्तक 'से ईट इन फीजी हिंदी'⁷ (1977) है जो बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले हिंदी के कुछ वाक्यों का संकलन है और पाठकों को बोलचाल की फीजी हिंदी की एक बानगी देता है।

फीजी हिंदी और आयातित विदेशी शब्दावली पर चर्चा करने से पहले आवश्यक है कि फीजी के भाषाई परिदृश्य को समझ लिया जाए।

फीजी का भाषाई परिदृश्य

फीजी द्वीप समूह की नवीनतम सरकारी जनगणना के उपलब्ध आंकड़े वर्ष 2017 के हैं⁸। सरकारी आँकड़ों में फीजी की कुल जनसंख्या आठ लाख चौरासी हजार आठ सौ सत्तासी (8, 84, 887) बताई गई है। जातीय आँकड़ों के आधार पर फीजी के प्रमुख भाषाई समूहों का विवरण इस प्रकार है:

3. विमलेश कांति वर्मा व सुनंदा वर्मा, फीजी हिंदी— हिंदी का विश्व फलक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, शिक्षा मंत्रालय, आगरा 2023
4. विमलेश कांति वर्मा व भावना सक्सेना, सरनामी हिंदी : हिंदी का विश्व फलक, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली 2020
5. Moag, Rodney F- Fiji Hindi & A Basic Course and Reference Grammar Published by Australian National University Press in Collaboration with EÜtension Services, University of South Pacific, Suva, Fiji 1977
6. Hobbs, Susan, Fiji Hindi & English & Fiji Hindi Dictionary, Published by Ministry of Education, Fiji 1985
7. Siegel. Jeff. Say It in Fiji Hindi. Pacific Publications. Sydney 1977.
8. Census Data of Fiji Bureau of Statistics (FBOS) 2017 <https://www-statsfiji.gov.fj/census&surveys/census-of-population-and-housing/>

भाषाई समूह	प्रमुख भाषाएँ	जनसंख्या (%)	भौगोलिक संकेंद्रण
आई तौकेई	मानक फ़िजियन एवं क्षेत्रीय बोलियाँ	56-8%	पूरे द्वीप समूह में; ग्रामीण व आंतरिक क्षेत्रों में प्रभुत्व
इंडो- फ़िजियन	फीजी हिंदी (फीजी बात)	37.5%	पश्चिमी व उत्तरी तट; शहरी केंद्र (सूवा, नांदी, लौटोका)
अन्य	अंग्रेजी, रोटुमन, चीनी, तुवालुआन	5.7%	शहरी क्षेत्र एवं विशिष्ट द्वीप (जैसे रोटुमा, राबी)

अंग्रेजी देश की आधिकारिक भाषा है और शासन, व्यापार तथा अंतरजातीय संप्रेषण की प्रमुख संपर्क भाषा (Lingua Franca) के रूप में प्रयुक्त होती है।

फीजी हिंदी, जिसे स्थानीय रूप से फीजीबात कहा जाता है, लगभग सभी इंडो-फ़िजियनों (भारतीय-फीजियन) की मातृभाषा है। यह भारत में बोली जाने वाली मानक हिंदी से भिन्न है।

फीजी हिंदी, 1879 से 1916 के बीच गिरमिटिया श्रमिकों द्वारा बोली जाने वाली अवधी, भोजपुरी व मगही आदि बोलियों के मिश्रण से विकसित हुई है। इसमें फ़िजियन और अंग्रेजी भाषाओं से भी पर्याप्त शब्द लिए गए। फीजी ब्रिटिश उपनिवेश था इसलिए अंग्रेजी, जो फीजी में और वहाँ के मूल निवासियों की भाषा है, दोनों भाषाओं के शब्दों का फीजी हिंदी में आना स्वाभाविक ही था।

फीजी के संविधान⁹ में फीजी हिंदी को फीजी की तीन आधिकारिक भाषाओं-अंग्रेजी और आई तौकेई के साथ ही राजभाषा की रूप में मान्यता प्राप्त है। पुराने जनगणना अभिलेखों में फीजी हिंदी को 'हिंदुस्तानी' कहा गया है।

हिंदी क्षेत्र

फीजी द्वीप समूह में वीतीलेवु (पश्चिमी एवं उत्तरी प्रभाग)- सिंगातोका से नांदी और लौटोका होते हुए राकी तक फैली हुई शर्करा पट्टी (sugar belt) में तथा दूसरे प्रमुख द्वीप वनुआ लेवु (उत्तर) के लम्बासा नगर और उसके आसपास के गन्ना कृषि क्षेत्र (cane field) हिंदी पट्टी के हैं और यहाँ प्रमुख रूप से फीजी हिंदी बोली जाती है।

आई तौकेई (फ़िजियन) क्षेत्र

विती लेवु द्वीप का आंतरिक भाग: मुख्यतः आई तौकेई (फ़िजियन) क्षेत्र है। लाउ एवं लोमाइविटी द्वीप समूह भी लगभग पूर्णतः आई तौकेई भाषा क्षेत्र हैं और यह 'फ़िजियन हृदय क्षेत्र'- मध्य एवं पूर्वी प्रभाग (Fijian Heart Land) कहा जा सकता है। साथ ही शहरी केंद्र (सूवा/लामी/नसीनू आदि नगर) में एक "भाषाई संगम", देखा

9. Constitution of the Republic of Fiji (2013) Section 3 (Language) and section 31 (Education) <https://www.fiji-gov-fj/About&Fiji/Fijian&Constitution>

जाता है जहाँ फीजी हिंदी, आई तौकेई (फिजियन) और अंग्रेजी समानांतर रूप से प्रयुक्त होती है।

अल्पसंख्यक भाषा क्षेत्र

रोटुमा द्वीप में रोटुमन भाषा, राबी द्वीप में किरिबासी (बनाबन) भाषा तथा कियोआ द्वीप में तुवालुआन भाषाएँ बोली जाती हैं। अधिक स्पष्टता के लिए एक सारणी के रूप में इसे देखा जा सकता है—

क्षेत्र	प्रमुख भाषा	द्वितीयक/अल्पसंख्यक भाषाएँ
पश्चिमी प्रभाग (नांदी, लौटोका तथा बा)	फीजी हिंदी	आई तौकेई, अंग्रेजी
उत्तरी प्रभाग (लम्बासा, मकुआता)	फीजी हिंदी	आई तौकेई
केंद्रीय प्रभाग (सूवा, नसीनू, रेवां)	बहुभाषी (हिंदी / आई तौकेई/अंग्रेजी)	कैंटोनीज़, रोटुमन
पूर्वी/समुद्री (लाउ, लोमाइविटी)	आई तौकेई (स्थानीय बोलियाँ)	बहुत कम हिंदी वक्ता
रोटुमा द्वीप	रोटुमन	अंग्रेजी, आई तौकेई

सांख्यिकीय जनगणना सार (2017) के रूप में कहा जा सकता है कि फीजी द्वीप समूह में आई तौकेई (फिजियन): लगभग 5,02,900 वक्ता (56.8%), फीजी हिंदी (फीजी बात): लगभग 3,31,800 वक्ता (37.5%), रोटुमन: लगभग 10,000 वक्ता हैं तथा देश की, आधिकारिक भाषाएँ: अंग्रेजी, आई तौकेई तथा फीजी हिंदी हैं।¹⁰

गिरमिटिया समाज के गन्ना-कृषि क्षेत्र में प्रभुत्व और शहरीकरण ने फीजी हिंदी को एक प्रवासी बोली से विकसित होकर एक विशिष्ट राष्ट्रीय भाषा का रूप प्रदान किया है।

भाषाई जीवंतता

यद्यपि शिक्षा और मीडिया में अंग्रेजी प्रमुख भाषा है, फिर भी आई तौकेई और फीजी हिंदी दोनों को देश की प्रमुख भाषाएँ माना जाता है क्योंकि ये घरेलू जीवन की प्राथमिक भाषाएँ हैं। हालाँकि शहरी युवाओं में “फिंग्लिश” (फिजियन-हिंदी-अंग्रेजी मिश्रण) का प्रयोग बढ़ रहा है। व्यक्ति अभिव्यक्ति के लिए सरलतम भाषा रूप का चयन करता है क्योंकि उसका लक्ष्य मूलतः संप्रेषण ही होता है, उसे भाषा संस्कार की चिंता नहीं होती। भाषा संस्कार की चिंता प्रबुद्ध सुशिक्षित समाज के सीमित परिवेश में ही की जाती है।

10. Census Data of Fiji Bureau of Statistics (FBOS) 2017 <https://www.statsfiji.gov.fj/census-surveys/census-of-population-and-housing/>

भाषाई अस्मिता बनाम भाषिक यथार्थ

फीजी में भारतीय मूल के और दूसरे वर्ग के लोग जो हिंदी बोलते हैं और जो फीजी देश में दूसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली संविधान स्वीकृत भाषा है, उसे 'फीजी हिंदी' कहा जाता है पर भारतीय मूल के लोग उसे आपस में फीजी हिंदी न कहकर 'फीजीबात' कहते हैं।

संविधान और सरकारी दस्तावेजों में जिसे आज 'फीजी हिंदी' कहा जाता है उसे ही पहले सरकारी आंकड़ों में 'हिंदुस्तानी' कहा गया है। आज फीजी के भारतीय फीजी हिंदी/फीजीबात की राष्ट्रीय और वैश्विक मान्यता के लिए प्रयत्नशील हैं और यह बताना चाहते हैं कि 'फीजी हिंदी' भारत की हिंदी से बहुत भिन्न है। उसकी शब्द संपदा अलग है, उसकी व्याकरणिक संरचना अलग है और उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी अलग है। सच भी यही है कि मानक हिंदी जो फीजी के विद्यालयों में पढ़ाई जा रही है और जो भारतीयों द्वारा बोली जा रही है दोनों अलग अलग भाषा रूप हैं। प्रो. सुब्रमनी और अनेक भारतीय मूल के विद्वान फीजी में फीजी हिंदी/फीजीबात के लिए निरंतर प्रयासरत हैं कि फीजी हिंदी का प्रयोग राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी पाठ्यक्रम, जनसंचार, प्रशासन और साहित्य में हो। आज विद्यालयों में जब हिंदी भाषा शिक्षण का प्रश्न होता है तो विद्यालयों में मानक हिंदी पढ़ाई जा रही है, पर भारतीय छात्रों के मध्य विद्यालय में जो हिंदी बोली जाती है वह फीजी हिंदी या फीजी बात है। यही कारण है कि फीजी के भारतवंशियों के मध्य भाषा द्वैत की स्थिति रहती है।

मुझे एक घटना स्मरण आ रही है। देश की राजधानी सुवा में मैं पथिक क्रिसेंट में रहता था। पथिक क्रिसेंट एक तरह से भारतवंशियों का मोहल्ला था और मेरे सारे पड़ोसी देश के प्रतिष्ठित भारतीय थे। डॉ. सुरेंद्र सिंह, श्री के. पी. शर्मा, श्री देवेन्द्र पथिक और ललाटो स्टोर के मालिक सब मेरे पड़ोसी थे। जब भी मैं उनके घर जाता या वे मेरे घर आते, आपस में तो वे फीजीबात बोलते पर मेरे साथ मानक हिंदी— खड़ी बोली बोलने का प्रयत्न करते। मुझे और मेरी पत्नी दोनों को यह स्थिति अजीब सी लगती। एक दिन मैंने बीच में उन्हें टोककर कहा कि आप जिस हिंदी में अपनी पत्नी से बात कर रहे हैं उसे मैं पूरी तरह समझ रहा हूँ और आप मुझसे भी फीजी हिंदी में बात कर सकते हैं। मैं और मेरी पत्नी दोनों मूलतः इलाहाबाद के रहने वाले हैं और मेरी भाषा आपके ही समान अवधी है। उस दिन से वे मुझसे फीजी हिंदी में बोलने लगे। मुझे और पत्नी को थोड़ी वह अलग लगती थी क्योंकि उसमें 'काईबीती' के शब्द भी होते थे जिनसे हम अपरिचित थे।

फीजी हिंदी का मूल आधार अवधी भाषा है,¹¹ पर उसमें हिंदी की अन्य बोलियों विशेषकर भोजपुरी और मगही आदि का भी समावेश हो गया है। कारण स्पष्ट है कि

11. विमलेश कांति वर्मा व सुनंदा वर्मा, फीजी हिंदी: हिंदी का विश्व फलक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा 2023 पृष्ठ 39-57

पहली खेप में जो भारतीय लेवनीदास जहाज से फीजी पहुँचे थे उनमें प्रधानता उन लोगों की थी जो उत्तर प्रदेश के अवधी क्षेत्र से थे। अवधी के साथ ही भोजपुरी क्षेत्र के भी भारतीयों के साथ होने से अवधी के साथ भोजपुरी की भाषिक विशेषताएँ भी अनुबंधित श्रमिकों की भाषा में दिखेंगी।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि फीजी हिंदी में उन सब भाषाओं के शब्द मिलेंगे जो वहाँ बोली जाने वाली भाषाएँ हैं और साथ ही वे शब्द भी बहुतायत में मिलेंगे जो अंग्रेजी के हैं या अंग्रेजी से आए विदेशी शब्द हैं।

फीजी हिंदी या फीजीबात में आयातित विदेशी शब्दावली को हम तीन प्रमुख वर्गों में वर्गीकृत कर देख सकते हैं—

- (क) फीजी हिंदी में आयातित अंग्रेजी शब्दावली
- (ख) फीजी हिंदी में आयातित आई तौकेई शब्दावली
- (ग) फीजी हिंदी में अन्य भाषाओं से आयातित शब्दावली
- (घ) फीजी हिंदी में आयातित अंग्रेजी शब्दावली

जब भारतीय श्रमिकों का फीजी द्वीप में वर्ष 1879 में आगमन हुआ उस समय फीजी ब्रिटिश उपनिवेश था, अंग्रेजी सत्ता की भाषा थी। पारस्परिक बातचीत के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक था। ये प्रवासी गिरमिट भारत के ग्रामीण अंचल से थे, अशिक्षित थे और अंग्रेजी से नितांत अपरिचित थे ऐसी स्थिति में इन भारतीयों ने अपने ब्रिटिश मालिकों से सुन-सुनकर उनके कुछ शब्द स्वयमेव सीखे थे। अपरिचित ध्वनियाँ उन्हें कठिन लगतीं, उनके अनुकरण की वे भरपूर कोशिश भी करते और किसी प्रकार उन्होंने कुछ अंग्रेजी शब्द सीखे पर वे शब्द विकृत रूप में उनके द्वारा समझे और बोले गए। ऐसे अंग्रेजी से लिए गए शब्द (शिक्षा, प्रशासन, तकनीक, आधुनिक जीवन) से संबंधित हैं और अंग्रेजी शब्दों के विकृत रूप हैं। अंग्रेजी शब्दों के ये अपभ्रंश रूप आज फीजी हिंदी की शब्द संपदा के अंग हैं। इनकी एक संक्षिप्त सूची संदर्भ के लिए नीचे दी जा रही है। ये शब्द इसी रूप में फीजी हिंदी में प्रयुक्त भी हो रहे हैं। इन शब्दों के भाषिक संदर्भ के साथ सांस्कृतिक संदर्भ भी है जो भारतीय श्रमिकों के कठिन जीवन संघर्ष के मौखिक दस्तावेज भी हैं। ऐसे शब्दों को भी दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहली कोटि के अंग्रेजी भाषा से फीजी हिंदी में आए वे शब्द हैं जो प्रारंभिक गिरमिट काल में आए और जिनका प्रयोग भारतीय श्रमिक अपभ्रंश रूप में आज भी कर रहे हैं। दूसरी कोटि के वे शब्द हैं जो बाद में तीसरी और चौथी पीढ़ी में फीजी हिंदी में जुड़े।

पहली कोटि के शब्दों का प्रयोग आज भी फीजी हिंदी में पर्याप्त मिलेगा, साहित्यिक रचनाओं में भी इनका भरपूर प्रयोग दिखेगा। ये शब्द अब गिरमिट संस्कृति से जुड़े हुए शब्द बन गए हैं यथा—

- आरकाटी Eng. Recruiter who used deception
- कुलम्बर Eng. A corruption of the English word "call number"
- कुली Eng. Coolie
- कुली लाइन Eng. Cooli line
- गिरमिट Eng. Agreement
- चिनिदाद Eng. Trinidad
- जहाजी भाई Eng. Ship brother & the bond formed between labourers on the ship that replaced family ties.

- टउन Eng. Town
- टीचा Eng. Teacher
- डिपुआ Eng. Depot
- तास Eng. Task
- पउन Eng. Pound
- मगजीन Eng. Magazine
- मरीचदेस Eng. Mauritius
- सिरदार Eng. Sardar
- सिरीरामदेस Eng. Surinam
- हुसियार Eng. Overseer
- कुली लाइनएंग. Residential area of indentured labours

फीजी के गिरमिट गीतों¹² में इन शब्दों के प्रयोग देखें

भोली हमें देख अरकाटी (recruiter) भरमाया हो,
 कलकत्ता पार जाओ पाँच साल रे बिदेसिया।
 डीपुआ (depot) माँ लाए पकरायो कागदुआ हो,
 अंगुठुआ लगाए दीना हाय रे बिदेसिया।
 कुदारी, कुरबाल दीना, हाथुआ माँ हमरे हो,
 घाम मां पसीनुआ बहाए रे बिदेसिया।
 खेतुआ माँ तास (task) जब देवे कुलम्बरा (call number) हो,
 मार-मार हुकुम चलाए रे बिदेसिया।

फीजी हिंदी में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द उच्चारण की दृष्टि से पर्याप्त अलग हैं यथा अंग्रेजी का 'girl' और 'girls' शब्द फीजी हिंदी में 'गेर्ल' और 'गेर्ल्स' के रूप में बोला जाता है। अंग्रेजी शब्दों के फीजी हिंदी में उच्चरित रूप अध्ययन का रोचक विषय हो सकते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी का 'teacher' शब्द फीजी हिंदी में 'टीचा' बन गया,

12. धीरा वर्मा, फीजी के गिरमिट गीत-भारतीयों की संघर्ष कथा के मौखिक दस्तावेज़, गगनांचल, अप्रैल-जून 2000 भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली

Pound शब्द पउन बन गया। फीजी हिंदी के प्रसिद्ध कवि करुणा नागरान नायर की 'ज्वाला हमारो नाम' शीर्षक फीजी हिंदी कविता में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग देखिए—

हफता भर हम गया बराबर बांधे रोटी चोखा।

लडके हमके खूब चिधाइन, और टीचा (teacher) रही अनोखा।।

जहाँ सनिच्चर भय कि बप्पा, पहुँचा पैदर टउन (town)।

सदा पानी ले सब भर दिहिस, कर्जा कइयो पउन (pound)

गिरमिट काल में अंग्रेजी के उन्हीं शब्दों का फीजी हिंदी में समावेश हुआ जो सरकारी ब्रिटिश अफसरों द्वारा प्रयुक्त होने वाले शब्द थे, जो उन्हें तंग कर कोड़े के बल पर उनसे काम करवाते थे और उनका हर तरह से शोषण करते थे। ऐसे शब्द संख्या में बहुत कम होते थे और वे अंग्रेजी शब्द अपभ्रंश रूप में ही बोले और सुने जाते थे। अंग्रेजी शब्दों का अधिक प्रयोग बहुत बाद में उस समय प्रारंभ हुआ जब अंग्रेजी भाषा का वहाँ की शिक्षा में प्रवेश हुआ और भारतीयों ने विद्यालयों में अंग्रेजी सीखी।

फीजी हिंदी में प्रयुक्त होने वाले कुछ बहुप्रचलित अंग्रेजी शब्दों की तालिका नीचे दी जा रही है—

फीजी बात	अंग्रेजी	अर्थ
स्कूल	school	विद्यालय
मास्टर	master	अध्यापक
ऑफिस	office	कार्यालय
बस	bus	बस
टिकस	ticket	टिकट
पुलिस	police	पुलिस
जज	judge	न्यायाधीश
हस्पताल	hospital	अस्पताल
कंपनी	company	कंपनी
बैंक	bank	बैंक
पेपर	paper	अखबार
ट्रेन	train	रेल
मार्केट	market	बाजार

(ख) फीजी हिंदी में आयातित आई तौकेई शब्दावली

फीजी हिंदी में विदेशी भाषाओं से आयातित शब्दावली में सबसे अधिक प्रतिशत आई तौकेई शब्दों का है। कारण स्पष्ट है कि गिरमिट प्रथा के अधीन आए अनुबंधित भारतीय श्रमिकों का प्रारंभ से ही सबसे अधिक संपर्क तो वहाँ के जनवर्ग से ही था इसलिए उनकी भाषा के शब्दों का समावेश भारतीयों की भाषा में होना नितांत

स्वाभाविक था। ये आई तौकेई भाषा से हिंदी में आए शब्द जीवन के सभी प्रमुख क्षेत्रों के हैं। सुविधा के लिए इन्हें कई वर्गों में वर्गीकृत कर दिया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के सभी प्रमुख क्षेत्रों से फीजी हिंदी ने आई तौकेई शब्दों के आयात से अपने को समृद्ध किया है।

आई तौकेई भाषा से आयातित वर्गीकृत शब्दावली

1) आवास, ग्राम और भौगोलिक शब्द

फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
बुरे	bure	पारंपरिक झोपड़ी
कोरो	koro	गाँव
वानुआ	vanua	भूमि/देश/समुदाय
यासा	yasana	जिला/क्षेत्र
तवाले/तवाले-त	tavale	अतिथि/पराया
मटानिका	Matanika	पत्तों की छत
रेवारेवा	revareva	दलदली भूमि
वुनी	vuni	छिपा हुआ/गुप्त
नडोगा	nadroga	दलदली इलाका/नदी-तट

2) खान-पान, पेय और भोजन-पद्धति

फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
याकू/यागोना	yaqona	कावा पेय
कावा	kava	कावा (सामूहिक पेय)
लवो	lovo	भूमिगत भट्ठी/पकाने की विधि
तारो	taro	कंद (अरबी/स्थानीय भोजन)
कासावा	cassava	(स्थानीय प्रयोग) कसावा
कोकोदा	kokoda	कच्ची मछली का व्यंजन
पल्पा	palau	मिश्रित पकवान
रुरु	rourou	तारो-पत्तों की सब्जी

3) वनस्पति, कृषि और प्राकृतिक वस्तुएँ

फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
दालो	कंसव	तारो
कोपरा	वचतं	सूखा नारियल
नोनू	दवदप	औषधीय फल
वेसी	अमेप	कठोर लकड़ी
पांडानुस	अंकतं/चंदकंदने	पत्तेदार वृक्ष
मंग्रो	उंदहतवअम	(स्थानीय) मैंग्रोव

बुका	इनां	स्थानीय पौधा
4) समुद्र, मछली संबंधी और नौकायन		
फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
वोका	vaka	डोंगी / नाव
बाका	baka	खाड़ी / लैगून
काइ	kai	खाने योग्य शंख
इका	ika	मछली
तावा	tava	समुद्री तट
मोआना	moana	समुद्र

5) सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन		
फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
सेवुसेवु	sevusevu	स्वागत-अनुष्ठान
याकोना-सेवु	yaqona sevusevu	कावा-समारोह
लाली	lali	पारंपरिक ढोल
मेके	meke	नृत्य-गीत
तवाले	tavale	बाहरी / मेहमान
काइ-कोरोप	koro	गाँव का निवासी

6) व्यक्ति, संबोधन और पहचान		
फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
काइ	kai	निवासी / का
काइ-फीजी	kai Fiji	फीजी का
राटू	ratu	पुरुष मुखिया / उपाधि
अदि	adi	महिला मुखिया / उपाधि
तुई	tui	प्रमुख / राजा

7) धर्म, विश्वास और परंपरा		
फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
देवु	dewa	आत्मा / देव
ताबू	tabu	निषिद्ध / पवित्र
माना	mana	आध्यात्मिक शक्ति
वुनिवालु	vunivalu	युद्ध-नेता

8) दैनिक क्रियाएँ, गुणवाचक शब्द		
फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
टोटोका	totoka	सुंदर
बाका-बाका	baka	खुला / साफ

बोगी	bogi	रात
सिगा	sigga	दिन
लाकोलाको	lako	जाना

9) औपनिवेशिक-संपर्क से फैले स्थानीय रूप

फीजी बात	आई तौकेई	मूल अर्थ
लाइन-कोरो	koro	बस्ती/लाइन
काम-वानुआ	vanua	जमीन-काम
ननड्रोगा-लाइन	nadroga	क्षेत्रीय बस्ती

फीजी हिंदी में आगत आई तौकेई शब्द फीजी हिंदी में कितने सहज रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं यह स्पष्ट हो जाता है। पहले फीजी हिंदी का वाक्य दिया गया है उसके नीचे मानक हिंदी में वाक्य दिया गया है। आई तौकेई शब्द बोल्ड रूप में दिया गया है।

(क) खान-पान/अनुष्ठान

1. आज शाम **याकू** पीएगा क्या?
→ आज शाम कावा पेय पियोगे क्या?
2. पहले **सेवुसेवु** कर लो, फिर बात होगी।
→ पहले स्वागत-अनुष्ठान कर लो, फिर बातचीत होगी।
3. खाना **लवो** में पका है।
→ खाना भूमिगत भट्ठी में पका है।
4. **रुरू** गरम-गरम है।
→ तारो-पत्तों की सब्जी गरम है।
5. आज **दालो** अच्छा उबला है।
→ आज तारो अच्छी तरह उबला है।
6. त्योहार में ही **लवो** बनता है।
→ त्योहारों में ही भूमिगत भट्ठी का खाना बनता है।
7. **याकू-सेवु** के बाद सब शांत हो गए।
→ कावा-समारोह के बाद सब शांत हो गए।
8. **कोकोदा** आज ताजा है।
→ कच्ची मछली का व्यंजन आज ताजा है।
9. **नोनू** का रस सेहत के लिए अच्छा है।
→ नोनू फल का रस स्वास्थ्यवर्धक है।
10. **कोपरा** सुखाने का काम चल रहा है।
→ सूखे नारियल को सुखाया जा रहा है।

(ख) गाँव/भूमि/पहचान

11. हमारा **कोरो** पहाड़ी पर है।
→ हमारा गाँव पहाड़ी पर है।
12. वह **काइ-कोरो** है।
→ वह गाँव का निवासी है।
13. इस **वानुआ** से हमारा रिश्ता पुराना है।
→ इस भूमि/प्रदेश से हमारा पुराना रिश्ता है।
14. उस **यासा** में लोग ज्यादा हैं।
→ उस ज़िले/क्षेत्र में लोग अधिक हैं।
15. **लाइन-कोरो** में सफ़ाई हो रही है।
→ बस्ती/लाइन वाले गाँव में सफ़ाई हो रही है।
16. यह **वानुआ** हम सबको जोड़ता है।
→ यह भूमि/देश हम सबको जोड़ता है।
17. अलग-अलग **यासा** में बोली बदलती है।
→ अलग-अलग क्षेत्रों में बोली बदलती है।
18. **कोरो** में सब एक-दूसरे को जानते हैं।
→ गाँव में सब एक-दूसरे को जानते हैं।
19. **काइ-फीजी** दोस्त हमारे साथ आया।
→ फीजी का स्थानीय दोस्त हमारे साथ आया।
20. यह **वानुआ** सबकी है।
→ यह भूमि सबकी है।

(ग) समुद्र/प्रकृति

21. **वोका** से मछली लाए।
→ डोंगी से मछली लाए।
22. आज **इका** सस्ती मिली।
→ आज मछली सस्ती मिली।
23. **तावा** के पास बच्चे खेल रहे हैं।
→ समुद्र-तट के पास बच्चे खेल रहे हैं।
24. समंदर आज बहुत **मोआना** है।
→ समुद्र आज बहुत शांत है।
25. उधर **रेवारेवा** है।
→ उधर दलदली भूमि है।
26. **वेसी** की लकड़ी मज़बूत होती है।
→ वेसी पेड़ की लकड़ी मज़बूत होती है।

27. **पांडानुस** के पत्ते छत में लगे हैं।
→ पांडानुस के पत्तों से छत बनी है।
28. **काइ** शंख आज ज्यादा मिले।
→ खाने योग्य शंख आज अधिक मिले।
29. **इका** पकाने का तरीका अलग है।
→ मछली पकाने का तरीका अलग है।
30. बारिश में **मटनिका** की छत ठंडी रहती है।
→ पत्तों की छत बारिश में ठंडी रहती है।

(घ) **सामाजिक-सांस्कृतिक**

31. आज **लाली** बजेगा।
→ आज पारंपरिक ढोल बजेगा।
32. कल **मेके** देखने चलेंगे।
→ कल पारंपरिक नृत्य-गीत देखने चलेंगे।
33. यह काम यहाँ **ताबू** है।
→ यह काम यहाँ वर्जित है।
34. उस आदमी में बहुत **माना** है।
→ उस व्यक्ति में बहुत प्रभाव/आध्यात्मिक शक्ति है।
35. **राटू** सभा में आए।
→ प्रमुख/मुखिया सभा में आए।
36. **अदि** ने कार्यक्रम शुरू किया।
→ महिला प्रमुख ने कार्यक्रम शुरू किया।
37. गाँव के **तुई** ने फैसला दिया।
→ गाँव के मुखिया/राजा ने निर्णय दिया।
38. **मेके** में कहानी भी होती है।
→ नृत्य-गीत में कथा भी होती है।
39. **लाली** की आवाज़ दूर जाती है।
→ ढोल की आवाज़ दूर तक जाती है।
40. **सेवुसेवु** से सम्मान दिखता है।
→ स्वागत-अनुष्ठान से सम्मान प्रकट होता है।

(च) **गुण-वाचक/दैनिक क्रिया**

41. घर बहुत **टोटोका** है।
→ घर बहुत सुंदर है।
42. जगह **बाका-बाका** है।
→ जगह खुली है।

43. अभी **लाको**, हम आते हैं।
→ अभी जाओ, हम आते हैं।
44. सुबह **सिगा** जल्दी निकल आया।
→ सुबह दिन जल्दी निकल आया।
45. **बोगी** में बाहर मत जाना।
→ रात में बाहर मत जाना।
46. यह रास्ता **बाका** है।
→ यह रास्ता खुला है।
47. मौसम **टोटोका** है।
→ मौसम सुंदर है।
48. **सिगा** चढ़ते ही काम शुरू हुआ।
→ दिन चढ़ते ही काम शुरू हुआ।
49. **बोगी** में जल्दी सोना अच्छा है।
→ रात में जल्दी सोना अच्छा है।
50. अभी **लाको-आओ** जल्दी।
→ अभी जाकर जल्दी आओ।

(छ) मिश्रित दैनिक प्रयोग

51. **याकू** पीकर लोग बात करते हैं।
→ कावा पीकर लोग बातचीत करते हैं।
52. **कोरो** से शहर आए हैं।
→ गाँव से शहर आए हैं।
53. **इका** और **दालो** साथ पका।
→ मछली और तारो साथ पके।
54. **लवो** का स्वाद अलग होता है।
→ भूमिगत भट्ठी के खाने का स्वाद अलग होता है।
55. **मेके** सबको पसंद आया।
→ नृत्य-गीत सबको पसंद आया।
56. **लाली** बजते ही भीड़ आई।
→ ढोल बजते ही भीड़ आई।
57. **सेवुसेवु** के बाद खाना हुआ।
→ स्वागत-अनुष्ठान के बाद भोजन हुआ।
58. **वानुआ** की इज्जत रखनी चाहिए।
→ भूमि/देश का सम्मान करना चाहिए।

59. **काइ-कोरो** मदद करता है।
→ गाँव का निवासी मदद करता है।
60. **यासा** बदलते ही लोग बदलते हैं।
→ क्षेत्र बदलते ही लोग बदलते हैं।
- (ज) **अतिरिक्त अभ्यास-वाक्य**
61. **रुरू** बच्चों को पसंद है।
→ तारो-पत्तों की सब्जी बच्चों को पसंद है।
62. **कोपरा** बेचने गए।
→ सूखा नारियल बेचने गए।
63. **वेसी** से घर बना है।
→ वेसी लकड़ी से घर बना है।
64. **पांडानुस** गाँव में बहुत है।
→ पांडानुस का पेड़ गाँव में बहुत है।
65. **इका** बाज़ार में मिली।
→ मछली बाज़ार में मिली।
66. **तावा** के पास हवा चलती है।
→ समुद्र-तट के पास हवा चलती है।
67. **मोआना** देखकर मन शांत हुआ।
→ समुद्र देखकर मन शांत हुआ।
68. **ताबू** बात मत करो।
→ वर्जित बात मत करो।
69. **माना** से लोग डरते हैं।
→ आध्यात्मिक प्रभाव से लोग डरते हैं।
70. **राटू** का सम्मान होता है।
→ मुखिया का सम्मान होता है।
71. **अदि** सबको बुलाती है।
→ महिला प्रमुख सबको बुलाती है।
72. **तुई** की बात मानी जाती है।
→ मुखिया की बात मानी जाती है।
73. **लाली** बंद हो गया।
→ ढोल बंद हो गया।
74. **मेके** देर तक चला।
→ नृत्य-गीत देर तक चला।

75. **याकू** कड़वा लगता है।
→ कावा कड़वा लगता है।
76. **सेवुसेवु** से दोस्ती बढ़ती है।
→ स्वागत-अनुष्ठान से मित्रता बढ़ती है।
77. **कोरो** शांत है।
→ गाँव शांत है।
78. **वानुआ** की रक्षा ज़रूरी है।
→ भूमि/देश की रक्षा ज़रूरी है।
79. **यासा** का नाम बदल गया।
→ क्षेत्र का नाम बदल गया।
80. **बोगी** हो गई है।
→ रात हो गई है।
81. **सिगा** निकल आया।
→ दिन निकल आया।
82. **लाको** जल्दी।
→ जल्दी जाओ।
83. **टोटोका** घर सबको भाया।
→ सुंदर घर सबको अच्छा लगा।
84. **बाका-बाका** मैदान है।
→ खुला मैदान है।
85. **इका** पक गई।
→ मछली पक गई।
86. **लवो** की तैयारी शुरू हुई।
→ भूमिगत भट्ठी की तैयारी शुरू हुई।
87. **रुरू** तैयार है।
→ सब्जी तैयार है।
88. **दालो** काट रहे हैं।
→ तारो काट रहे हैं।
89. **कोपरा** सूख गया।
→ सूखा नारियल तैयार हो गया।
90. **वेसी** बहुत टिकाऊ है।
→ वेसी लकड़ी बहुत टिकाऊ है।
91. **पांडानुस** से चटाई बनी।
→ पांडानुस से चटाई बनी।

92. **तावा** पर शाम सुहानी है।
→ समुद्र-तट पर शाम सुहानी है।
93. **मोआना** आज शांत है।
→ समुद्र आज शांत है।
94. **काइ** लोग मददगार हैं।
→ स्थानीय लोग मददगार हैं।
95. **काइ**-फीजी संस्कृति अलग है।
→ फीजी की स्थानीय संस्कृति अलग है।
96. **सेवुसेवु** सबको जोड़ता है।
→ स्वागत-अनुष्ठान सबको जोड़ता है।
97. **मेके** में ढोल और नाच है।
→ नृत्य-गीत में ढोल और नाच है।
98. **लाली** की थाप सुनाई दी।
→ ढोल की थाप सुनाई दी।
99. **वानुआ** से पहचान बनती है।
→ भूमि/देश से पहचान बनती है।

जिस प्रकार फीजी हिंदी ने आई तौकेई शब्द ग्रहण किए हैं उसी प्रकार आई तौकेई भाषा ने भी फीजी हिंदी के शब्दों को स्वीकार किया है और उनका बहुत सहज रूप में काईवीती समुदाय द्वारा प्रयोग किया जा रहा है।

आई तौकेई वाक्यों में प्रयुक्त हिंदी शब्दों के कुछ वाक्य भी अर्थसहित पाठकों की सुविधा के लिए दिए जा रहे हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दो अलग भाषा समुदाय जब साथ-साथ रहते हैं। तो भाषा के स्तर पर भी आदान-प्रदान होता है। सूची में दिया गया पहला वाक्य आई तौकेई का है जिसमें हिंदी शब्द मोटे अक्षरों में दिया गया है और नीचे उसका हिंदी अनुवाद दिया गया है जिससे वाक्य का अर्थ समझ में आ जाए।

खान-पान/भोजन

1. Au sa kana **roti**-
→ मैं रोटी खा रहा हूँ।
2. Au sa kana **sabzi**-
→ मैं सब्जी खा रहा हूँ।
3. Au sa kana **dal**-
→ मैं दाल खा रहा हूँ।

4. Au sa kana **chawal**-
→ मैं चावल खा रहा हूँ।
5. Au sa lagai **ghee**-
→ मैं घी डाल रहा हूँ।
6. Au sa kana **halwa**-
→ मैं हलवा खा रहा हूँ।
7. Au sa khol **ladoo**-
→ मैं लड्डू खोल रहा हूँ/खा रहा हूँ।
8. Au sa bana **puri**-
→ मैं पूरी बना रहा हूँ।
9. Au sa bhunj **papad**-
→ मैं पापड़ भून रहा हूँ।
10. Au sa khau **paan**-
→ मैं पान खा रहा हूँ।
11. Au sa lagai **kurta**-
→ मैं कुर्ता पहन रहा हूँ।
12. Au sa lagai **saree**-
→ मैं साड़ी पहन रही हूँ।
13. Au sa lagai **dhoti**-
→ मैं धोती पहन रहा हूँ।
14. Au sa lagai **chudi**-
→ मैंने चूड़ी पहनी।
15. Au sa lagai **kangan**-
→ मैंने कंगन पहना।
16. Au sa lagai **pagdi**-
→ मैंने पगड़ी बांधी।

धार्मिक/त्योहार

17. Au sa garnu **pooja**.
→ मैं पूजा कर रहा हूँ।
18. Au sa jalau **deepak**.
→ मैं दीपक जला रहा हूँ।

19. Au sa gayo **mandir**.
→ मैं मंदिर गया।
20. Au sa dekha **Ganesh murti**.
→ मैंने गणेश की मूर्ति देखी।
21. Au sa pooja **Lakshmi**.
→ मैं लक्ष्मी पूजा कर रहा हूँ।
22. Au sa pooja **Shiv**.
→ मैं शिव पूजा कर रहा हूँ।
23. Au sa lagai **tilak**.
→ मैंने तिलक लगाया।
24. Au sa lagai **sindoor**.
→ मैंने सिंदूर लगाया।
25. Au sa pooja **Ganesh**-
→ मैं गणेश पूजा कर रहा हूँ।
26. Au sa manau **Holi** aru **Diwali**.
→ मैं होली और दीपावली मना रहा हूँ।

पारिवारिक / सामाजिक

27. Au sa dekh **bhai**-
→ मैं भाई को देख रहा हूँ।
28. Au sa dekhi **bahan**.
→ मैं बहन को देख रही हूँ।
29. Au sa gae **mama**.
→ मैं मामा के घर गया।
30. Au sa dekhi **chacha**.
→ मैंने चाचा को देखा।
31. Au sa dekhi **dadi**.
→ मैंने दादी को देखा।
32. Au sa dekhi **baba**-
→ मैंने बाबा को देखा।
33. Au sa dekhi **dadi** aru **baba**-
→ मैंने दादी और बाबा को देखा।

34. Au sa dekhi **beta** aru **betee**-
→ मैंने बेटा और बेटी को देखा।
35. Au sa dekhi **maa** aru **pita**-
→ मैंने माता और पिता को देखा।
36. Au sa bol **dadi**-
→ मैं दादी से बात कर रहा हूँ।
37. Au sa bol **baba**-
→ मैं बाबा से बात कर रहा हूँ।
38. Au sa dekhi **bhai** aru **bahan**-
→ मैंने भाई और बहन को देखा।
दैनिक जीवन / घर / शहर (76.100)
39. Au sa gayo **bazaar**-
→ मैं बाजार गया।
40. Au sa pi **pani**-
→ मैं पानी पी रहा हूँ।
41. Au sa jalau **aag**-
→ मैंने आग जलाई।
42. Au sa dekha **deep**-
→ मैंने दीप देखा।
43. Au sa khau **mitha**-
→ मैं मीठा खा रहा हूँ।
44. Au sa bol **accha**-
→ मैं अच्छा बोल रहा हूँ।
45. Au sa bol **bura**-
→ मैं बुरा बोल रहा हूँ।
46. Au sa dekha **sundar**-
→ मैंने सुंदर देखा।

फीजी-हिंदी के वाक्यों में अत्यंत प्रचलित आई तौकेई प्रयोग देखें-

1. खान-पान और मेहमानवाजी

- "आज याकू पिएगा?" (yaqona)

- "लवो में पकाया है।" (lovo)
- "रुरु बना है, खा लो।" (rourou)
- "दालो बहुत मीठा है।" (dalo/taro)
- "सेवुसेवु करके आए हैं।" (sevusevu)

2. गाँव, जगह और पहचान

- "हमार कोरो उधर है।" (koro)
- "वो काइ-कोरो है।" (kai koro)
- "उस यासा में बहुत लोग हैं।" (yasana)
- "ये वानुआ हमारा है।" (vanua)

3. समुद्र, प्रकृति और दैनिक जीवन

- "वोका से मछली लाए।" (vaka)
- "इका आज ताज़ा है।" (ika)
- "बोगी में मत जाना।" (bogi - jkr)
- "आज सिगा बहुत गरम है।" (siga - fnu)

4. सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ

- "लाली बजेगा आज।" (lali)
- "मेके देखेगा?" (meke)
- "वो राटू का आदमी है।" (ratu)
- "ये काम ताबू है।" (tabu)

5. गुण-वाचक और भाव-सूचक

- "घर टोटोका है।" (totoka - lqanj)
- "आज माना है काम में।" (mana - शक्ति / प्रभाव)
- "जगह बाका-बाका है।" (baka - खुली)

6. क्रिया/संरचना में घुले-मिले प्रयोग

- "लाको, अभी आते हैं।" (lako - जाना)
- "याकू-सेवु करके बात होगा।"
- "लाइन-कोरो में रहता है।"

(ग) फीजी हिंदी में अन्य भाषाओं से आयातित शब्दावली

फीजी हिंदी में अंग्रेजी, आई तौकेई के शब्दों के अतिरिक्त अरबी-फारसी आदि के भी शब्दों का प्रयोग मिलता है। ये सामान्यतः अरबी फारसी की शब्दावली का मूल कारण भारत से गिरमिट काल के समय से ही गए वे मुस्लिम भारतीय हैं जो भारत

में भी अपनी सामान्य बोलचाल में अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग करते हैं पर इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय बात ये है कि भाषिक संरचना की दृष्टि से ये शब्द अब अरबी फारसी के शब्द नहीं रह गए, ये हिंदी की संरचना में ढलकर हिंदी या हिंदुस्तानी भाषा का अंग बन चुके हैं। इन शब्दों की सूची इसलिए यहाँ नहीं दी जा रही है क्योंकि यद्यपि ये मूलतः अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्द हैं पर हिंदी संरचना में ढले गए हिंदी की शब्द संपदा के अंग हैं जिन्हें आज विदेशी शब्द नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए जब कागज का बहुवचन कागजात न होकर कागजों बन जाए, गरीब का तिर्यक रूप गरीबों बन जाए तो वह विदेशी नहीं रह जाता।

जब आयातित शब्दावली का दैनिक जीवन में बोलचाल में सहज प्रयोग होने लगता है तो धीरे-धीरे साहित्यिक रचनाओं में भी उसकी पैठ दिखने लगती है¹³ जबकि दैनंदिन लोकगीतों में तो वह बहुत स्पष्ट और सहजरूप में दिखती है।



संपर्क

विमलेश कांति वर्मा— 73—वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली—110034
मोबाइल—9810441753, ई—मेल: vimleshkanti@gmail.com

“पहाड़ पर चढ़ो तो पहाड़, पहाड़ नहीं रह जाता नदी पार
कर लो तो नदी, नदी नहीं रह जाती लेकिन आदमी को
जितना समझते जाओ उतना वह मुश्किल होता जाता है।”

— विष्णु नागर

13. विमलेश कांति वर्मा, फीजी का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, साहित्य अकादमी, संस्कृति मंत्रालय, रवींद्र भवन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 223 –224

दीवार के पीछे से आधा दिखता आदमी

हेमन्त कुकरेती*

सन् 1960 आधुनिक भारतीय राजनीति और साहित्य में अनेक संभावित परिवर्तनों का सूत्रपात करने वाला प्रारंभिक दौर है। कला-साहित्य-संस्कृति के साथ पारंपरिक जीवन मूल्यों के प्रति अस्वीकार का भाव लिए इस कविता-आंदोलन ने साहित्य के समूचे परिसर को हिला दिया। कविता के आलोचकों ने इसे सुसंगठित काव्य-आंदोलन नहीं माना! उनके अनुसार यह एक असंतोषमूलक काव्य प्रवृत्ति थी। अकविता इस स्थापना का शिकार हो गई। अनगढ़ बोलचाल की शब्दावली में पारंपरिक सौंदर्य को अस्वीकृत करने वाली इस कविता में व्यवस्था, नैतिकता और परंपरा के प्रति विद्रोह मुखर हुआ था। राजनीतिक और व्यक्तिगत धरातलों पर मानवीय अस्तित्व पर मंडराते संकट और कुछ नहीं कर पाने की व्यवस्था से उपजी निरर्थकता को यह कविता शब्दों के अनुभव में ढाल रही थी। जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, गंगाप्रसाद विमल, सौमित्र मोहन, मोना गुलाटी, मणिका मोहिनी इत्यादि साहित्य के प्रांगण में अकविता के दरवाजे से प्रविष्ट हुए तो पहले से कविता लिख रहे कुमार विकल, रघुवीर सहाय, मुक्तिबोध, कुंवर नारायण, राजकमल चौधरी सरीखे कवि भी इस आंदोलन के असर में अकविता की आवाज में अपना स्वर मिलाने लगे। नेहरूवादी राजनीति से मोहभंग की पहली मुखर प्रस्तुति अकविता में देखी जा सकती है। अकविता का सौंदर्य बोध सौमित्र मोहन की कविताओं में समग्रता में व्यक्त हुआ है।

‘चाकू से खेलते हुए’ (1972), ‘लुकमान अली तथा अन्य कविताएँ’ (1978) सौमित्र मोहन के दो ही संग्रह हैं। इसके अलावा जगदीश चतुर्वेदी के संपादन में अकविता के घोषणा पत्र कहे जाने वाले ‘निषेध’ (1972) में उनकी कविताएँ छपीं और उनकी संपूर्ण कविताएँ ‘आधा दिखता वह आदमी’ (2018) में संकलित हो गई हैं। इसके अलावा उन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी से कुछ किताबों के अनुवाद भी किए हैं और ‘अकविता’, ‘कृति परिचय’ अथवा पत्रिकाओं के संपादन से भी वे जुड़े रहे हैं। सौमित्र

* कवि, आलोचक और इतिहासकार। प्रमुख पुस्तकें— ‘गांधी दर्शन आलोचनात्मक अध्ययन’, ‘हिंदी उपन्यास: नया पाठ’ आदि। संप्रति— प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

मोहन ने कविताएँ ज्यादा नहीं लिखीं, फिर भी उनकी कविताओं ने समकालीन हिंदी कविता को गहरे प्रभावित किया है।

हिंदी साहित्य में अकविता आंदोलन ऐसे दौर का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ कविता ने परंपरागत भावुकता, छायावादी कोमलकांत सौंदर्यबोध और प्रगतिवादी प्रत्यक्ष सामाजिकता तीनों से हटकर एक नई काव्यभाषा, नया मुहावरा और संवेदना गढ़ी है। काव्य आंदोलन के रूप में थोड़े समय के लिए ही अस्तित्व में रहने के बावजूद इसकी अनेक काव्य प्रवृत्तियाँ आगामी पाँच दशकों की कविता में गूँजती रही हैं। इस काव्य के मूल में मनुष्य का आंतरिक विखंडन, अस्तित्वगत संकट, शहरी जीवन की घुटन, सत्ता—व्यवस्था का क्रूरतम होते जाना और भाषा के प्रति अविश्वास जैसी प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं। अकविता की समग्र और प्रामाणिक उपस्थिति की दृष्टि से सौमित्र मोहन इस काव्यधारा के महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में सामने आते हैं। उनकी कविता की विषयवस्तु न केवल अकविता के मूल स्वभाव को व्यक्त करती है बल्कि आधुनिक मनुष्य की जटिल मानसिक संरचना को भी उद्घाटित करती है। उनकी कविता में अर्थहीन होते जीवन में अर्थ का संकट, अस्तित्वगत विडंबना, भाषा की असमर्थता और समाज से असंबद्धता जैसी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं।

परंपरागत काव्य—मूल्यों का निषेध, भाषा में शब्द—अर्थ के बीच की दूरी, विखंडित अनुभवों की अभिव्यक्ति तथा मनुष्य के अकेलेपन और निरर्थकता की अनुभूति अकविता में दिखाई देती है। यह आंदोलन पश्चिम के अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद और शुरुआती उत्तरआधुनिक चिंतन से प्रभावित था, इसलिए इसमें सार्थक कथ्य की बजाय अनुभव की असंगति अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। सौमित्र मोहन इस काव्यधारा के ऐसे कवि हैं जिनकी कविता में जीवन की अनकही बेचैनी और विच्छिन्नता प्रमुख विषय बनकर उभरती हैं — *सेटी पिन छाती के बालों में अटका कर/वह अपने बटन खोलने लगता है/वह अपने काजू में गाजरें लगा लेता है/पैरों में खड़ाऊँ महेश योगी या/ऐसे ही किसी ढोंगी का ध्यान करते हुए/वह गांजा पीने लगता है/* लंबी कविता आंदोलन की एक प्रमुख रचना 'लुकमान अली' की इन पंक्तियों में सौमित्र मोहन दिमाग की नसों को तोड़ने वाले सन् 60 के दशक के दम घोंटने वाले माहौल को जीवंत कर देते हैं।

सौमित्र मोहन की 'लुकमान अली', मुक्तिबोध की 'अंधेरे में', धूमिल की 'पटकथा', और राजकमल चौधरी की 'मुक्तिप्रसंग' सरीखी लंबी कविताएँ समकालीन कविता की उपलब्धियाँ हैं। ये कविताएँ अपने महाकाव्यात्मक कैनवास के कारण भी याद रखी जाती हैं। 'लुकमान अली' जो दृश्य रखता है या जिन बिंदुओं के माध्यम से उसका चरित्र उभरता है वह एक बड़ा रूपक रचते हैं— *एक मेज में सुराग करके/वह नीचे*

समुद्र खोज रहा है/उसने अपनी जुराबें हाथ में पहन ली हैं/यह असामान्य हरकतें
अपसामान्य परिस्थितियों की देन हैं— संगीत सभा की समाप्ति के बाद/अवसाद की
नदी को तैरते हुए/वह लक्ष्मण की पेंटिंग के सामने आ खड़ा हुआ था/सफेद दर्द
वाले कुछ साल/जिंदगी का अध्ययन कर/जब चाहे उसे उदास किए दे रहे थे/’
‘हर वह चीज’ शीर्षक कविता की यह पंक्तियाँ एक प्रकार से लुकमान अली का ही
लॉन्ग नाइटिन के दौर में विकास है।

व्यक्ति और समाज और उसका समय तमाम चीजों में सामान्य कुछ भी नहीं रहा
है। सौमित्र मोहन की कविता बार-बार उस तरफ इशारा करती है जहाँ मनुष्य का
संहार किया जा रहा हो। उत्तर आधुनिक समय में अस्मिता का सवाल खड़ा हुआ
लेकिन उनके समय में अस्तित्व को बचाए रखने का संकट बड़ा था —दुनिया की
नासमझी है कि /मैं हूँ/और मेरी नासमझी है कि/ मैं नहीं हूँ/मैं एक नियति भ्रम
हूँ/ और इस होने की स्थिति को /जी रहा हूँ/ बस जी रहा हूँ/³जीवन की
निरर्थकता उसकी दूर की सबसे बड़ी विडंबना है।

सौमित्र मोहन की कविता में अस्तित्व को बचाने का संकट और अस्मिता का
निरर्थक होते जाना बार-बार उभरता है। उनके यहाँ व्यक्ति स्वयं से समाज से यानी
परिवेश से कट गया है—प्रशंसा में लोग नंगे पाँव अमूल्य भेंट देने आते हैं मसलन/गुप्तांगो
के बाल/बच्चों के बिंब और चाय के खाली डिब्बे/वह इन्हें सँभाल कर रखता है और
फिर इन्हें कबाड़ी को बेच/ अफीम बकरी को खिला देता है/⁴ उनके यहाँ जो मनुष्य
है वह अपने भीतर अजनबी की तरह छुपा रहता है। वह अपनी वास्तविक आजादी ढूँढ
रहा है! हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अगले ही दशक में देश पर जबरन आपातकाल
थोप दिया गया था। इसकी सुगबुगाहट सौमित्र मोहन जैसे सतर्क कवियों के यहाँ
बहुत पहले सुनाई देने लगी थी— लुकमान अली के लिए स्वतंत्रता उसके कद से केवल
तीन इंच बड़ी है/वह बनियान की जगह तिरंगा पहनकर/ कलाबाजियाँ खाता है
/वह चाहता है कि पाँचवें आम चुनाव में वह बौनों का प्रतिनिधित्व करे/उन्हें टॉफियाँ
बाँटे/जाति और भाषा की कसमें खिलाएँ/ यहाँ⁵। अजनबीपन और निरर्थकताबोध
स्पष्ट है। कवि यह दिखाता है कि राजनीति ने आधुनिक मनुष्य के अस्तित्व को
उद्देश्यों से काट दिया है और उसे जटिल शून्य में जीने के लिए अकेला छोड़ दिया
है। सौमित्र मोहन अस्तित्ववाद की उस धारणा को कविता में लाते हैं जो कहती है
कि दमनकारी व्यवस्था व्यक्ति के जीवन को एब्सर्ड या असंगत बना देती है। व्यक्ति
एक अमूर्तन का शिकार बनकर रह जाता है।

2. वही, पृ. 97

3. वही, पृ. 106

4. वही, पृ. 16

5. वही, पृ. 29

सौमित्र मोहन की कविता में शहर केवल भौगोलिक स्थान नहीं है। वह एक मानसिक जटिल स्थिति है। शहर व्यक्ति को भीड़ में अकेला बनाने पर उतारू एक घटक है— वह राजकमल चौधरी का दोस्त था/ लेकिन उसे महसूस नहीं करता था/ विसंगति के नाटक में वह/ अकेला था⁶। व्यक्ति के बेचेहरा होने का दर्द व्यापक पैमाने में 70 के दशक में महसूस किया गया। सौमित्र मोहन के यहाँ शहर की यांत्रिकता और अमानवीयता दिखावटी नहीं है।

शहर के नकारात्मक रूप को रखते हुए, भावुक से बचते हुए वह क्रिटिकल रहते हैं— खाली मनी ऑर्डर लेकर अवतार आकाश से उतर रहे हैं/ उन्हें सेवाएँ चाहिए/ सारे देश की/ लोग हैं कि चुपचाप खड़े हैं/ बँडबाजी के इंतजार में/ खिड़कियाँ खोलकर जुलूस में/ शामिल होकर/ एक रेड क्रॉस गाड़ी उठा रही है:/ पत्थर/ फटे हुए झंडे/ छूटी हुई चप्पलें/ और लाशें/ पिछवाड़े पड़ी हैं /मकान के दरवाजों में दीमकें व्यस्त हैं/ देशप्रेम — 1 शीर्षक यह कविता बताती है कि व्यक्ति जुलूस का अनुपयोगी हिस्सा है। उसका इस्तेमाल करके व्यवस्था उसे फेंक देती है लेकिन उसकी नियति है कि वह उससे बाहर जाने का या विद्रोह करने का साहस नहीं जुटा पाता। यही व्यक्ति की अंदरूनी और बाहरी टकराव है। सौमित्र मोहन की कविता में विद्रोह प्रत्यक्ष नहीं बल्कि कई जगह मौन प्रतिरोध के रूप में अधिक प्रभावी तरीके से आया है क्योंकि वे इस यथार्थ से दूर नहीं होते कि सामान्य मनुष्य में क्रांतिकारी ऊर्जा का बखान करना केवल किताबी समझ की उपज है। वह हर धरातल पर व्यवस्था के सामने कमजोर होता है।

सौमित्र मोहन के यहाँ भाषा— शिल्प विषय —वस्तु के दबाव से निर्धारित और नियंत्रित होता है। उनकी कविताओं में जो टूटी हुई भाषिक संरचना है वो कविता में व्यक्त विखंडित जीवन का प्रतीक है। उनके अस्पष्ट बिंब— विधान और दृश्य संयोजन अर्थ की अनिश्चितता को सूचित करते हैं। जहाँ वह भावों की तीव्रता के साथ प्रस्तुति के लिए तत्पर होते हैं, वहाँ शब्दावली में संक्षिप्त कथन आने लगते हैं। उन्होंने भाषा के साथ या शब्दों के साथ खेलने की प्रवृत्ति भी प्रदर्शित की है। उनके यहाँ कुछ भाव ऐसे हैं जैसे कि 'मैं अपने शब्दों से डरता हूँ' तो ऐसे वाक्य भाषा के प्रति असुरक्षा को स्पष्ट करने वाले कथन हैं या 'भीड़ में खड़े होकर अपने होने का प्रमाण' ढूँढने की बात करते हैं तो वह आधुनिक मनुष्य की पहचान के संकट को व्यक्त करने वाली सूचनाएँ हैं। भाषा को खिलंदड़े अंदाज में बरतने के उदाहरण के रूप में एक कविता देखें 'षष्ठीपूर्ति' इसे कवि ने 28 मई, 1968 को दिल्ली में आयोजित देवेंद्र सत्यार्थी की षष्ठीपूर्ति के अवसर पर लिखा था। यह सूचना उन्होंने कविता के शीर्षक के साथ

6. वही, पृ. 13

7. वही, पृ. 28

लिखी है। कविता देखिए—

बासी फल॥ फल में कीड़ा॥ कीड़े में चमक॥ चमक में घोड़ा॥ घोड़े पर सवार॥ सवार पर तोप॥ तोप पर सत्यार्थी॥ सत्यार्थी का झोला॥ झोले में कहानी॥ कहानी में नायक॥ नायक की टांग॥ टांग में जोड़॥ जोड़ में शतरंज॥ शतरंज की चाल॥ चाल में मात॥ मात में गुस्सा॥ गुस्से में खून॥ खून में पहलवान॥ पहलवान की चीख॥ चीख में अंधेरा॥ अंधेरे में गुम॥ बासी फल॥

स्पष्ट है कि यह भाषा प्रणाली अमूर्त और मूर्त के बीच में आवाजाही करती है। यह उसे व्यक्ति की भाषा लगती है जो तनावग्रस्त है, गहरे विषाद में है, अवसाद के कुँ में डूबा हुआ है और कुछ-कुछ फ्रस्ट्रेटेड है। अकविता के दूसरे कवियों की तरह सौमित्र मोहन ने निडर होकर बेहिचक सबकी खबर ली है। उनका कवि सच्चाई को व्यक्त करता है, चाहे वह सामाजिक सच हो या व्यक्तिगत; यथार्थवाद कविता में वे लिखते हैं— मैंने सिर्फ देखा था/एक गंध कई गज के घेरे में बसी हुई है/तौलिया मुचड़ा हुआ है /चादर अपने स्थान से हटकर एक तरफ ज्यादा लटक गई है/शिथिलता हवा को दबोचे है/क्या अभी-अभी कोई कमरे से बाहर गया है?/शायद !/मैंने तो सिर्फ देखा था/° ख्यात प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल ने सौमित्र मोहन की कविता में व्यक्त प्रखर युगबोध पर लिखा था— 'यह वास्तव में युगबोध की आधुनिक साहसिक कविता है। यह विश्वविद्यालय स्वर से अछूती है। यह सड़क के स्वर की, हरेक नगर के ऊबे- डूबे परिवेश की, करोड़ों -करोड़ों साधारण जनों की सही अर्थों में कविता है। तभी तो यह राजनीति को पास नहीं पटकने देती। प्रतिबद्धता इसका स्वभाव नहीं है। नेताओं को यह नियामक नहीं मानती। उन पर चोट करती है। आदमियों को, नकली बने आदमियों को निरावरण करती है।'⁹

अकवितावादी व्यक्ति— राजनीति— सहित भाषा के प्रति भी अविश्वास से भरे हुए हैं या इसका दूसरा पहलू देखें कि उन्हें भाषा की सीमाओं का बोध है इसलिए उनका संदेह इस बात को लेकर भी व्यक्त होता है कि कविता की भाषा अभी ठीक से बनी नहीं है। ऐसा न हो जाए कि उनकी अभिव्यक्ति असफल बनकर रह जाए। इसीलिए उनकी यह सोच कविता को जटिल और कभी-कभी दुरुह बना देती है। पाठक और कविता के बीच दूरी बढ़ जाती है।

अकविता आत्मविमर्श और अंतःसंघर्ष की कविता है। धरातल पर सौमित्र मोहन की कविता भी अत्यंत आत्मकेंद्रित दिखाई देती है। लगता है कवि बाहरी समाज की चुनौतियों की बजाय अपने भीतर के संघर्षों को अधिक महत्त्व देता है। वह अपने भीतर

8. वही, पृ. 206

9. समय-समय पर; परिमल प्रकाशन 1970. पृष्ठ 85

उतरता है लेकिन वहाँ के अंधकार से घिर जाता है। यह अंधकार निजी नहीं है लेकिन उससे सामूहिक संघर्ष करने के बजाय कवि उससे जिरह करता है। कथाकार स्वदेश दीपक ने ठीक ही पहचाना था कि सौमित्र मोहन की कविता अपने आप से लड़ाई है। इन कवियों को खूब लड़ना पड़ा, जैसा कि सौमित्र मोहन ने लिखा— मैं उसी दौर का हिस्सा हूँ जिसने अपने पहले की पीढ़ी को धकेलकर अपनी जगह बनाई थी। 1960 के दशक में हुए लेखन को जोरदार आलोचक नहीं मिले अन्यथा इस पीढ़ी को 'अराजक' कहे जाने की शर्म नहीं उठानी पड़ती।¹⁰ यही लड़ाई आत्मान्वेषण की गहराइयों तक नहीं पहुँची या आलोचक उसे देख नहीं सके, जो भी कारण रहा हो इस कविता के ऊपर दुरुहता, अतिव्यक्तिवादी, सामाजिक सरोकारों से मुक्त, जीवन के सकारात्मक पक्षों का अभाव, संप्रेषण की कमी और यहाँ तक कि स्वयं से भी रचनाकार संवाद नहीं स्थापित कर पाता, ऐसे अनेक आरोप लगे! फिर भी देखें तो कई उपलब्धियाँ इस कविता की रही हैं, विशेषकर सौमित्र मोहन की कविता को ध्यान में रखें तो हम देखते हैं कि आधुनिक संवेदना की जितनी प्रखर अभिव्यक्ति उनके यहाँ हुई है वह विलक्षण है। उन्होंने आधुनिक मनुष्य के मानसिक संकट को गहराई से व्यक्त किया है। ऐसी प्रयोगधर्मी भाषा का आविष्कार उन्होंने किया जो पारंपरिक काव्यभाषा से अलग है। नई है और मनुष्य के भीतर की जटिलताओं को उजागर करने में सक्षम है। खुद सौमित्र मोहन कहते हैं कि मुझे अक्सर अकविता के खाँचे में रख दिया जाता है लेकिन मेरी गति और नियति वही नहीं है। मैंने अपनी कविता को अपने ढंग से बरता है। इसमें अतियथार्थवादी बिंबों, फैंटेसी और इरॉटिक फैंटेसी का भरपूर प्रयोग हुआ है। अपनी दुनिया को समझने का यह मेरा तरीका है। जो बाहर है वही भीतर है। मेरे लिए यथार्थ के दो अलग-अलग स्तर पर नहीं हैं।¹¹

सौमित्र मोहन की कविता में जो सबसे परेशानी में डालने वाला पेंच है वह यह कि वह समय और स्मृति का विखंडन करते हैं यानी उनकी कविता में समय एक रैखिक नहीं है बल्कि टूटे हुए अनुभव के रूप में उपस्थित होता है। उनके पैटर्न में कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए— *मेरे पहले आने के वह आएगा/सूखी घास पर रेंगते कीड़े का कोई अर्थ नहीं है/वह गीली भी हो सकती थी /या नहीं हो सकती थी*।¹² यह कविता शब्दों के धरातल पर बड़ी धोखादेह है। सब कुछ कहने के बाद भी कुछ भी ठीक से नहीं कह पाता; यह बेचैनी उनके यहाँ बराबर बनी रहती है। जीवन तेजी से छूटता जाता है। वह जिए हुए अतीत का हिस्सा नहीं बन रहा, बस व्यतीत हो रहा है! निरर्थक बीतते जाने का दर्द उनके यहाँ गहरे अवसाद में व्यक्त होता है।¹³ इत्यादि

10. निषेध, पृष्ठ 97

11. वही, पृ. 43

12. वही, पृ. 97

13. वही, पृ. 86

अनुभवों की एक छोटी कविता में वह कहते हैं—मैं जब एक दुस्वप्न से मुक्त हुआ तो/मैंने देखा कि बारिश शुरू हो चुकी है और/ वातावरण/मुझ पर हावी हो गया है/सड़े हुए पत्तों पर से मैं दौड़ रहा था/ और आकाश में पीछे छूटा पक्षी तेजी से उड़ता जा रहा था/¹³ अकविता मोहभंग या डीपइल्यूजनमेंट से उपजी थी। उसके मूल में यातना बोध, अस्वीकृति, विरोध, विद्रोह इत्यादि सक्रिय थे। यही कारण है कि ये तमाम कवि अपने विद्रोह को व्यक्त करने के लिए कई बार यौनविकृतियों से पीड़ित या लक्ष्यहीन विद्रोही या सुविधा और सुरक्षा देखकर विद्रोह करने वाले दिखाई देते हैं। सौमित्र मोहन भी बार-बार घर की तलाश करते हैं। संबंधों को ढूँढते हैं— अपने बयालीसवें जन्मदिन पर मैं अकेला हो गया था/और कोई भी संधि रेखा न लांघ सका/मैं कांच की तरह प्रतिबिंब बनाता रहा/मैंने तब जाना कि दो अकेलों से गणित का प्रश्न/हल नहीं होता—नैतिक संहिता का पुल मजबूत होता है/¹⁴ यह तलाश लगातार जारी रही। बहुत बाद में लिखी उनकी 'मेरा घर' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए— मेरा घर निबंध पर ब्लड रख मैं अभी बाहर गया हूँ/ बिना उठका दरवाजा बिना उठका ही है /न उसका रंग उड़ा है न वह पुराना हुआ है /न गणेश की खुदी तस्वीर खंडित हुई है/ एक दरवाजा है/ एक निबंध है/है।¹⁵

अकविता के तमाम कवि ठिकाने की ढूँढ में भटकते रहे हैं। दिलचस्प चीज यह है कि घर की ढूँढ पिछली सदी के अंतिम दो दशकों में हिंदी कविता में फिर से शुरू हुई और आज भी जारी है। इसी प्रसंग में फिर से लुकमान अली पर लौटते हैं। उसकी सारी लड़ाई इसी ढूँढ के आसपास घूमती है। ख्यात प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल ने लुकमान अली के संदर्भ में कहा था कि फंतासी की यह कविता हिंदी की पहली बेजोड़ दुःस्वप्न की सार्थक कविता है। असल में यह फैंटेसी या अतियथार्थ से आगे की कविता है। अकविता आंदोलन के कवियों में सबसे अधिक लंबा रचनाकाल सौमित्र मोहन का रहा। विष्णु खरे ने कुछ समय पहले ही लिखा था कि सौमित्र मोहन की कविता को पढ़ना, बर्दाश्त करना, समझ पाना आदि आज साठ वर्षों बाद भी आसान नहीं है। वे जीवनभर भटकने वाले कवि हैं।

घृणा, विश्वास और हिंसा से आक्रांत अकविता में स्त्री-पुरुष प्रेम के प्रसंग या काव्य-संदर्भ विरल हैं। सौमित्र मोहन को विष्णु खरे ने एलेन गिन्सवर्ग के पाए का कवि घोषित किया है। इन दोनों कवियों के यहाँ प्रेम को रेखांकित करते हुए कुछ दिलचस्प निष्पत्तियाँ निकलती हैं। दोनों प्रेम को सामाजिकता, नैतिकता और दाम्पत्य की रूढ़ अवधारणाओं से मुक्त करके देखते हैं— 'बरसात में नायिकाएँ बदल जाती

14. अकेलापन वही, पृष्ठ 45

15. वही, पृ. 13

16. वही, पृ. 46

हैं/ एक पारंपरिक सौंदर्यबोध/ चीजों को सच में/ बदलता जा रहा है¹⁶/ 'मौसम' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में सौमित्र मोहन प्रेम को लगभग अप्रेम की तरह प्रस्तुत कर रहे हैं।

एलेन गिन्सवर्ग के यहाँ प्रेम देह, विद्रोह, अकेलेपन और आत्मस्वीकृति का माध्यम बनता है। उनके यहाँ प्रेम कई बार आधुनिक सभ्यता के विरुद्ध मानवीय प्रतिरोध की तरह उभरता है। सौमित्र मोहन के यहाँ स्त्री-पुरुष संबंधों में असुरक्षा, टूटन, ऊब और अस्तित्वगत रिक्तता दिखाई देती है— निश्चय ही वह प्यार नहीं था/ हम अपने-अपने भीतर थे/ और एक— दूसरे को जान चुके थे/ तब हमारे पास न शब्द थे/ न अनुभव/ और न ही कोई आश्वासन/ हम अपने वर्तमान से थोड़ी देर के लिए छिटक भर गए थे¹⁷/ सौमित्र मोहन प्रेम को आदर्श या पवित्र भावना नहीं बल्कि मनुष्य की जटिल मानसिक अवस्था के रूप में चित्रित करते हैं।

दोनों कवियों की भाषा इन संदर्भों में प्रत्यक्ष, अनौपचारिक और आत्मस्वीकारात्मक है। सौमित्र मोहन की कविताओं में प्रेम के साथ अकेलापन, शारीरिकता और मानसिक तनाव जुड़ा रहता है, हालाँकि कुछ भिन्न आस्वाद के प्रसंग भी हैं— मैंने तुम्हें होठों पर चूमा/ तुमने घाटी पर फैली धूप को/ आधा ढक लिया/ पहला प्यार शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में प्रेम लगभग अपने पारंपरिक रूप में है। इन दोनों कवियों ने स्त्री-पुरुष प्रेम को आधुनिक मनुष्य के संकट और संवेदना से जोड़कर प्रस्तुत किया है।

सौमित्र मोहन अकविता आंदोलन से जुड़े उन कवियों में हैं जिनकी रचनाओं में अस्वीकार, विडंबना और आधुनिक जीवन की बेचैनी तीखे रूप में सामने आती है। उनकी कविताएँ पारंपरिक काव्य सौंदर्य से हटकर एक खुरदरी, असहज और विचारेत्तेजक भाषा गढ़ती है। उनके यहाँ विडंबना और आत्मविसंगति का गहरा बोध है। सौमित्र मोहन की कविताओं में व्यक्ति अपने ही अस्तित्व से असहज दिखाई देता है। उसका चरित्र अंतर्विरोधग्रस्त है। वह जिद्दी और आत्मविश्वासी तथा परास्त और हताश भी है। वह आत्मसंशयग्रस्त है। हर चीज से उसका भरोसा उठ गया है। वह अपने ही घर में अनजान और अजनबी बन गया है! यह आधुनिक मनुष्य की पहचान का संकट दर्शाने वाली दुर्घटना है। इसलिए अकविता में वाचक या केंद्रीय चरित्र टूटा हुआ अस्थिर व्यक्ति है। वह सवालों से भरा हुआ है। उसके माध्यम से सौमित्र मोहन आत्मस्वीकार की बजाय आत्मसंदेह की स्थिति रचते हैं। यह प्रवृत्ति उस काव्यधारा से जुड़ती है जहाँ कविता किसी समाधान की तलाश नहीं करती बल्कि अस्तित्व की उलझन को व्यक्त करती है।

17. वही, पृ. 41

सौमित्र मोहन की काव्य भाषा में शब्द सरल और अर्थ गहरा तथा बेचैन करने वाला है। भाषा के अनगढ़ और प्रतिरोधी स्वर के कारण सजावट से मुक्त शब्दावली में पाठक को बार—बार झटका लगता है। बोलचाल असामान्य वाक्यविन्यास और टूटे हुए बिंदुओं के कारण उनके यहाँ भाषा विद्रोह का औजार बन जाती है। कविता सुंदर होने की बजाय सच बोलने की कोशिश करती है, चाहे वह सुविधाजनक ही क्यों न हो।

शहरी जीवन के अलगाव के अनेक रूपक सौमित्र मोहन ने रचे हैं। उनकी कविताओं में शहर भीड़ से त्रस्त लोगों की पनाहगाह है। व्यक्ति रिश्तों और सामाजिक संरचना से कटा हुआ है। आधुनिक जीवन की अलगावग्रस्तता को दिखाने वाला यह अकविता का केंद्रीय भाव है। यहाँ शहर केवल भौतिक जगह नहीं बल्कि मानसिक स्थिति बन जाता है। व्यक्ति जड़ हो रहा है और निर्जीव वस्तुएँ हलचल से भरी हैं लेकिन सब कवि से दूरी बना रहे हैं। इससे कई डरावने संकेत मिलते हैं। अलगाव इतना गहरा है कि संसार भी पराया लग रहा है। भीड़ से घिरा व्यक्ति भीतर से नितांत अकेला है। कथित सामाजिकता का ढोंग, बनावटी या नकलीपन का निषेध करने वाली यह कविता कवि की या रचनाकार की सुविधाजनक सामाजिक छवि का भंजन भी करती है।

अकविता में परंपरा और नैतिकता का अस्वीकार बार—बार मिलता है। सौमित्र मोहन की कविताएँ स्थापित मूल्यों और नैतिकताओं पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। वे किसी आदर्श की स्थापना नहीं करती बल्कि उसकी असफलता को उजागर करती हैं। यह अकविता की मूल प्रवृत्ति है—निर्माण से पहले विघटन को अंजाम देना! कवि पहले पुराने ढाँचे को तोड़ता है फिर पाठक को अस्थिर स्थिति में छोड़ देता है। जटिल स्थितियों को व्यक्त करने में विचित्र तथा विलक्षण बिंब और प्रतीकों की योजना कारगर सिद्ध होती है। सौमित्र मोहन के बिंब अक्सर असामान्य और असंगत लगते हैं।

अकविता के दूसरे कवियों की तरह सौमित्र मोहन की कविता भी निष्कर्षहीन है। वह कोई समाधान नहीं देते तथा किसी आशावादी निष्कर्ष तक पहुँचने से बचते हैं। पाठक को एक अधूरी अस्थिर स्थिति में छोड़ देना ही कवि का उद्देश्य है; यह प्रभाव अस्तित्ववादी दर्शन का असर है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि सौमित्र मोहन अपनी कविताओं के जरिये व्यक्ति के आंतरिक विखंडन को सामने लाते हैं। अटपटे दृश्यों, बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से असहजता रचते हैं। उनकी समूची भाषाप्रणाली में इसे देखा जा सकता है। पाठक को आशा या दिलासा देने की जगह उसे सोचने के लिए मजबूर करते हैं। इसलिए वह पारंपरिक सौंदर्यबोध को तोड़ते हैं और एक अजीब सी असहजता पैदा करते हैं। यह

असहजता ही कविता का उद्देश्य है। यानी पाठक को झकझोरना, उसे आरामदायक अर्थ से बाहर निकालना! सौमित्र मोहन की कविताएँ यह सिद्ध करती हैं कि अकविता, कविता के विरुद्ध कविता नहीं है। यह आधुनिक मनुष्य के टूटे हुए अनुभव की अभिव्यक्ति देने वाली ऐसी रचना-शृंखला है जो सौंदर्य के स्थान पर सत्य को प्राथमिकता देती है और पाठक को किसी निष्कर्ष तक नहीं, बल्कि प्रश्नों की स्थिति तक ले जाती है।



संपर्क

हेमन्त कुक्रेती— प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्यामलाल कॉलेज, ग्रांड ट्रंक रोड, द्वारकापुरी, शाहदरा, नई दिल्ली—110032, मोबाइल— 9818540187
ई-मेल: hemantkukreti65@gmail.com

नदी तुम हो!

अनादि आर्द्र मंत्राक्षरों को प्रणव यामों में रटने वाली।

चराचर प्राण-धमनियों में चलन संगीतधारा बरसाने वाली

युगा-युगों से प्रणय नागों को

सिरा धारिणी स्नेह प्रवाहिनी नदी तुम हो।

— पी. के. गोपी

(अनुवाद— ए. अच्युतन)

अवधी का वैभव और 'पद्मावत'

शारदा द्विवेदी *

हिंदी साहित्य के स्वर्ण काल को स्वर्णिम शिखर तक ले जाने में अवधी भाषा का विशेष योगदान है। अवधी भाषा की व्यंजना शक्ति सर्वोत्तम है। हिंदी के सूफी कवि अवध क्षेत्र के ही थे। मुल्ला दाऊद से पूर्व 'प्राकृत पैंगलम' के अनेक छंदों की भाषा अवधी कहीं-कहीं व्यवस्थित रूप में दिखलाई पड़ती है। राहुल जी ने 'पउम चरिज' की भाषा में कुंजी के शब्दों को अवधी कहा है। संभवतः अवध – क्षेत्र व्यापारिक या सैनिक दृष्टि से 14वीं और 15वीं सदी में महत्वपूर्ण रहा हो। धार्मिक दृष्टि से राम की जन्मभूमि अयोध्या के कारण तो वह क्षेत्र महत्वपूर्ण था ही।¹ हिंदी साहित्य की प्रेमाख्यान परंपरा के सबसे मेधावी कवि मलिक मोहम्मद जायसी और उनका कालजयी ग्रंथ 'पद्मावत' अवधी भाषा का कीर्ति स्तंभ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'जायसी-ग्रंथावली' की भूमिका में लिखते हैं, 'पद्मावत हिंदी के सर्वोत्तम प्रबंध काव्यों में है। ठेठ अवधी भाषा के माधुर्य और भावों की गंभीरता की दृष्टि से यह काव्य निराला है।'² जायसी को हिंदी साहित्य में अमर बनाने के लिए एकमात्र 'पद्मावत' ही पर्याप्त है। लोकजीवन का जैसा सामाजिक वर्णन पद्मावत में हम देखते हैं वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है 'पद्मावत', जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोक पक्ष में, क्या अध्यात्म पक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है। पद्मावत में प्रेम गाथा की परंपरा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त होती है।³

जायसी के 'पद्मावत' में भाषा और भाव का द्वित्व समाप्त हो जाता है। अवधी भाषा की संपूर्ण तेजस्विता 'पद्मावत' के रूप में साकार हो उठती है। हिंदी भाषा के प्रबंध काव्य में जायसी कृत 'पद्मावत' शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से अनूठा काव्य है। अवधी भाषा का जैसा ठेठ रूप और मर्मस्पर्शी माधुर्य यहाँ मिलता है वैसा अन्यत्र

* सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, रानी भाग्यवती देवी महिला महाविद्यालय, बिजनौर, उत्तरप्रदेश।

1. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास— विश्वनाथ त्रिपाठी, ओरिएंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड 2010, पेज संख्या— 18
2. जायसी ग्रंथावली— संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1925, भूमिका से—
3. हिंदी साहित्य का इतिहास— आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ संख्या— 59

दुर्लभ है। इस कृति में श्रेष्ठतम प्रबंध काव्य के अनेक गुण एकत्र हैं। मार्मिक स्थलों की बहुलता, उदात्त ऐतिहासिक कथावस्तु, भाषा की विलक्षण शक्ति, जीवन के गंभीर सर्वांगीण अनुभव, सशक्त दार्शनिक चिंतन— ये इसकी अनेक विशेषताएँ हैं। 'पद्मावत' हिंदी साहित्य का जगमगाता हुआ हीरा है। इसके बहुविध पटल और घाटों पर ज्यों-ज्यों साहित्य मनीषियों की ध्यान रश्मियाँ केंद्रित होंगी, त्यों-त्यों इस लक्षण संपन्न काव्य रत्न का स्वरूप और भी उज्ज्वल दिखाई देगा। अवधी भाषा के उत्तम काव्य में मानव जीवन के चिरंतन सत्य प्रेम तत्त्व की उत्कृष्ट कल्पना है। 'पद्मावत' की प्रेमात्मक निर्मल ज्योति कितनी भास्वर है, उसमें कितना आकर्षण है, इसे शब्दों में प्रकट करना कठिन है।⁴ जायसी को हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित करने में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जायसी और कबीर का तुलनात्मक विवेचन करते हुए जायसी के सुप्रसिद्ध आलोचक विजयदेवनारायण साही अपनी पुस्तक 'जायसी' में लिखते हैं— जायसी हिंदी के अति महत्त्वपूर्ण कवि हैं। एक अर्थ में जायसी हिंदी के पहले विधिवत कवि हैं। मैं यह नहीं कहता कि कबीरदास ने कविता के द्वारा एक अत्यंत कठिन समय में अभिव्यक्ति की समर्थ और शक्तिशाली राह नहीं बनाई। कबीरदास के पथ-प्रदर्शन और क्षमता के बिना शायद जायसी के लिए पद्मावत को लिख पाना भी संभव न होता। परंतु कबीर अपनी प्रतिभा के सहारे भाषा को ठेल-ठेलकर आगे बढ़ाते हैं। उनकी कविता में इस प्रयास के चिह्न बराबर दिखते हैं। लेकिन जायसी में पहली बार हिंदी भाषा सहज काव्य प्रवाह में बहने लगती है। हिंदी का अवधी रूप जिसे जायसी ने अपने काव्य माध्यम के लिए चुना, समूचा का समूचा काव्यमय हो जाता है। कवि का प्रयास कहीं दिखता नहीं। लगता है कि समूची अवधी भाषा कविता ही है जो जायसी की कलम से अपना स्वरूप ग्रहण करती चलती है। जब भाषा में इस तरह की अपनी स्वतः स्फूर्त गति दिखे तो हम बेखटके समझ सकते हैं कि हम एक बड़े कवि के सामने उपस्थित हैं।⁵ जायसी को अक्सर सूफी संत कहकर उनको धार्मिकता का जामा पहनाया जाता है। साही जी इसका प्रतिकार करते हुए लिखते हैं— जायसी मूलतः कवि हैं, इसको रेखांकित करना अति आवश्यक है। इसलिए भी कि जायसी और 'पद्मावत' की चर्चा में यह तथ्य अक्सर ओझल या गौण कर दिया जाता है। पद्मावत के आरंभ में अपने समसामयिक बादशाह शेरशाह की स्तुति करने के बाद जायसी कहते हैं —

दीन्ह असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज।
पातसाहि तुम जग के, जग तुम्हारा मुहताज॥

-
4. पद्मावत — संपादक वासुदेव शरण अग्रवाल, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी, संस्करण— संवत् 2018 भूमिका से—
5. जायसी — विजय देवनारायण साही, हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, संस्करण — 1993, पृष्ठ संख्या— 1.

स्तवन और आशीर्वाद, आत्मभिमान और मिठास की यह मिली- जुली मुद्रा कवि की ही है, संत या सूफी फकीर की नहीं।⁶ जायसी में आत्म सजगता की पड़ताल करते हुए साही जी लिखते हैं— “जायसी केवल कवि नहीं हैं, वे आत्म- सजग कवि हैं अपने कवि होने का, गुणी होने का, उन्हें पूरा भरोसा, बल्कि गर्व है। अपने कवि और गुणी होने का जिक्र ‘पद्मावत’ में जायसी ने आरंभ, मध्य और अंत में बार-बार प्रत्यक्षतः या परोक्षतः किया है। इनमें से एक को छोड़कर सभी उक्तियाँ कविजनोचित गर्वोक्तियाँ हैं —

1. मुहम्मद कवि जो प्रेम का ना तन रक्त ना माँसु।

जेइ मुख देखा तेई हंसा सुना तो आए आँसु॥

2. आदि अंत जस कथा अहै।

लिखि भाषा चौपाई कहै॥

कवि बिआस रस कंवाला पूरी।

दूरिहि निअर निअर भा दूरी॥

निअरहि दूरि फूल संग कांटा

दूरि जो निअरे जस गुर चांटा॥

इन उदाहरणों में गर्वोक्तियाँ प्रत्यक्ष होती हैं। परंतु जायसी के कहने की शैली में एक मिठास है। यह मिठास जायसी का सामान्य गुण है। यहाँ भी है। इन उक्तियों में अकड़ नहीं है। ऐसा लगता है कि अधिकारी और योग्य व्यक्ति केवल अपनी विशिष्टता का तटस्थ उल्लेख कर रहा है। ये पंक्तियाँ जायसी ने अपनी पहचान स्पष्ट करने के लिए लिखी हैं। इनमें आत्मविश्वास है। घमंड नहीं।⁷ जायसी अवध और अवधी की माटी में रचे बसे रचनाकार हैं। उनकी चौपाइयाँ सामान्य जनमानस को अपनी बोली भाखा में मिठास बिखेरती हैं। “पद्मावत काव्य का अनुशीलन करते हुए जिस बात की गहरी छाप मन पर पड़ती है वह यह है कि इसके कवि ने भारत- भूमि की मिट्टी के साथ अपने को कितना मिला दिया था। जायसी सच्चे पृथ्वी पुत्र थे। वे भारतीय जनमानस के कितने सन्निकट थे इसकी पूरी कल्पना करना कठिन है। गाँव में रहने वाली जनता का जो मानसिक धरातल है, उसके ज्ञान की जो उपकरण सामग्री है उसके परिचय का जो क्षितिज है, उसी सीमा के भीतर हर्षित स्वर से कवि ने अपने गान का स्वर ऊँचा किया है। जनता की उक्तियाँ, भावनाएँ और मान्यताएँ मानो स्वयं छंद में बंधकर उनके काव्य में गुंथ गई हैं। तुलसी का ‘रामचरितमानस’ उस समय अस्तित्व में नहीं आया था किंतु रामकथा अवध के ग्रामों में लोगों की जिह्वा पर थी। जायसी ने जनता के स्तर से ही राम कथा का संग्रह करके लगभग सौ बार ‘पद्मावत’ में उसका उल्लेख किया है। इनके मिलाने से एक छोटी जायसी रामायण

6. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या 3-4.

7. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या 31-32

ही बन जाती। राघव जो सीता संग लाई। हरी कवन सिधि पाई।। तहूँ एक बाउर मैं भेंटा। जैस राम दशरथ कर बेटा।। ओहु मेहरी कर परा बिछोवा। एहि समुद मह फिरि फिरि रोवा।। इस प्रकार की उक्तियाँ जैसे जनता की बोलचाल से उठकर कवि की जिह्वा पर आ बैठी हैं।⁸ जायसी की कवित्व शक्ति और भाषा सामर्थ्य अद्भुत है। उन्होंने शब्दों का अत्यंत मितव्ययी प्रयोग किया है। उनके शब्द नाप-तोलकर रखे गए हैं, भरने के लिए कहीं कुछ कह डालने की प्रवृत्ति का इस काव्य में नितांत अभाव है। कवि की शैली अल्पाक्षर विशिष्ट है। जहाँ चार शब्द कहने की संभावना हो वहाँ एक ही शब्द से वह अपना काम चलाना चाहता है। अपने समय के लोकजीवन, साहित्य और संस्कृति के उदार अंतराल में भरे हुए शब्दों तक कवि की अव्याहत गति थी। समकालीन संस्कृति के नाम और रूपों का उसे सूक्ष्मतरंग परिचय था, श्रेष्ठ प्रबंध काव्य के शब्द विधान उसे हस्तामलक थे, अलंकार और काव्य गुणों पर उसका असामान्य अधिकार था एवं छंद की लय और स्वर में उसकी पूर्ण निष्ठा थी।⁹

जायसी की काव्यभाषा पर जहाँ उनकी क्षेत्रीयता का प्रभाव पड़ा वहीं जायसी की गुरु परंपरा की भाषिक नीति का भी विशेष प्रभाव है। इन धर्म गुरुओं की बड़ी शक्ति इनकी भाषा संबंधी नीति थी। अवधी भाषा को उन्होंने खुलकर अपनाया। उसे उन्होंने 'हिंदुई' कहा है। वही इनके और जनता के बीच का माध्यम बनी। गाँवों में रहने वाले करोड़ों हिंदू-मुसलमानों के लिए वही सुलभ साधन थी, जिसके द्वारा उनकी अक्षर से भेंट हो सकती थी।¹⁰ जायसी और उनके पूर्ववर्ती मुस्लिम कवियों ने हिंदी प्रेमख्यान परंपरा में भारतीय साधना पद्धतियों का भी समन्वय किया। जायसी से पहले ही सूफियों ने अपनी प्रेम साधना के अंतर्गत भारतीय परिभाषाओं को अपना लिया था। सहजयानी सिद्ध, तांत्रिक, नाथ योगी, निर्गुण संत इनकी परिभाषाएँ एक प्रकार से भारतीय धार्मिक संस्कृति का सार्वजनिक अंग बन गई थीं। सूफी संतों ने भी सहर्ष उन परिभाषाओं का स्वागत किया। जायसी ने तो नाथ योगियों की कुंडलिनी साधना की परंपरा को जी खोलकर अपनाया है और रत्नसेन की प्रेम साधना में आवश्यक सीढ़ी के रूप में उसका उल्लेख किया है।¹¹ जायसी 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की कथा के माध्यम से तत्कालीन हिंदू मुस्लिम संघर्ष जो कि जर, जोरू और जमीन के लिए था उसको भी हमारे सम्मुख लाते हैं। जायसी ने 'पद्मावत' में इतिहास का नाममात्र सहारा लेकर अपनी कल्पना से मध्ययुगीन परिस्थितियों व वर्ग-संघर्षों को कथावृत्त में वर्णित किया है। जायसी ने इतिहास से रत्नसिंह का नाम ले लिया और शेष सारी बातें उन्होंने अपनी कल्पना से जोड़ीं। इतिहास ने काव्य कृतियों को

8. पद्मावत – संपादक वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ संख्या- 14 – 15

9. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या- 16

10. उपरोक्त, प्रश्न संख्या – 54

11. उपरोक्त, पेज संख्या – 58

इतनी बार जन्म दिया है कि यह मानने में विद्वानों को हिचक होती है कि सचमुच एक काव्य कृति ऐसी है जिसने अक्षरशः इतिहास को जन्म दिया। लेकिन संसार के साहित्य में कम ही सही ऐसी साहित्यिक कृतियाँ अवश्य हुई हैं जिन्होंने इस प्रकार इतिहास का विशेषतः जातीय इतिहास का निर्माण किया। 'पद्मावत' की यह क्षमता और उसका यह विशिष्ट प्रभाव पद्मावत के संपूर्ण अर्थ पुंज का महत्वपूर्ण अंश है।¹²— पद्मावत में जायसी ने मध्ययुगीन बर्बरता, आक्रांताओं और विजेताओं की लोलुपता, स्त्रियों की दुर्दशा को अपनी कथात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। "पद्मावत के ऐतिहासिक वृत्त का स्रोत वस्तुतः जायसी के चारों ओर बिखरे हुए संघर्षों और युद्धों में है। दिल्ली के बादशाहों द्वारा छोटे राजाओं की पत्नियों, बेटियों या बहनों को अपने हरम के लिए माँगना या छीन लेना मध्ययुग में एक आम बात थी। इसी प्रकार जौहर और सतीदाह की भी कई घटनाएँ मिलती हैं। युद्ध के समय व्यक्तिगत शौर्य की गाथाएँ भी प्रचुर हैं और इसी के साथ छल, छद्म, सत और साकी भी उस काल की राजनीति और युद्धनीति की सामान्य परिस्थितियाँ थीं और सबसे बढ़कर सुलतानों और शहंशाहों की साम्राज्य विस्तार की नीति को इस्लाम बनाम कुफ्र की नारेबाजी से जोड़ना भी बादशाहों, मुल्लाओं, सूफियों, राजाओं और पंडितों के लिए स्वार्थ और परमार्थ दोनों को सिद्ध करने का आसान तरीका था। जायसी अपने समाज और उसमें प्रचलित सत्ता संघर्ष को देख रहे थे। उनकी विशेषता यह थी कि उन्होंने इस समूचे परिदृश्य को नई पूर्वाग्रहहीन आँखों से देखा और उन्होंने उसे विराट ट्रेजेडी और साथ ही साथ इस सारे अभिमान की व्यर्थता को देखा जो उनके समाज को मथ रही थी। अंत में अलाउद्दीन के बारे में जायसी का कथन है— छार उठाय लीन्ही एक मूठी। दीन्ह उड़ाय पिरिथमी झूठी।। 'पद्मावत' की कथा केवल अलाउद्दीन, रत्नसेन, पद्मिनी की व्यक्तिगत ट्रेजेडी नहीं है— जिन शर्तों पर जायसी का समाज उलट-पुलट रहा है, उनके चलते समूची पृथ्वी के झूठी पड़ जाने की ट्रेजेडी है।"¹³

जायसी अपने युग की परिस्थितियों से मुँह नहीं मोड़ते। वे आध्यात्मिकता के आवरण में वास्तविकता को नहीं छिपाते। साही उन्हें मध्यकालीन भक्त कवियों में अपने समय से सर्वाधिक मुठभेड़ करने वाला कवि कहते हैं। जायसी अध्यात्मवादियों के बीच भौतिकवादी हैं और भौतिकवादियों के बीच अध्यात्मवादी। निश्चय ही यह एक जोखिम भरी दृष्टि है लेकिन जायसी इस जोखिम को उठाने को तैयार है, क्योंकि वह कवि हैं दार्शनिक नहीं। युग के साक्षात्कार की चुनौती, जिसे जायसी ने स्वीकार किया था, की ओर से इन महान कवियों ने मुँह फेर लिया। इसके सामाजिक और सांस्कृतिक कारण थे। आगे चलकर 18वीं-19वीं शताब्दी के रीति कवियों ने तो इसी आंतरिक आलोक को लौकिक बनाने में पूरी क्षमता लगा दी, लेकिन द्वापर की चहारदीवारी से

12. जायसी, विजयदेवनारायण साही, पृष्ठ संख्या— 86—87.

13. उपरोक्त, पेज संख्या— 87—88

नहीं लांघी। वास्तविकता यह है कि आलोक और लोक, सिंहलद्वीप और इतिहास का जो संधिस्थल जायसी ने देखा वह फिर किसी कवि ने हिंदी में नहीं देखा। इसलिए जायसी अपने द्रैजिक विजन अथवा विशाल दृष्टि में अकेले हैं। उनका ना कोई पूर्ववर्ती है ना परवर्ती है।¹⁴ जायसी 'पद्मावत' में नागमती वियोग वर्णन के माध्यम से तत्कालीन युग की स्त्रियों की व्यथा-कथा, उनके वैवाहिक जीवन की विडम्बनात्मक त्रासदी को, उनकी अधिकार हीनता को, उनकी गौरवहीनता को, उनकी आत्म पीड़ा को अपनी वाणी देते हैं। वह उनके रुदन को स्वर देते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, नागमती का विरह-वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवनों के पेड़ों के नीचे रात भर रोती फिरती है। इस दशा में पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव जो कुछ सामने आता है उसे वह अपना दुखड़ा सुनाती है। नागमती उपवनों में रोती फिरती है। उसके विलाप से घोंसलों में बैठे पक्षियों की नींद हराम हो गई है।¹⁵ निःसंदेह अपने समय को वाणी देने वाले, अपने समय से मुठभेड़ करने वाले जायसी अपने समय के सर्वाधिक आधुनिक कवि हैं।



संपर्क

शारदा द्विवेदी— सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, रानी भाग्यवती देवी महिला महाविद्यालय बिजनौर, उत्तर प्रदेश-246701, मो.-6387045826,

ई-मेल: shardadw01@gmail.com

“आदमी को पूरी निर्ममता से अपने अतीत में किए कार्यों की चीर-फाड़ करनी चाहिए ताकि वह इतना साहस जुटा सके कि हर दिन थोड़ा-सा जी सके।”

— निर्मल वर्मा

14. उपरोक्त, पेज संख्या 91- 92.

15. जायसी ग्रंथावली, संपादक— आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पेज संख्या – 53- 54.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भाषा

प्रत्यूष दुबे*

अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारत की शिक्षा व्यवस्था गुरुकुल पद्धति पर आधारित थी, जहाँ ज्ञान—विज्ञान, धर्म, दर्शन, भाषा, आयुर्वेद, यूनानी, वैद्यक, हकीमी आदि की शिक्षा दी जाती थी। यही शिक्षा व्यवस्था भारत की सांस्कृतिक एकता और समृद्धि की रीढ़ थी, जिसे तोड़े बिना अंग्रेज इस देश पर ठीक से शासन नहीं कर सकते थे। भारत आगमन के पश्चात् अंग्रेजों ने मद्रास प्रेसिडेंसी (वर्तमान तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, कर्नाटक, उड़ीसा के कुछ हिस्से) में भारत की शिक्षा व्यवस्था की तत्कालीन स्थिति को जानने—समझने के लिए एक सर्वेक्षण कराया किंतु उसकी रिपोर्ट उन्होंने कभी प्रकाशित नहीं की। सुप्रसिद्ध गाँधीवादी विचारक धर्मपाल ने देश की आजादी के पश्चात् अपनी इंग्लैंड यात्रा में वहाँ के अभिलेखागार में रखी इस रिपोर्ट को प्राप्त कर इसे प्रकाश में लाने का कार्य किया और इस रिपोर्ट के आधार पर 'अंग्रेजों से पहले का भारत' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें वह लिखते हैं— अंग्रेजों ने भारत की कोई स्पष्ट शिक्षा नीति बनाने से पहले उस समय मौजूद देशी शिक्षा के कुछ सर्वेक्षण करवाए थे। ऐसा ही एक विस्तृत सर्वेक्षण 1822–25 के बीच मद्रास प्रेसीडेंसी में करवाया गया था जिसमें आज का पूरा तमिलनाडु और आंध्रप्रदेश का काफी बड़ा हिस्सा कर्नाटक, केरल और उड़ीसा के कई जिले आते थे। सर्वेक्षण से पता लगा कि प्रेसीडेंसी में उस समय तक 11575 स्कूल और 1094 कॉलेज मौजूद थे। उनमें 157195 और 5431 विद्यार्थी पढ़ रहे थे।'

अंग्रेजों ने सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि भारत की शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ इसकी समुन्नत गुरुकुल पद्धति थी। भारत की शिक्षा व्यवस्था समावेशी, पूर्ण एवं विकेंद्रीकृत थी, जिसे तोड़ने के लिए अंग्रेज मैकाले नीति लेकर आते हैं। 2 फरवरी, 1835 ई. को लार्ड मैकाले ने 'भारतीय शिक्षा पर मिनट' पेश किया जिसमें उसने कहा—

* कथा साहित्य एवं भारतीय काव्यशास्त्र में विशेष रुचि। संप्रति—प्रोफेसर, हिंदी विभाग दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय।

1. अंग्रेजों से पहले का भारत, धर्मपाल, भारत पीठम, चांडक निवास शास्त्री चौक, बेलचर रोड, वर्धा, 2002 ई., पृ. 33–34

*"I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a beggar, who is a thief such wealth I have seen in this country, such high moral values, people of such caliber, that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of this nation, which is her spiritual and cultural heritage and therefore, I propose that we replace her old and ancient education system, her culture for if the Indians think that all that is foreign and English is good and greater than their own they will lose their self-esteem, their native culture and they will become what we want them, a truly, dominated nation."*²

(मैंने पूरा भारत देखा, उच्चतर जीवन मूल्य और उत्कृष्ट क्षमताओं को देखते हुए भारतीयों पर तब तक विजय प्राप्त नहीं की जा सकती, जब तक कि वहाँ की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक परंपरा की सशक्त रीढ़ नहीं तोड़ी जाती। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति, संस्कृति को विस्थापित करें कि भारतवासी विदेशी और अंग्रेजी को श्रेष्ठ समझते हुए स्वसंस्कृति और स्वाभिमान खोकर हमारे इच्छानुरूप शासित राष्ट्र हो जाएँ।)

इसीलिए अंग्रेजों ने भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को नष्ट किया एवं भारतीय भाषाओं को समाप्त कर, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बनाया। भारतीय भाषाओं को कमतर सिद्ध करने के पीछे उनका उद्देश्य भारत के स्वत्वबोध को नष्ट करना था, अंग्रेजों की इस साजिश को भारतीय मनीषा समझ रही थी, इसीलिए भारतेन्दु ने लिखा—

*निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।*³

यह 'निज भाषा' भारत में बोली जाने वाली सभी 'मातृभाषाएँ' हैं। बिना मातृभाषा में शिक्षा के मन का संशय दूर नहीं हो सकता, क्योंकि प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थी दूसरी भाषा (अंग्रेजी) में जब ज्ञान प्राप्त करता है तो वह उसे पचा नहीं पाता। इसलिए भारतीय भाषाओं की उन्नति का प्रयत्न होना चाहिए। महात्मा गांधी 'हिंद स्वराज' में लिखते हैं— *मुझे तो लगता है कि हमें अपनी सभी भाषाओं को उज्ज्वल — शानदार बनाना चाहिए। हमें अपनी भाषा में ही शिक्षा लेनी चाहिये।*⁴

गांधी इस बात को स्वीकार करते हैं कि 'स्वराज' की बात 'स्वभाषा' में ही हो, बिना स्वभाषा के हम गुलामी की इन जंजीरों से मुक्त नहीं हो सकते। वह लिखते हैं—

-
2. लार्ड मैकाले, भारतीय शिक्षा पर मिनट, 2 फरवरी, 1835 ई.
 3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान, भारतेन्दु समग्र, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, प. 228
 4. महात्मा गांधी, हिंद स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2011 ई., पृ. 746

मैकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनाई, ऐसा मैं नहीं सुझाना चाहता। लेकिन उसके काम का नतीजा यही निकला है। यह कितने दुख की बात है कि हम स्वराज्य की बात भी पराई भाषा में करते हैं?⁵

स्वाधीनता आंदोलन के लगभग सभी नेताओं ने निज भाषा के उत्थान की बात की और स्वाधीनता आंदोलन की भाषा 'हिंदी' को स्वीकार किया। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीतिक कुचक्रों ने भारत की भाषा-नीति को तहस-नहस कर दिया, अंग्रेजी का प्रभाव जस-का-तस बना रहा, देसी भाषाएँ हाशिए पर डाल दी गईं। संविधान सभा में 'राजभाषा' के प्रश्न पर पर्याप्त विमर्श हुआ, अंततोगत्वा 'हिंदी' राजभाषा के रूप में स्वीकृत तो हुई किंतु उसी के साथ अगले पंद्रह वर्षों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग भी जस का तस बना रहा। इसी निर्णय का दुष्परिणाम है कि भारतीय भाषाएँ ज्ञान-विज्ञान की भाषा नहीं बन पाईं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारत में पुनः 'सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवनपर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने'⁶ का लक्ष्य लेकर आई।

आज इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक के पश्चात् जब सूचना क्रांति का विस्फोट सा हो गया है, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने मानवता के सम्मुख नई चुनौती उपस्थित कर दी है तब भारतीय ज्ञान परंपरा, उससे निकले मूल्य एवं सिद्धांतों की पुनः आवश्यकता महसूस हो रही है। हमारी उसी शिक्षा व्यवस्था ने विश्व को चरक, सुश्रुत, चाणक्य, पाणिनि, मैत्रेयी, तिरुवल्लुवर जैसे विद्वान दिए जिन्होंने अपनी मेधा से मानवता का विस्तार किया, विश्व को दिशा दी। हमारी ज्ञान परंपरा जो चरित्र निर्माण को महत्त्वपूर्ण मानती थी वह एक ऐसे मनुष्य के निर्माण की पक्षधर थी जो चरित्रवान हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति पुनः एक ऐसी प्रणाली विकसित करना चाहती है जो छात्रों में भारतीय होने का गर्व भर दे। 'नीति का विजन छात्रों में भारतीय होने का गर्व न केवल विचार में बल्कि व्यवहार, बुद्धि और कार्यों में भी और साथ ही ज्ञान, कौशल, मूल्यों और सोच में भी होना चाहिए, जो मानवाधिकारों, स्थायी विकास और जीवनयापन तथा वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो, ताकि वे सही मायने में वैश्विक नागरिक बन सकें।'⁷

ऐसे विश्वनागरिक की परिकल्पना या निर्माण बिना बुनियादी मजबूती के संभव नहीं, इसीलिए इस शिक्षा नीति में भाषा को केंद्र में रखा गया। भाषा हमारी सांस्कृतिक चेतना की संवाहक है। संस्कृति की स्रोतस्विनी भाषा के माध्यम से ही सतत प्रवाहित होती है। यदि भाषा समाप्त होगी तो उसके साथ संस्कृति का अस्तित्व भी समाप्त हो

5. महात्मा गांधी, हिंद स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद 2011 ई., पृ. 72

6. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, पृ. 03

7. वही, पृ. 08

जाएगा। इसलिए भारतीय परंपरा और संस्कृति के संरक्षण हेतु भारतीय भाषाओं का विकास आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अध्याय 22 के बिंदु-6 में लिखा है— भाषाएँ प्रासंगिक और जीवंत बनी रहें इसके लिए इन भाषाओं में उच्चतर गुणवत्तापूर्ण अधिगम एवं प्रिंट सामग्री का सतत प्रवाह बने रहना चाहिए— जिसमें पाठ्य पुस्तकें, अभ्यास पुस्तकें, वीडियो, नाटक, कविताएँ, उपन्यास, पत्रिकाएँ आदि शामिल हैं।⁸

भारत की भाषाई विविधता के बावजूद सांस्कृतिक एकता पर डॉ. मलिक मोहम्मद लिखते हैं— भारतीय संस्कृति का निर्माण और विकास एक विशिष्ट भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हुआ है। छिटपुट प्रादेशिक विभेदों के होते हुए भी कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कामरूप तक भारतीय संस्कृति की आत्मा एक रही है, और इसी के अनुरूप अखिल भारतीय भाषा का निर्माण भी स्वतः होता आया है।⁹

भाषा के माध्यम से सांस्कृतिक संरक्षण के साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 22.1 से लेकर 22-20 तक अनेक सुझाव¹⁰ देती है जिसमें निम्नलिखित अत्यंत महत्वपूर्ण हैं—

- बच्चों में अपने सांस्कृतिक इतिहास, कला, भाषा एवं परंपरा की भावना और ज्ञान के विकास द्वारा एक सकारात्मक सांस्कृतिक पहचान और आत्म-सम्मान का भाव निर्मित करना।

- संस्कृति हमारी भाषाओं में समाहित है। साहित्य, नाटक, संगीत, फिल्म आदि के रूप में कला की पूरी तरह सराहना करना बिना भाषा के संभव नहीं है। संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए, हमें उस संस्कृति की भाषाओं का संरक्षण और संवर्धन करना होगा।

- भारतीय भाषाओं के शिक्षण और अधिगम को स्कूल और उच्चतर शिक्षा के प्रत्येक स्तर के साथ एकीकृत करने की आवश्यकता है।

- भाषाएँ प्रासंगिक और जीवंत बनी रहें, इसके लिए इन भाषाओं में उच्चतर गुणवत्तापूर्ण अधिगम एवं प्रिंट सामग्री का सतत प्रवाह बने रहना चाहिए।

- सभी स्कूली स्तरों पर संगीत, कला और हस्तकौशल पर बल देना; बहुभाषिकता को प्रोत्साहित करने के लिए त्रिभाषा फार्मूला का जल्द क्रियान्वयन; साथ ही जब संभव हो मातृभाषा/स्थानीय भाषा में शिक्षण।

- अधिक उच्चतर शिक्षण संस्थानों तथा उच्चतर शिक्षा के और अधिक कार्यक्रमों में मातृभाषा/स्थानीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाएगा और/या कार्यक्रमों को द्विभाषित रूप में चलाया जाएगा।

8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, पृ. 87

9. डॉ. मलिक मोहम्मद, राजभाषा हिंदी : विकास के विविध आयाम, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1986 ई., पृ. 47

10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, पृ. 86-92

- छात्रों में देश की विविधता, संस्कृति, परंपराओं और ज्ञान की समझ विकसित करने के लिए पर्यटन और भ्रमण को बढ़ावा देना।
- अनुवाद एवं विवेचना को विस्तार देना।
- उच्चतर शिक्षा में कला भाषा और सृजनात्मक लेखन के कार्यक्रम जनजातियों की भाषाओं एवं लुप्तप्राय भाषाओं और उनमें उपलब्ध लोक साहित्य का संरक्षण किया जाए।

इस नीति में प्रस्तावित इन सुझावों के आधार पर भारतीय भाषाओं की महत्ता पुनः स्थापित हो सकती है। इस नीति में जनजातीय एवं लोक भाषाओं को भी पुनः स्थापित करने की सलाह है क्योंकि भाषा और लोक का अन्योन्याश्रित संबंध होता है। इसे पाणिनि भी स्वीकार करते हैं। वह 'अष्टाध्यायी' में लिखते हैं—

'लुपि युक्तवद्व्यक्ति वचने'।¹¹

'तदशिष्यं संज्ञा प्रमाणत्वात्'।¹²

अर्थात् सूत्र बनाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसमें संज्ञा (लोक) ही प्रमाण है।

पाणिनि के इन सूत्रों की व्याख्या 'महाभाष्य' में भी की गई है, जहाँ कहा गया—
'लोक एव शास्त्रे व्यवहारः'।¹²

लोक ही शास्त्र का व्यवहार करता है।

भारतीय वैयाकरणों ने प्रारंभ से ही लोक और भाषा के अंतरसंबंध को रेखांकित किया। व्याकरणशास्त्र में अपनी बात को पुष्ट करने के लिए लोक का उपयोग किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भी पुनः भाषा को लोक से जोड़ने पर बल दे रही है। लोक अपनी भावनाओं, संवेदनाओं की अभिव्यक्ति कर भाषा को सशक्त बनाएगा तो भाषा लोक को विकास के पथ पर ले जाएगी।



संपर्क

प्रत्यूष दुबे— प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
उत्तर प्रदेश-273009, मो.—8765004188, ई—मेल: pratyooosh23@gmail.com

11. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 1/2/51

12. पाणिनि व्याकरणमहाभाष्य, सुधी प्रकाशन, वाराणसी, 1987 ई., पृ. 89

विद्यापति का सामाजिक-राजनीतिक दर्शन व भारतीय लोकजीवन की जीवंतता

सुजीत ठाकुर*

यह आलेख इस प्रश्न पर केंद्रित है कि कवि विद्यापति को मात्र मैथिली शृंगार-साहित्य के सिद्ध कवि के रूप में माना जाए अथवा उन्हें पंद्रहवीं शताब्दी के बंगाल, ओडिशा, असम और मिथिला के लोकजीवन में घटित सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के क्रांतिद्रष्टा के रूप में देखा जाए। उन्नीसवीं शताब्दी में सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने जब विद्यापति को 'नारी-शृंगार एवं रस के कवि' की संकुचित कोटि में स्थापित किया, तब उन्होंने अनजाने में 'मिथिला की उस सुदीर्घ बौद्धिक परंपरा की उपेक्षा कर दी जो तर्क, स्वाधीनता और स्त्री-विद्वत्ता की पोषक थी। आज जब विद्यापति की पदावलियों का सूक्ष्म पुनर्पाठ होता है तो स्पष्ट होता है कि वे उग्र नारीवाद से भी आगे बढ़कर, पुरुषप्रधान समाज में नारी के दृष्टिकोण से अपने विचारों को प्रस्तुत करते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनरुत्थान के इस काल में विद्यापति का नया शैक्षणिक पुनर्मूल्यांकन अत्यावश्यक है।

मिथिला का बौद्धिक वैभव और विद्यापति का बहुआयामी व्यक्तित्व पंद्रहवीं शताब्दी के महान विद्वान विद्यापति को 'मैथिल कोकिल' के नाम से जाना जाता है। किंतु यह पारंपरिक चित्रण उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को पूर्णतः नहीं दर्शाता। वे केवल कवि ही नहीं, बल्कि बहुश्रुत विद्वान, नाटककार, संगीतकार, दार्शनिक, विधिशास्त्री, राजदरबारी और राजपुरोहित भी थे। उन्होंने संस्कृत, अवहट्ट (अपभ्रंश) और मैथिली-तीनों भाषाओं में रचनाएँ कीं।

उनकी संस्कृत कृतियों में 'लिखनावली' (पत्र-लेखन शास्त्र), 'पुरुषपरीक्षा' (राजनीतिक नैतिकता एवं पुरुषत्व पर पौराणिक-ऐतिहासिक कथाओं का संकलन) और 'गोरक्ष-विजय' (एकांकी नाटक) प्रमुख हैं। अवहट्ट भाषा में 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' उल्लेखनीय हैं। उनकी अक्षय कीर्ति का आधार मैथिली में रचित पाँच सौ से अधिक पद हैं, जिन्हें 'पदावली' कहा जाता है। ये पद अपनी गेयता, लोकधुन और सहजता के लिए प्रसिद्ध हैं।

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

मिथिला की बौद्धिक परंपरा सदियों तक फली-फूली। गंगेश उपाध्याय ने लगभग 1325 ई. में 'तत्त्वचिंतामणि' की रचना कर नव-न्याय की आधारशिला रखी। यह मिथिला केंद्र न केवल ज्ञान का आगार था, अपितु बौद्धिक विचारों का प्रमुख निर्यातक भी था। मिथिला के शासक नान्यदेव ने अपनी कृति सरस्वती 'हृदयालंकार' में एक सौ साठ रागों की विवेचना की। मिथिला की नारियाँ गृह-भित्तियों पर जो चित्र बनाती थीं, वही आगे चलकर विश्वविख्यात 'मधुबनी चित्रकला' के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

मैथिली— जो विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है— के 'जनक' के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के एक ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी को स्थापित करना प्राच्यवाद की उस प्रवृत्ति का उदाहरण है जिसमें भारतीय ज्ञान को उसके 'रहस्यमय' या 'रोमांटिक' पहलुओं तक सीमित कर दिया गया। मिथिला— सांख्य दर्शन, व्यक्तिगत स्वाधीनता, स्त्री-विद्वत्ता और न्यायदर्शन की जन्मभूमि— की सुदीर्घ सभ्यता को तिरोहित कर एक प्रशासक को उसका जनक मान लेना इसी दृष्टि का परिणाम था।

सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन 1873 ई. में बिहार आए और प्रशासनिक आवश्यकता से प्रेरित होकर सन् 1881 में 'इंट्रोडक्शन टु द मैथिली लैंग्वेज' लिखी। उन्होंने मैथिली को आधुनिक जगत में एक स्वतंत्र भाषा के रूप में प्रस्तुत करने में सहायता की, यह स्वीकार्य है— किंतु वे मिथिला के उस विपुल प्राचीन साहित्य-भंडार को भूल गए जो तेरहवीं से पंद्रहवीं शताब्दी के बिहार की अर्थव्यवस्था और समाज का अनमोल प्रमाण है। इसी भूलने की प्रवृत्ति ने विद्यापति जैसे राजनीतिक दार्शनिक को केवल श्रृंगारिक कवि की कोटि में बाँध दिया। 1915 में मनमोहन चक्रवर्ती और 1962 में वासुदेवशरण अग्रवाल के शोध-कार्यों ने इस ऐतिहासिक न्याय को कुछ हद तक सुधारा।

चौदहवीं शताब्दी के भारत को समझने के लिए दो ग्रंथ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं— 'वर्ण-रत्नाकर' और 'कीर्तिलता'। ये दोनों ग्रंथ भारतीय ज्ञान परंपरा के वो अनमोल प्रमाण हैं जिन्हें औपनिवेशिक विद्वत्ता ने जानबूझकर अनदेखा किया। कर्नाट वंश के शासनकाल में ज्योतिरीश्वर ठाकुर द्वारा रचित 'वर्ण-रत्नाकर' (लगभग 1324-1349 ई.) ताम्रपत्र पर सतहत्तर श्लोकों में उत्कीर्ण था। इसमें राजा के लिए छत्तीस प्रकार के अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान, चौरासी राजनीतिक कलाएँ और नैतिक गुणों की अनिवार्यता प्रतिपादित की गई है। इस ग्रंथ में मिथिला के समृद्ध वस्त्र-व्यापार का विस्तृत वर्णन है— उस काल में मिथिला के वाणिज्यिक संबंध तंजौर, सिलहट, अजमेर, कोच्चि और चोलपाटन जैसे दूरस्थ नगरों तक फैले थे।

लगभग 1348 ई. के बाद विद्यापति ने अवहट्ट भाषा में 'कीर्तिलता' की रचना की, जो तत्कालीन बिहार के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन का एक अप्रतिम दस्तावेज है। इसमें सामाजिक अनुष्ठानों में महुआ, जौ और चावल से बनी मदिरा के साथ-साथ अफीम और भाँग के उपयोग का उल्लेख है। विद्यापति ने

जौनपुर के मछली बाजार और जूते की दुकानों जैसी आर्थिक गतिविधियों का भी वर्णन किया है। उन्होंने बंधुआ श्रम की क्रूर प्रथा का भी जिक्र किया— जिसमें शक्तिशाली शासक श्रमिकों का पारिश्रमिक नहीं चुकाते थे। उन्होंने तत्कालीन तीन मुख्य सामाजिक-शासकीय वर्गों— जमींदारी, राज्य-अधिकारी और अभिजात्य वर्ग— की स्पष्ट पहचान भी की। इसी काल में अलबरूनी ने पान को भारत की एक राष्ट्रीय परंपरा और सामाजिक शिष्टाचार का अंग बताया।

एंगस मैडिसन के आँकड़ों के अनुसार उस काल में वैश्विक अर्थव्यवस्था में भारत का योगदान पच्चीस से तीस प्रतिशत तक था। पंकज झा के शोध-ग्रंथ 'ए पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ लिटरेचर: विद्यापति एंड द फिफ्थ सेंचुरी' (ऑक्सफर्ड, 1018) में स्थापित किया गया है कि ये ग्रंथ पंद्रहवीं शताब्दी की साहित्यिक-सांस्कृतिक समृद्धि के प्रमाण हैं जो किसी सुदृढ़ राजनीतिक ढाँचे की अनुपस्थिति में भी फली-फूली।

राजनीतिक रूप से विद्यापति की दृष्टि एक राजनीतिक दार्शनिक की थी। वो मिथिला राष्ट्र व मैथिली चेतना के उद्दीपक रहे हैं। विद्यापति राष्ट्र व सामाजिक निर्माण में सैन्य शिक्षा व सैन्य सुरक्षा को अन्य सभी शिक्षा से उच्च स्थान देते थे। सामाजिक समरसता व शिक्षा का समाजीकरण लोक भाषा द्वारा हो, उसके वो कट्टर समर्थक थे। विद्यापति की 'कीर्तिलता' एक राजनीतिक जीवनी है और 'पुरुषपरीक्षा' राजनीतिक नैतिकता पर केंद्रित है, जो उनके कार्यों में सामाजिक और राजनीतिक टिप्पणी की संभावना को दर्शाती है। विद्यापति एक राजनयिक थे और उन्होंने 'लिखनावली' और 'पुरुषपरीक्षा' जैसे ग्रंथों के माध्यम से राजनीतिक दर्शन पर महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी रचनाएँ 'लिखनावली' (पत्र और दस्तावेज लिखने पर एक ग्रंथ), 'पुरुषपरीक्षा' (पुरुषत्व और राजनीतिक नैतिकता पर कहानियों का संकलन) और कीर्तिलता (एक राजनीतिक जीवनी) उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को दर्शाती हैं। ये रचनाएँ उनके राजनीतिक नैतिकता और राज्य-कला पर विचारों को दर्शाती हैं। 'कीर्तिलता' में दिल्ली की दरबारी महिलाओं की प्रशंसा का उल्लेख भी सामाजिक टिप्पणी का संकेत देता है। हालाँकि, उनके राजनयिक कार्यों और सैन्य शिक्षा या सामाजिक समरसता पर उनके प्रत्यक्ष बयानों के बारे में अधिक विशिष्ट प्रमाणों की तलाश जारी है। पंकज झा के कार्य 'ए पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ लिटरेचर' में इस बात पर जोर दिया गया है कि 'कीर्तिलता' जैसे ग्रंथ 15वीं शताब्दी की साहित्यिक और सांस्कृतिक समृद्धि को दर्शाते हैं, जो किसी 'शाही' गठन की अनुपस्थिति के बावजूद फली-फूली। यह इस बात का प्रमाण है कि राजनीतिक शक्ति के आकार और साहित्यिक कल्पना के बीच सीधा संबंध आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त, 'लिखनावली' नामक उनका संस्कृत ग्रंथ, जो पत्रों और दस्तावेजों को लिखने पर केंद्रित है, उस समय की प्रशासनिक और सामाजिक प्रथाओं पर प्रकाश

डाल सकता है। यह भी स्पष्ट हुआ है कि दिल्ली सल्तनत के विघटन के बाद भी साहित्यिक दृष्टियाँ बनी रहीं और छोटे राज्यों में भी पनपती रहीं, जो विद्यापति के कार्यों के राजनीतिक संदर्भ को पुष्ट करता है। उनका सबसे प्रत्यक्ष राजनयिक प्रमाण जौनपुर के सुल्तान इब्राहिम शाह शर्की (शासनकाल: 1402–1440) के दरबार में उनकी यात्रा है, जहाँ उन्होंने अपने राज्य के लिए सहायता माँगने वाले राजदूत के रूप में कार्य किया। 'कीर्तिलता' में मलिक अरसलान द्वारा राजा गणेश्वर की हत्या का उल्लेख है; विद्यापति ने जौनपुर के सुल्तान से सहायता माँगी थी, ताकि अरसलान को हटाकर गणेश्वर के पुत्रों को सिंहासन पर बैठाया जा सके। सुल्तान को 'ईश्वर के बाद सर्वश्रेष्ठ' कहना केवल स्तुति नहीं, बल्कि ओइनिवार राजवंश के शासन को सुरक्षित करने की एक सुचिंतित राजनीतिक चाल थी – मध्यकालीन राजनीतिक यथार्थवाद का उत्कृष्ट उदाहरण।

विद्यापति के दर्शन का एक केंद्रीय स्तंभ 'जीवन मान सों' (गरिमा के साथ जीवन) का विचार है, जो उनकी कृति 'कीर्तिलता' में व्यक्त होता है। यह वाक्यांश पहचान, समानता और मानवाधिकारों पर केंद्रित अनगिनत सामाजिक आंदोलनों की आकांक्षाओं को समाहित करता है। विद्यापति का गरिमा पर जोर आम लोगों के प्रति उनकी गहरी चिंता को रेखांकित करता है, जिसने उन्हें संस्कृत पर अपनी महारत के बावजूद लोकभाषा में लिखने के लिए प्रेरित किया। यह दृष्टिकोण आधुनिक मानवतावाद के विचारों के साथ गहराई से प्रतिध्वनित होता है, जो मानव गरिमा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सभी मनुष्यों के कल्याण पर जोर देता है। विद्यापति का दर्शन मुक्ति (मोक्ष) को एक आध्यात्मिक अभिजात वर्ग के लिए एक गूढ़ लक्ष्य के बजाय, समाज के साथ सामूहिक और तर्कसंगत जुड़ाव के माध्यम से सभी व्यक्तियों के लिए एक प्राप्य वास्तविकता के रूप में देखता है। यह दर्शाता है कि समानता और मुक्ति के सिद्धांत किसी एक संस्कृति या युग के लिए अनन्य नहीं हैं, बल्कि सार्वभौमिक रूप से प्रासंगिक हैं। उनके कार्य जाति, वर्ग और पंथ की सीमाओं को पार करते हैं, धर्म की एक धर्मनिरपेक्ष व्याख्या प्रस्तुत करते हैं जो मानवता और सामूहिक कल्याण को प्राथमिकता देती है। यह दृष्टिकोण कट्टरता और धार्मिक अतिवाद की नींव को चुनौती देता है, एक अधिक न्यायसंगत और करुणामय दुनिया की ओर मार्ग प्रशस्त करता है। समकालीन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के संदर्भ में विद्यापति की प्रासंगिकता को उनकी पुस्तक 'पुरुषपरीक्षा' में 'पुरुषत्व' और 'धर्म' पर उनके विचारों के माध्यम से खोजा जा सकता है। स्वाभाविक है, यह स्वरूप किसी साहित्यकार को जिसे पद्य साहित्य व एक लोक भाषा तक सीमित रखा गया हो उसमें भी उसकी एक शाखा शृंगार व भक्ति काव्य तक सीमित रखा गया हो, उसके दृष्टिकोण को साहित्य से बढ़कर एक राजनीतिक दार्शनिक के रूप में देखने का प्रयास किया गया है, क्योंकि विद्यापति मूलरूप से एक कवि न होकर राजनयिक थे।

उग्र नारीवाद से भी आगे महिलाओं का विद्यापति के पदावली के प्रति सम्मोहन व पिछले 700 वर्षों से मैथिली-मिथिला के स्त्री सशक्तिकरण व स्त्रियोन्मुख यौन व्यवहार पर विद्यापति की पदावली का प्रभाव विद्यापति के साहित्यिक जीवंतता को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। विद्यापति की पदावली में महिलाओं के सशक्तिकरण और 20वीं-21वीं शताब्दी के नारीवादी विमर्श के लिए प्रासंगिक अंतर्दृष्टि भी मिली है, जो महिलाओं के मुखर और भावनात्मक चित्रण पर केंद्रित है। उनका साहित्य स्त्री विमर्श के लिए एक मौलिक आधार प्रदान करता है जिसमें उन्होंने भक्ति, शक्ति और रस के माध्यम से एक सशक्त राष्ट्र, समाज और संस्कृति के निर्माण का महत्त्वपूर्ण संदेश दिया। विद्यापति की रचनाएँ, विशेषकर उनकी पदावली, 15वीं शताब्दी के मैथिली लोकजीवन की जीवंतता को दर्शाती हैं। उनकी पदावली में जनभाषा में जनसंस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है, जो उन्हें हिंदी साहित्य के मध्यकाल के पहले ऐसा कवि बनाती है जिन्होंने लोकजीवन को सीधे अपनी रचनाओं में उतारा। उनके गीत लोकधुनों और सहजता से भरे हैं, जो उन्हें आम लोगों के बीच अत्यंत लोकप्रिय बनाते हैं। उनकी रचनाएँ पारंपरिक लैंगिक मानदंडों को चुनौती देती हैं और स्त्री अनुभव को एक नई गहराई और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं। विद्यापति की पदावली को नारीवादी विमर्श के लिए एक महत्त्वपूर्ण पाठ के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि यह महिलाओं के आंतरिक संसार, उनकी भावनाओं और उनके अनुभवों पर असाधारण ध्यान केंद्रित करती है। उनकी कविताएँ राधा के दृष्टिकोण से लिखी गई हैं, जो उस समय की साहित्यिक परंपरा से एक महत्त्वपूर्ण विचलन था जहाँ पुरुष पात्रों का प्रभुत्व होता था। राधा के अनुभवों, उनकी इच्छाओं, उनकी झिझक, और उनके शरीर के प्रति उनकी बढ़ती जागरूकता का विस्तृत वर्णन, उन्हें एक स्वायत्त व्यक्ति के रूप में स्थापित करता है, जो केवल कृष्ण के प्रेम की वस्तु नहीं है। यह चित्रण महिलाओं के अनुभवों को केंद्र में लाता है और उन्हें साहित्यिक विमर्श में एक केंद्रीय स्थान देता है, जिससे नारीवादी आलोचना के लिए एक उपजाऊ जमीन तैयार होती है। उनकी कविताओं में राधा की शारीरिक और भावनात्मक बारीकियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। राधा की इच्छाओं, झिझक, देह के प्रति बढ़ती जागरूकता और वियोग की पीड़ा का विस्तृत वर्णन उन्हें एक स्वायत्त व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करता है। नीचे दिए गए तीन पद इस नारी-चेतना को सीधे प्रकट करते हैं :

पद 1. राधा की देह-जागृति

मैथिली मूल

उचकड़ पयोधर भार।
रोमाञ्च भरल सकल शरीर।।
अपने मन नहि जानि काज।

हिंदी भावानुवाद

उभर आए उरोजों के भार से देह
थिरकती है,
रोमांच से भर उठा समूचा शरीर।

नयन—कोण रस—मधु पान ।।

अपने मन की चाह को वह स्वयं
नहीं पहचानती ।

नयन के कोनों से रस—मधु का
पान करती है ।

यह पद राधा की उस अवस्था को व्यक्त करता है जब वे प्रेम और काम—भावना के प्रथम स्पर्श से परिचित हो रही हैं । उनका शरीर प्रतिक्रिया कर रहा है, किंतु उनका मन उस प्रतिक्रिया का अर्थ नहीं समझ पा रहा— यह 'अज्ञान' में 'जागरण' का वह क्षण—चित्रण है जिसे विद्यापति ने असाधारण संवेदनशीलता से उकेरा है ।

पद 2 — 'सखि हे' — आत्म—अनुभव की वाणी

मैथिली मूल

हिंदी भावानुवाद

सखि हे, कि पुछसि अनुभव मोय ।
सेहो पिरिति अनुराग बखानिते,
अधिक जुड़ाइत होय ।।
कुच जुग कठिन बाहु—पास,
हृदय—मिलन तनु—भास ।
जनु खनन—मणि दीपक—रास—
परस—परस अभिलाष ।।

सखि, तू मुझसे अनुभव क्या पूछती है?
उस प्रीति और अनुराग का बखान
करते—करते और भी तृप्ति होती है ।
कठोर वक्षस्थल की बाहुपाश में जकड़न,
हृदय से हृदय का मिलन, देह का उजास—
मानो खदान से निकले मणियों का
दीपक—समूह ।

स्पर्श पर स्पर्श की अभिलाषा है ।

इस पद में राधा स्वयं सखी को अपना शारीरिक और भावनात्मक अनुभव सुनाती है । यह केवल शारीरिक सौंदर्य का वर्णन नहीं है, बल्कि एक युवा महिला के आंतरिक संघर्षों और अनुभवों का अन्वेषण है जो प्रेम और कामुकता की दुनिया में प्रवेश कर रही है । राधा की 'शर्मिंदगी', 'लज्जा' और 'आश्चर्य' का चित्रण, जब उनका शरीर अप्रत्याशित तरीकों से खिल रहा है और वे अपनी बढ़ती कामुकता के साथ क्या करें, इस बारे में अनिश्चित हैं, महिला अनुभव की एक मार्मिक और यथार्थवादी तस्वीर प्रस्तुत करता है । वे न लज्जित हैं, न मौन — वे उस अनुभव को शब्द देती हैं । पंद्रहवीं शताब्दी में, जहाँ नारी की इच्छा को अदृश्य बनाया जाता था, विद्यापति का यह चित्रण किसी क्रांति से कम नहीं था । यह पारंपरिक साहित्य में महिलाओं के चित्रण से एक महत्वपूर्ण प्रस्थान है, जहाँ उन्हें अक्सर केवल आदर्शवादी या प्रतीकात्मक भूमिकाओं में प्रस्तुत किया जाता था । विद्यापति का यह चित्रण महिला कामुकता और आत्म—अनुभव की जटिलता को स्वीकार करता है, जो आधुनिक नारीवादी विचारों से मेल खाता है कि यौन संतुष्टि और स्वायत्तता महिला सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण पहलू है ।

पद 3. 'पिया मोरा बालक' – परिपक्व साहचर्य की माँग
मैथिली मूल **हिंदी भावानुवाद**

पिया मोरा बालक हम तरुणी गे। मेरा प्रियतम तो बालक है, मैं तरुणी हूँ
कोन सुख पाओब एहि संगे।। सखि—
नहि जाने रसिक विलास। इस संग क्या सुख पाऊँगी?
नहि जाने मान-अभिमान।। वह रसिक-विलास नहीं जानता,
मान-अभिमान का भाव नहीं समझता।

यह पद विद्यापति का गीत 'पिया मोरा बालक' (मेरा प्रियतम बालक है), जिसे अकसर वैवाहिक बेमेल के रूप में गलत समझा जाता है, वास्तव में रिश्तों, साहचर्य और वैवाहिक संतुष्टि के लिए आवश्यक परिपक्वता की गहरी आलोचना है। यह गीत एक ऐसी महिला के असंतोष की अभिव्यक्ति है जो एक समान साथी चाहती है – एक ऐसा पुरुष जो परिपक्वता, ज्ञान और भावनात्मक गहराई में उससे मेल खा सके। विद्यापति ने इस बात पर जोर दिया कि रिश्तों में परिपक्वता केवल जैविक नहीं, बल्कि भावनात्मक और बौद्धिक तत्परता के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है। यह दृष्टिकोण उस समय के लिए असामान्य रूप से प्रगतिशील था, जब अक्सर युवा लड़कियों का विवाह बड़े पुरुषों से कर दिया जाता था, लेकिन इसके विपरीत, यानी महिलाओं के अपरिपक्व पुरुषों के साथ संबंध पर शायद ही कभी इतनी बारीकी से विचार किया जाता था।

'पुरुषपरीक्षा' में विद्यापति ने पुरुषत्व का एक नया प्रतिमान प्रस्तुत किया— जिसमें वीरता, धैर्य, विवेक, उत्साह और विद्या को धन जैसे भौतिक मानदंडों से ऊँचा स्थान दिया। विद्यापति ने 'स्वकीया' और 'परकीया'— दोनों प्रकार के प्रेम का चित्रण किया। मिथिला में उनके प्रेम-गीत आज भी विवाह-संस्कार में गाए जाते हैं— काम-भाव और पवित्रता का यह सम्मिश्रण विद्यापति की दृष्टि की मौलिकता है।

विद्यापति के प्रभाव का विस्तार समझने के लिए यह तथ्य पर्याप्त है कि रवींद्रनाथ ठाकुर, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय, चैतन्य महाप्रभु, रामानंद राय तथा असमिया व उड़िया साहित्य पर उनकी छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। विद्यापति के प्रभाव से सोलहवीं शताब्दी में 'ब्रजबुलि' नामक एक विशिष्ट साहित्यिक भाषा का विकास हुआ— यह मध्यकालीन मैथिली थी जिसके रूपों को बंगाली छाया देने के लिए संशोधित किया गया। गोविंददास कविराज, ज्ञानदास, बलरामदास और नरोत्तमदास जैसे बंगाली कवियों ने अपने पद इसी ब्रजबुलि में रचे। रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी अपनी 'भानुसिंह ठाकुरे पदावली' (1554) ब्रजबुलि में रची— यह विद्यापति के प्रति उनकी सचेत श्रद्धांजलि थी।

विद्यापति ने मैथिली को 'देसिल बयना' (देश की भाषा) कहकर उसे लोकजीवन की पहचान से जोड़ा — यह भाषाई राष्ट्रवाद का एक प्रारंभिक रूप था। विद्यापति के

प्रभाव के परिणामस्वरूप 16वीं शताब्दी में 'ब्रजबुलि' नामक एक कृत्रिम साहित्यिक भाषा का विकास हुआ। ब्रजबुलि मूल रूप से मध्यकालीन मैथिली थी, लेकिन इसके रूपों को बंगाली जैसा दिखने के लिए संशोधित किया गया था। यह भाषा पूर्वी भारत की साहित्यिक परंपराओं में, विशेष रूप से बंगाल और ओडिशा में, अत्यधिक लोकप्रिय हुई। मध्यकालीन बंगाली के प्रमुख कवियों जैसे गोविंददास कविराज, ज्ञानदास, बलरामदास और नरोत्तमदास ने अपने पद इसी ब्रजबुलि भाषा में रचे। रवींद्रनाथ टैगोर ने भी अपनी 'भानुसिंघ ठाकुरे पदावली' (1884) पश्चिमी हिंदी (ब्रजभाषा) और पुरातन बंगाली के मिश्रण से ब्रजबुलि के रूप में रची, विद्यापति की नकल करते हुए। यह भाषाई विकास विद्यापति के भाषाई नवाचार और लोकभाषा के माध्यम से साहित्यिक अभिव्यक्ति को बढ़ावा देने के उनके दृष्टिकोण का एक प्रत्यक्ष परिणाम था। ब्रजबुलि ने विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के बीच एक सेतु का काम किया और भक्ति आंदोलन के संदेश को व्यापक दर्शकों तक पहुँचाने में मदद की, जिससे सांस्कृतिक एकीकरण और साहित्यिक आदान-प्रदान को बढ़ावा मिला।

भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनरुत्थान और पूर्व के उदय के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यापति का शैक्षणिक पुनर्मूल्यांकन एक अपरिहार्य कार्य है। प्राच्यवाद के प्रभाव में पश्चिमी विद्वानों ने भारतीय संस्कृति को उसके 'रहस्यमय' या 'रोमांटिक' पहलुओं तक सीमित रखा। ग्रियर्सन ने जहाँ एक ओर विद्यापति को आधुनिक जगत के सामने प्रस्तुत किया, वहीं उनके साहित्य में निहित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विचार अनदेखे रह गए।

विद्यापति की पदावली के तीन पदों में – राधा की देह-जागृति, आत्म-अनुभव की मुखर अभिव्यक्ति और परिपक्व साहचर्य की माँग— एक ऐसी नारी-चेतना प्रकट होती है जो अपने युग से कई शताब्दी आगे है। 'वर्ण-रत्नाकर और कीर्तिलता' में पंद्रहवीं शताब्दी के बिहार का जो आर्थिक-सामाजिक चित्र उकेरा गया है, वह इतिहास-लेखन का एक अमूल्य स्रोत है। और 'जीवन मान सों' का दर्शन— जो गरिमा के साथ जीवन जीने को सर्वोच्च मूल्य मानता है— आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण के इस दौर में विद्यापति को उनकी समग्रता में देखना आवश्यक है— एक राजनीतिक दार्शनिक, समाज-सुधारक, भाषाई राष्ट्र निर्माता और मानवीय गरिमा के उद्घोषक के रूप में। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को उजागर करना उस औपनिवेशिक छाया को भी दूर करना है जिसने मिथिला की सुदीर्घ बौद्धिक परंपरा को एक शृंगारिक काव्यधारा की सँकरी परिभाषा में बाँध दिया था।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

- पंकज झा, A Political History of Literature: Vidyapati and the Fifteenth Century- ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018
- वासुदेवशरण अग्रवाल. कीर्तिलता – व्याख्या एवं विवेचन, काशी विद्यापीठ, 1562
- G-A- ग्रियर्सन, An Introduction to the Maithili Language of North Bihar- कलकत्ता, 1881 (संशोधित संस्करण 1906)
- ज्योतिरीश्वर ठाकुर, वर्ण-रत्नाकर (लगभग 1324-1349 ई.), अनुवाद: सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय
- नागार्जुन- विद्यापति के गीत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979
- मैथिली अकादमी- विद्यापति गीतावली, तीसरा संस्करण, पटना, 2008
- शैलेंद्र मोहन झा- विद्यापति, द्वितीय संस्करण, मैथिली अकादमी, पटना, 1898
- विभूति आनंद एवं ज्योत्सना चंद्रम- विद्यापतिक पदावली, झखन तखन प्रकाशन, दरभंगा, 2008
- डॉ. रामानंद झा- विद्यापतिक चेतना, चेतना समिति, पटना, 2017
- Brian Black, The Character of the Self in Ancient India: Priests, Kings, and Women in the Early Upanishads- अल्बानी: स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, 2009
- Steven E. Lindquist. The Literary Life of Yajñavalkya- अल्बानी: स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, 2023
- Patrick Olivelle Professor Emeritus of Asian Studies, The University of Texas at Austin- (प्रारंभिक भारतीय धर्म, विधि और राजनीति पर प्रमुख कार्य)
- R.D. रानाडे- Constructive Survey of Upanishadic Philosophy- पूना, 1926
- एस. राधाकृष्णन- Indian Philosophy भाग 1. लंदन
- R.R. दिवाकर- Bihar Through the Ages- कलकत्ता, 1959
- J.N. सरकार- Glimpses of Medieval Bihar- पटना, 1978
- Angus Maddison- The World Economy: Historical Statistics- पेरिस : OECD, 2003
- Contextualising Vidyapati (विद्वत्-आलेख)- पुरुषपरीक्षा, कीर्तिलता आदि में आधुनिक दर्शन की झलक
- एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका- विद्यापति' जन्म, मृत्यु, कार्य एवं प्रभाव



संपर्क

सुजीत ठाकुर— एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दयाल सिंह कॉलेज,
लोधी रोड, प्रगति विहार, नई दिल्ली—110003 मोबाइल— 9891053975,
ई-मेल: sujiththakur@gmail.com

सच ने
जीभ नहीं पायी है
वह बोले तो कैसे
न्यायी बैठे
जीभ पकड़ते
जब वादी—प्रतिवादी लड़ते
सच के पाँव उखड़ते
झूठ के जब झंडे गड़ते
सच जीते तो कैसे
न्याय मिले तो कैसे.....

— केदारनाथ अग्रवाल

‘सरस्वती’ की देश चिंता

रवि रंजन पाण्डेय*

हिंदी पत्रकारिता में ‘सरस्वती’ केवल एक साहित्यिक पत्रिका नहीं, बल्कि अपने समय का सशक्त वैचारिक हथियार थी। 1920 का दौर वह दौर था जब प्रेस पर कड़े प्रतिबंध लगे हुए थे। ऐसे में पत्रिका ने सीधे राजद्रोह के आरोपों से बचते हुए बड़ी कूटनीति से काम लिया। उसने साहित्य के सुरक्षित आवरण में जनता तक राजनीतिक चेतना पहुँचाई। इसकी ‘देश-चिंता’ कोई कोरी भावुकता नहीं थी। यह साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध एक मजबूत वैचारिक प्रतिरोध था, जिसने भारतीय स्वाधीनता संग्राम को एक नई दिशा प्रदान की।

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में ‘सरस्वती’ का स्वर्णिम स्थान है। उत्तरी भारत में 1920 का दशक जिस सामाजिक और बौद्धिक चेतना के उत्कर्ष के लिए प्रसिद्ध है, उसे गति देने में तत्कालीन लेखकों और पत्रकारों का उल्लेखनीय योगदान था। वैचारिक जागृति पैदा करने वाली इन सभी पत्रिकाओं में ‘सरस्वती’ शीर्षस्थ थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1903 से 1920 ई. तक इस पत्रिका का अत्यंत सफलतापूर्वक संपादन किया और इसे राष्ट्रीय चेतना का प्रमुख संवाहक बनाया। द्विवेदी युग के इस साहित्यिक और भाषाई महत्त्व को प्रायः सभी जानते हैं, लेकिन 1920 से 1930 के दशक की ‘सरस्वती’ का भी अपना एक विशेष और स्वतंत्र ऐतिहासिक महत्त्व है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में 1920 का दशक राजनीतिक और सामाजिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। यह वह समय था जब राष्ट्रीय आंदोलन केवल बौद्धिक बहसों तक सीमित न रहकर आम जनता, किसानों और युवाओं के बीच पहुँच रहा था। असहयोग से लेकर सविनय अवज्ञा आंदोलन तक की इस परिवर्तनकारी यात्रा का नेतृत्व महात्मा गाँधी ने किया। इस दौरान भारतीय समाज के हर तबके में एक नई राजनीतिक जागृति पैदा करने की कोशिश की गई। इसी दशक में राष्ट्रीय चेतना ने अपना स्थानीय दायरा तोड़कर एक अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण किया। इस दौर में एक तरफ गाँधी जी का अहिंसक सत्याग्रह चल रहा था, तो दूसरी

* हिंदी पत्रकारिता, काव्यशास्त्र एवं आलोचना में विशेष रुचि। संप्रति—हरद्वारी लाल गोयल राजकीय महाविद्यालय तावड़ू—हरियाणा में सहायक आचार्य (हिंदी) के पद पर कार्यरत।

तरफ गरम दल के क्रांतिकारियों का उग्र राष्ट्रवाद। इन दोनों ही धाराओं ने आम जनमानस में स्वतंत्रता की अलख जगाई, जिससे लोगों में अपने अधिकारों के लिए लड़ने की अदम्य जिजीविषा उत्पन्न हुई।

इस भारी राजनीतिक उथल-पुथल के बीच जन-जागृति पैदा करने की कोशिशों में 'सरस्वती' आगे रही। ऐतिहासिक दस्तावेजों से स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी के बाद आने वाले संपादकों पदुमलाल पुन्नलाल बख्शी और देवीदत्त शुक्ल ने बदलते समय की इन राजनीतिक सरगर्मियों को बखूबी समझा। यह वह दौर था जब अंग्रेजी सरकार का दमनचक्र अपने चरम पर था और प्रेस पर कड़े प्रतिबंध लगे हुए थे। ऐसे दमनकारी कानूनों के बीच 'सरस्वती' ने बड़ी कूटनीति से काम लिया। एक साहित्यिक पत्रिका होने के बावजूद, उसने राजद्रोह के सीधे आरोपों से बचते हुए साहित्य के सुरक्षित आवरण में जनता तक राजनीतिक चेतना पहुँचाने की कोशिश की। पत्रिका की यह 'देश चिंता' केवल कोरी भावुकता नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध एक वैचारिक प्रतिरोध थी।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट (1919) की समीक्षा

1920 के दशक की शुरुआत में ही भारतीय राजनीति में गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट (1919) की चर्चा जोरों पर थी। 1920 के जनवरी माह की 'सरस्वती' की शुरुआत उस राजकीय घोषणा के प्रकाशन से होती है जिसे 'सम्राट जॉर्ज पंचम का संदेश' शीर्षक से छापा गया था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारतीयों को यह उम्मीद थी कि उन्हें स्वशासन की दिशा में कुछ ठोस अधिकार मिलेंगे। इसी पृष्ठभूमि में सम्राट ने 23 दिसंबर 1919 को अपना वक्तव्य दिया था जिसमें उन्होंने गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट जारी करने की सहमति प्रदान की थी। उन्होंने अपने संदेश में कहा था कि "यह कानून भारत के शासन में विशेष सुधार करने और भारतीय प्रजा को समधिक संतोष देने के लिए पास किया गया है.. उसके अनुसार देश-शासन का एक निश्चित अंश प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधियों को प्राप्त हुआ है। भविष्य में, किसी समय, भारत के शासन का उत्तरदायित्वपूर्ण समग्र अधिकार भी प्रजा के प्रतिनिधियों को मिल जाएगा। हमने इस तरह के पूरे शासन की प्राप्ति का मार्ग खोल दिया है। आगे चलकर, भारत को अपना शासन आप ही करने का मौका दिया जाएगा।"¹

स्पष्ट है कि इस वक्तव्य में जॉर्ज पंचम ने ऊपरी तौर पर भारतीय जनता के हित की कामना व्यक्त की है और उन्हें भविष्य में स्वशासन का सपना दिखाया है। 'सरस्वती' जैसी गंभीर पत्रिका के प्रथम पृष्ठ में इस खबर को स्थान दिए जाने से पता चलता है कि तत्कालीन बौद्धिक वर्ग इस घोषणा को कितनी अहमियत दे रहा था। परंतु, गहराई से अवलोकन करने पर पता चलता है कि यह भारतीय जनता की वास्तविक आकांक्षाओं के साथ महज एक खिलवाड़ था। इस एक्ट में भारतीयों को जो अधिकार दिए गए, वे बहुत ही सीमित और दिखावटी थे। विदेशी मामलों पर फैसले

लेने की बात तो दूर रही, उन पर अपनी राय प्रकट करने का भी अधिकार भारतीयों को प्राप्त नहीं था। रक्षा के मामले में भी सम्राट ने स्पष्ट कर दिया था कि “बाहरी शत्रुओं से भारत की रक्षा करना तो साम्राज्य की सर्वप्रधान शक्ति का ही कर्तव्य है और इस कर्तव्य का पालन उस शक्ति के लिए गर्व की भी बात है। इस कारण वह तो उसी को करना पड़ेगा।”²

जहाँ तक आंतरिक शासन में भारतीयों के अधिकार की बात है, वह केवल प्रतिनिधि संस्थाओं द्वारा जनता की इच्छाओं को सरकार के समक्ष एक अर्जी की तरह प्रकट करने तक ही सीमित था, नीतियाँ बनाने का वास्तविक अधिकार नहीं मिला था। इस संबंध में सम्राट ने बड़ी चतुराई से कहा था कि “इस समय भारत में जनसाधारण की संस्थापित जो नई-नई संस्थाएँ काम कर रही हैं उनको चाहिए कि संस्थापन करनेवालों की। जिनकी वे प्रतिनिधि हैं, उनकी- इच्छाओं का प्रकटीकरण बुद्धिमानी से करें। वे लोग क्या चाहते हैं, क्या नहीं, यह बताने में वे बुद्धिमत्ता से काम लें। राजकीय मामलों में मत देने का अधिकार वे सब लोग अभी नहीं प्राप्त कर सकते।”³ यह कथन इस बात का प्रमाण है कि अंग्रेज सरकार भारतीयों को अभी भी शासन के योग्य नहीं मानती थी।

इस एक्ट को लेकर: ‘सरस्वती’ का अपना नज़रिया क्या था, यह उसके ‘विविध विषय’ स्तंभ में छपे लेखों से भली-भाँति समझा जा सकता है। दिलचस्प बात यह है कि ‘सरस्वती’ के संपादक मंडल की दृष्टि में यह एक्ट स्वायत्त शासन की तरफ एक महत्वपूर्ण कदम था। एक लेख में कहा गया है कि “देश-शासन-संबंधी अधिकार प्राप्त करने के लिए, लेख, वाणी और कार्य द्वारा तरह तरह के प्रयत्न हो ही रहे थे और कुछ कुछ-यद्यपि बहुत ही कम-सफलता भी हुई थी कि यूरोप में महायुद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य की धन-जन आदि से जो सहायता की उस सहायता ने शासनाधिकार देने की शक्ति रखनेवालों के पूर्व विचारों में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया.. फल यह हुआ कि पार्लियामेंट को स्पष्ट शब्दों में यह प्रकट करना पड़ा कि भारतवर्ष को धीरे धीरे स्वायत्त शासन या उत्तरदायित्वपूर्ण शासनाधिकार दिया जायगा, और उसका प्रथमांश दे डालने का प्रबंध भी शीघ्र ही किया जायगा।”⁴ यह टिप्पणी दिखाती है कि ‘सरस्वती’ उस समय की नरमदलीय राजनीति से प्रभावित थी, जो यह मानती थी कि युद्ध में सहयोग के बदले अंग्रेज भारतीयों को स्वशासन का इनाम दे रहे हैं। ‘सरस्वती’ ने इसका खुले दिल से स्वागत किया और ब्रिटिश सम्राट की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा: “इस कानून का नाम है गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट—अर्थात् भारत के शासन का निर्देष्टा कानून। सर्वान्त में जब यह एक्ट सम्राट

1. सरस्वती, जनवरी 1920, “राजकीय घोषणा : सम्राट जॉर्ज पंचम का आदेश”, पृष्ठ 2-3

2. सरस्वती, वही, पृष्ठ 4

3. सरस्वती, वही, पृष्ठ 6

पञ्चम जार्ज के सामने पेश किया गया तब उन्होंने भी अपनी मंजूरी दे दी। मंजूरी ही नहीं, सम्राट् ने एक घोषणा भी की। इसके प्रति वाक्य से सम्राट् की उदारता, कृपा, सदाशयता और सहानुभूति प्रकट होती है। आपने यह कानून पास करके भारत में एक नये युग की अवतारणा सी की है। अपने हृदयौदार्य की गुरुता प्रकट करने के लिए आपने साथ ही साथ यह भी आज्ञा दी है कि सारे राजनैतिक कैदी, इस खुशी में, छोड़ दिये जायें। देश-रक्षा के निमित्त अल्प काल के लिए जारी किए गए अन्य कानूनों के पेंच में पड़कर जो लोग कैद किये गये हैं या नज़र-बंद हैं वे भी छोड़ दिये जायें। साथ ही आपने भारत के स्वदेशी नरेशों का भी एक महामण्डल सङ्गठित करने का आदेश दे दिया है।”⁵

इस एक्ट से भारतीय जनता को वास्तव में क्या अधिकार मिले, इसका एक विस्तृत तथ्यात्मक विवेचन भी ‘सरस्वती’ में प्रकाशित हुआ था। टिप्पणी की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं: “नये पास हुए गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट के अनुसार शासन कार्य अगले वर्ष, 1921 की जनवरी से, होगा। कौंसिलों के मेम्बरों का चुनाव इसी साल हो जायगा। लेजिस्लेटिव असेंबली अर्थात् बड़े लाट के कानूनी कौंसिल में 140 मेम्बर रहेंगे। उनमें से 100 मेम्बर जन-समुदाय के नेताओं से चुने जायेंगे। मतलब यह कि उसमें प्रजापक्ष के मेम्बरों की संख्या अधिक रहेगी। फलतः वे लोग प्रजा के हित के कानून बहुमत के बल पर, ‘पास’ करा सकेंगे... दस वर्ष बाद फिर जाँच की जायगी। तब तुम्हारी योग्यता सिद्ध होने पर अधिकारवृद्धि कर दी जायगी।... यदि तुमने दिये हुए काम को सँभाल लिया तो किसी दिन तुम्हारे देश के शासन का सर्वाधिकार भी तुम्हें मिल जायगा। पर जल-स्थल की सेना और विदेशों से संबंध रखने की शक्ति पारलियामेंट अपने ही हाथ में रखेगी। सो ठीक ही है। जो कुछ-पापूर्वक दिया जा रहा है वह क्या कम है। यह सब दाता की उदारता पर अवलम्बित है।”⁶ इस टिप्पणी को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि ‘सरस्वती’ के संपादक मंडल की दृष्टि तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की नीति के प्रति काफी उदार थी। जो भी मामूली अधिकार प्राप्त हुए थे, वह किसी साम्राज्यवादी शासक की कृपा नहीं बल्कि भारतीय जनता के निरंतर संघर्षों और राजनीतिक चेतना के दबाव का प्रतिफल था।

जालियाँवाला बाग हत्याकांड और हंटर कमिटी का पर्दाफाश

जनवरी, 1920 की ‘सरस्वती’ में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण टिप्पणी प्रकाशित हुई थी, जो जालियाँवाला बाग हत्याकांड की जाँच से संबंधित थी। यह लोमहर्षक हत्याकांड पंजाब प्रांत के अमृतसर में 13 अप्रैल, 1919 को हुआ था। जब पूरे देश में इसका तीखा विरोध हुआ, तो विवश होकर ब्रिटिश सरकार ने लॉर्ड हंटर की अध्यक्षता में एक जाँच

4. सरस्वती, जनवरी 1920, “विविध विषय : 1, शासनाधिकार-विषयक दान का प्रथमांश”, पृष्ठ 45

5. सरस्वती, वही, पृष्ठ 46

6. सरस्वती, जनवरी 1920, “विविध विषय रु 2, प्राप्त हुए शासनाधिकारों का स्थूल रूप”, पृष्ठ 46-47

कमिटी का गठन किया। इस कमिटी में तीन हिंदुस्तानी सदस्य भी शामिल किए गए थे। लेकिन वास्तविकता यह थी कि यह जाँच ब्रिटिश न्याय-प्रणाली का महज एक दिखावा थी, जिसका मुख्य उद्देश्य न्याय देना नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी अपराधों पर वैधानिक पर्दा डालना था।

‘सरस्वती’ ने हंटर कमिटी की कार्यप्रणाली और उसकी निष्पक्षता पर बहुत ही सधे हुए, लेकिन तीखे शब्दों में सवाल उठाए। पत्रिका ने पूरी स्थिति का खाका खींचते हुए लिखा कि “पंजाब में, गत एप्रिल में, जो दड़गे हुए थे उनकी जाँच के लिए एक कमिटी बनाई गई है। विलायत के लार्ड हंटर इस कमिटी के सभापति हैं। उनके सिवा कई सरकारी और कई गैर-सरकारी सज्जन इस कमिटी के मेम्बर हैं। गैरसरकारी मेम्बरों में तीन मेम्बर हिंदुस्तानी भी हैं- सर सेतलवाड़, साहबजादा सुलतान अहमद और माननीय पण्डित जगतनारायण... लाहौर में प्रजा-पक्ष के दो-चार लोगों को छोड़कर और किसी ने गवाही नहीं दी। बात यह हुई कि, 25 दिसंबर के पहले, प्रजापक्ष के जो मुखिया जेल में अपने दिन काट रहे थे उन्हें सरकार ने छोड़ना मंजूर नहीं किया... परिणाम यह हुआ कि सरकार ने अपनी तरफ से जिन लोगों को पेश किया, हंटर कमिटी ने उन्हीं की गवाही ली। मतलब यह कि प्रजा ने जिस अधिकारि-वर्ग पर यह इलजाम लगाया है कि उपद्रव शांति के लिए इसने ज़ियादती की उसीके पक्ष की गवाहियाँ हुईं, प्रजापक्ष की नहीं। मुलजिमों ने तो अपने बयान दिए, इलजाम लगानेवालों ने नहीं। ऐसी दशा में यथार्थ बात का पता लगा लेना कितना कठिन होता है, यह बताने की ज़रूरत नहीं। ऐसी एकपक्षीय गवाही लेने में हंटर-कमिटी के हिंदुस्तानी मेम्बरों को बहुत असुविधा हुई...गवर्नमेंट के कुछ फौजी और मुल्की अधिकारियों ने सरल-हृदय होकर सीधे तौर पर गवाही न दी। किसी किसी ने तो हिंदुस्तानी मेम्बरों के प्रश्नों का उत्तर देने में अवज्ञा के भाव भी व्यक्त किए।”

इस विस्तृत और तार्किक विवरण को देखने से स्पष्ट होता है कि ‘सरस्वती’ अंग्रेजी न्याय व्यवस्था के इस पाखंड को भली-भाँति समझ रही थी और उसे पूरी तरह बेनकाब कर रही थी। पत्रिका ने यह सिद्ध कर दिया कि जहाँ मुजरिम ही गवाह बन जाएँ और पीड़ितों को गवाही देने से रोक दिया जाए, वहाँ न्याय की उम्मीद करना बेमानी है। ‘सरस्वती’ ने उस औपनिवेशिक छद्म को तोड़ा जिसके तहत अंग्रेज खुद को दुनिया में ‘कानून के राज’ का रक्षक बताते थे।

हिंदुस्तानी सदस्यों के सवालों का जवाब देते समय अंग्रेज अधिकारियों ने ‘अवज्ञा के भाव’ (अपमानजनक रवैया) दिखाए। ‘सरस्वती’ ने इस बात का विशेष उल्लेख किया है। यह अंग्रेजों के नस्लीय अहंकार का सीधा सबूत था। वे किसी भी भारतीय को अपने बराबर नहीं समझते थे। उन्हें यह भी बर्दाश्त नहीं था कि कोई भारतीय उनसे सवाल पूछे। उस समय प्रेस पर बहुत कड़े कानून लागू थे। सरकार की सीधी आलोचना करने पर पत्रिका बंद हो सकती थी। संपादक को जेल जाने का

7. सरस्वती, जनवरी 1920, “विविध विषय: 7, हंटर कमिटी”, पृष्ठ 50-51

पक्का खतरा था। ऐसे में 'सरस्वती' ने केवल भावुकता या नारेबाजी से काम नहीं लिया। पत्रिका ने अपनी बात कहने के लिए ठोस तथ्यों का सहारा लिया। उसने कोई भी राजद्रोही शब्द इस्तेमाल नहीं किया। पत्रिका ने केवल जाँच की कमियों को जनता के सामने रखा। इस तरह उसने हंटर कमिटी को न्याय के नाम पर एक 'दिखावा' साबित कर दिया। इससे साफ पता चलता है कि 'सरस्वती' चुपचाप तमाशा देखने वाली पत्रिका नहीं थी। वह सरकारी दमन और मनमानी का डटकर सामना कर रही थी। पत्रिका ने अपने तर्कों से अंग्रेजी न्याय के दोहरेपन का पूरी तरह पर्दाफाश कर दिया।

असहयोग आंदोलन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य और 'सरस्वती' की कूटनीति

1920 के दशक की शुरुआत भारत में 'असहयोग आंदोलन' के साथ हुई। 1 अगस्त 1920 को शुरू हुए इस आंदोलन को कांग्रेस ने कलकत्ता और नागपुर अधिवेशन में आधिकारिक स्वीकृति दी। 5 फरवरी 1922 को चौरी-चौरा की घटना के बाद गांधी जी ने इसे वापस ले लिया था। उस समय 'प्रभा', 'प्रताप' और 'चाँद' जैसी पत्रिकाओं में असहयोग आंदोलन की खबरें छाई रहती थीं। लेकिन 'सरस्वती' जैसी शीर्ष पत्रिका में इस बड़े जनांदोलन की सीधी राजनीतिक खबरें न के बराबर मिलती हैं। यह बात शोध की दृष्टि से थोड़ा हैरान करती है। ऐसा क्यों था? इसका मुख्य कारण पत्रिका का मूल चरित्र और तत्कालीन परिस्थितियाँ थीं। 'सरस्वती' मुख्य रूप से एक साहित्यिक और सांस्कृतिक पत्रिका थी। उस समय अंग्रेजी सरकार के प्रेस कानून बहुत कठोर थे। सीधी राजनीतिक बयानबाजी या सरकार का खुला विरोध करने पर पत्रिका के जब्त होने या बंद होने का पूरा खतरा था। 'सरस्वती' का प्रबंधन अपनी स्थापित गरिमा और अस्तित्व को खतरे में नहीं डालना चाहता था। लेकिन इसका अर्थ यह बिलकुल नहीं है कि 'सरस्वती' राष्ट्रीय आंदोलन से कट गई थी या वह अंग्रेजों के पक्ष में थी। सीधे राजनीतिक टकराव से बचते हुए भी उसने जन-जागृति का एक कूटनीतिक रास्ता निकाला। पत्रिका ने तत्कालीन बौद्धिक चेतना को जगाने के लिए असहयोग आंदोलन से प्रेरित साहित्य को खूब बढ़ावा दिया। पत्रिका के 'पुस्तक परिचय' स्तंभ में ऐसी पुस्तकों को 'राष्ट्रीय साहित्य' का दर्जा दिया गया। यह पत्रिका का मूक लेकिन बहुत मजबूत राजनीतिक समर्थन था। संपादक ने इस दिशा में स्पष्ट रूप से लिखा: "असहयोग आन्दोलन की बदौलत इस समय राष्ट्रीय-साहित्य की खासी सृष्टि हो रही है... इस प्रकार की जो नई पुस्तकें हाल में प्रकाशित हुई हैं... उनके नाम हैं. 1. 'सत्याग्रह और असहयोग' जिसके लेखक आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत पण्डित चतुरसेनजी शास्त्री हैं, 2. 'गांधी दर्शन' जिसके लेखक श्रीयुत चंद्रराज भण्डारी 'विशारद' हैं, 3. 'सप्तर्षि'... 4. 'देशबंधु चितरंजन दास'... 5. 'पंजाब की वेदना'... 6. 'राष्ट्रीय संदेश'... 7. 'बाबू अरविंद घोष के पत्र'..."⁸

इन पुस्तकों के नामों से ही पता चलता है कि देश में कैसा वैचारिक उबाल था।

एक साहित्यिक पत्रिका होने के नाते 'सरस्वती' ने इन पुस्तकों की समीक्षा छापकर पाठकों को परोक्ष रूप से एक बड़ा राजनीतिक संदेश दिया। पत्रिका ने यह स्पष्ट कर दिया कि सीधी राजनीति में उतरे बिना भी, देश की जनता को इन राष्ट्रीय विषयों को पढ़ना और समझना चाहिए।

प्रथम विश्व युद्ध, वर्साय की संधि और विश्व शांति की चिंता

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति को ज्यादा दिन नहीं बीते थे। 28 जून, 1919 को वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर के साथ यह महायुद्ध आधिकारिक रूप से समाप्त हो गया था। इस संधि ने युद्ध के विनाश का पूरा दोष एकतरफा रूप से जर्मनी पर मढ़ दिया। कहने को तो यह शांति स्थापना का प्रयास था, लेकिन मित्र राष्ट्रों (ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रांस, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली इत्यादि) ने अपनी सेनाओं में कोई खास कमी नहीं की। 'सरस्वती' ने विजेता राष्ट्रों के इस पाखंड को तुरंत पहचान लिया। पत्रिका ने एक टिप्पणी में मित्र राष्ट्रों की इस सैन्य विषमता को विश्व शांति के लिए बड़ा खतरा बताया: "गत महायुद्ध से यूरोप का अंजर पंजर ढीला हो गया है। युद्ध के कारण जो भयंकर कष्ट संसार को भोगने पड़े हैं उनसे योरप तबाह हो गया... इसमें फ्रांस और उसके मित्रों के पास ही अकेले 23,00,000 जवान हैं... इधर शत्रु-दल की सेनायें तोड़ दी गई हैं। जर्मनी में 1,00,000, ऑस्ट्रिया में 30,000... निस्संदेह समर-सज्जा का यह वैषम्य संसार की शांति का विघातक है। इससे इस बात की कदापि आशा नहीं की जा सकती कि संसार का भविष्य शांतिमय है।"⁹

इस विश्लेषण से साफ है कि 'सरस्वती' जीतने वाले देशों की असलियत समझ गई थी। पत्रिका ने निडर होकर यह सच्चाई सामने रखी कि जिसके पास हथियार हैं, असल में वही शांति का सबसे बड़ा दुश्मन है। युद्ध के दौरान आम जनता को यह आस बंधाई गई थी कि इसके बाद विश्व में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की स्थापना होगी। लेकिन 'सरस्वती' ने पश्चिमी देशों के इस झूठे आख्यान को पूरी तरह खारिज कर दिया। पत्रिका में हर्षदेव ओली का एक विस्तृत लेख छपा, जो विश्व शांति के खोखले दावों की कड़ी आलोचना करता है। वे लिखते हैं: "गत योरोपीय महासमर के प्रारंभ में सर्व-साधारण को यह विश्वास दिलाया गया था कि यह युद्ध केवल पार्थिव प्रभुता से उन्मत्त जर्मनी का मान-मर्दन करने के लिए है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के पश्चात् समस्त संसार में सुख और शांति की स्थापना होगी... किन्तु संसार की स्थिति अशांति-रूप है। साम्राज्यवादी योरप अभी इसी चिन्ता में निरत है कि किस प्रकार राज्य-विस्तार किया जा सकता है... स्वाधीनता का उपासक अमेरिका भी इस विषय में मौन है।"¹⁰

8. सरस्वती, मार्च 1922, "पुस्तक परिचय: 2, राष्ट्रीय साहित्य", पृष्ठ 231

9. सरस्वती, अक्टूबर 1921, "विविध विषय: 4, भविष्य शांति का भव्य रूप", पृष्ठ 251-252

‘सरस्वती’ स्पष्ट कर रही थी कि युद्ध साम्राज्यवाद को खत्म करने के लिए नहीं, बल्कि उसे और फैलाने के लिए लड़ा गया था। अपने आप को स्वाधीनता का रक्षक कहने वाले अमेरिका की चुप्पी पर सवाल उठाकर पत्रिका ने यह साबित किया कि पश्चिमी कूटनीति में नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। ‘वाशिंगटन कॉन्फ्रेंस’ और ‘लीग ऑफ नेशंस’ जैसी संस्थाएँ भी शस्त्रीकरण की होड़ को रोक न सकीं। ओली जी आगे लिखते हैं: “मालूम होता है कि युद्ध-पिपासा अभी तक तृप्त नहीं हुई है। युद्धान्त में वर्सलीज़ में संधि की पंचायत बैठी... सब राष्ट्रों के नेता वाशिङ्गटन कान्फरेन्स में उपस्थित हुए... यहाँ विशेषकर अल्पशस्त्रीकरण परिषद् हुई थी। इस परिषद् में शस्त्र और सेनाओं को न्यून करना तो अलग रहा, जापान, इंग्लैंड और अमेरिका एक दूसरे से सामरिक शक्ति में प्रतिद्वन्द्विता करने लगे... इन सब बातों से शांति न फैल सकी।”¹¹ शांति सम्मेलनों की आड़ में चल रही हथियारों की इस होड़ को बेनकाब करके, ‘सरस्वती’ ने पश्चिमी कूटनीति के दोहरे चरित्र पर सीधा प्रहार किया।

इस पूरी स्थिति का सटीक सार प्रस्तुत करते हुए पत्रिका लिखती है: “सारांश यह है कि अभी तक किसी के हृदय में शांति नहीं है। युद्ध के भय से प्रत्येक राष्ट्र अपनी रक्षा के लिए चिन्तित हो रहा है... कोई भी राष्ट्र संसार के हित के लिए अपनी आहुति देने को उद्यत नहीं है। इंग्लैंड में सर्वत्र साम्राज्यवाद की प्रधानता है... संसार की वर्तमान स्थिति देखते यही प्रतीत होता है कि जब तक कोई विशेष परिवर्तन संसार की वर्तमान शासन-प्रणाली में न होगा तब तक अशांति दूर होने की नहीं।”¹² इन लेखों के माध्यम से ‘सरस्वती’ यह स्थापित कर रही थी कि शांति केवल कागजी संधियों या सम्मेलनों से नहीं आती। इसके लिए राष्ट्रों की नीयत का साफ होना और साम्राज्यवादी लालच को छोड़ना सबसे अधिक आवश्यक है। ‘सरस्वती’ ने अपने पाठकों को परोक्ष रूप से यह संदेश दिया कि जो इंग्लैंड पूरी दुनिया में साम्राज्यवाद फैला रहा है, उससे भारत में न्याय की उम्मीद करना व्यर्थ है।

सच्ची शांति व्यवस्था के लिए विशाल सेनाओं और पुलिस की अनिवार्यता नहीं, बल्कि उच्च नागरिक सभ्यता की आवश्यकता होती है। पश्चिमी देशों के हिंसक राष्ट्रवाद के बरक्स, ‘सरस्वती’ पत्रिका भारतीय समाज को एक अलग ही आदर्श देना चाहती थी। इसका एक बहुत ही सुंदर और प्रतीकात्मक उदाहरण पत्रिका में मिलता है, जहाँ पश्चिमी यूरोप के ‘अन्डोरा’ (Andorra) नामक एक बहुत छोटे देश की चर्चा की गई है। “जब समग्र यूरोप महायुद्ध में लिप्त था तब केवल एक ही देश में शांति थी... सबसे आश्चर्य की बात यह है कि वहाँ न कोई सेना है और न पुलिस। इस देश का नाम है अन्डोरा। यह पूर्विय पेरीनीज़ में बसा है। यहाँ लोक-तन्त्र-शासन की

10. सरस्वती, सितंबर 1922, “संसार चक्र”, हर्षदेव ओली, पृष्ठ 170

11. सरस्वती, वही, पृष्ठ 170-171

12. सरस्वती, वही, पृष्ठ 173

व्यवस्था है... यहाँ के सभी बच्चे प्रसन्न-वदन रहते हैं। रोता हुआ कोई भी बच्चा नहीं देखा जाता... प्रतिवर्ष ये रांस को 40 पौंड देते हैं...पर हैं ये स्वतंत्र। युद्ध से इन्हें बड़ी घृणा है।”¹³ अन्डोरा जैसे एक अत्यंत छोटे और शक्तिहीन देश का उदाहरण देना कोई सामान्य बात नहीं थी। ‘सरस्वती’ के संपादक वास्तव में इसके जरिये पूरी दुनिया, और विशेषकर भारत को एक बहुत गहरा राजनीतिक संदेश दे रहे थे। पत्रिका यह स्थापित कर रही थी कि ‘सभ्य’ होने का पैमाना बड़ी सेनाएँ नहीं, बल्कि शांति और लोकतंत्र हैं। उस हिंसक दौर में यह विचार सीधे तौर पर गांधीवादी ‘अहिंसा’ और ‘स्वराज्य’ का एक मजबूत बौद्धिक समर्थन था।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि 1920 के उथल-पुथल भरे दशक में ‘सरस्वती’ केवल साहित्य और भाषा के परिष्कार तक सीमित नहीं थी। इस पत्रिका ने तत्कालीन राजनीतिक घटनाक्रम—चाहे वह गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट का खोखलापन हो, जालियाँवाला बाग हत्याकांड के बाद हंटर कमिटी का पाखंड हो, असहयोग आंदोलन का परोक्ष राजनीतिक समर्थन हो, या प्रथम विश्व युद्ध के बाद विश्व शांति और साम्राज्यवाद का प्रश्न हो—सभी पर अपनी बेबाक और विश्लेषणात्मक दृष्टि रखी। अंग्रेजी प्रेस कानूनों के कठोर प्रतिबंधों के बावजूद, पत्रिका ने बड़ी कूटनीति से काम लिया। ‘सरस्वती’ ने राजनीतिक घटनाओं का केवल समाचार नहीं दिया, बल्कि उनके पीछे छिपे साम्राज्यवादी मंतव्यों का तार्किक पर्दाफाश किया। निष्कर्षतः हम यह दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि 1920 के दशक में भारतीय जनमानस के भीतर राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय स्वाभिमान की निर्मिति करने में ‘सरस्वती’ पत्रिका की एक ऐतिहासिक और अत्यंत प्रमुख भूमिका रही है।



संपर्क

रवि रंजन पाण्डेय— सहायक आचार्य (हिंदी), हरद्वारी लाल गोयल राजकीय महाविद्यालय, तावडू, हरियाणा, 122105, मो.—7541934670, ई—मेल: imravihindi@gmail.com

13. सरस्वती, दिसंबर 1921, “चारु चयन : 3, सबसे छोटा प्रजासत्ताक राज्य”, द्विजेंद्र, पृष्ठ 375–376

बज्जिका भाषा के साहित्य में राष्ट्रीय-चेतना

विनोद कुमार सिन्हा*

विश्व में प्रथम गणराज्य बज्जि-संघ था जो ईसा वर्ष से 725 वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। महान विद्वान डॉ. राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है— “बज्जि देश का शासक क्षत्रिय जाति का था जिसका नाम लिच्छवि था। जैन ग्रंथों से मालूम होता है कि उसकी नौ उपजातियाँ थीं। उन्हीं में से एक भेद ज्ञात जाति का था जिसमें पैदा होने के कारण जैन धर्म के प्रवर्तक वर्धमान (महावीर) को नात पुत्र या ज्ञातपुत्र कहा गया। पाणिनी ने भी भद्र बृज्योः कन (अष्टा. 4/2/3) सूत्र में इस बज्जी को बृज्जी कहकर संबोधित किया है। बुद्ध के समय बज्जी गणराज्य उत्तर भारत की पाँच प्रधान राज शक्तियों जैसे अवंती, वत्स, कोसल, मगध, बज्जि में एक था। (पुस्तक, ‘पुरातत्त्व बिंधावली, लेखक— राहुल सांकृत्यायन, पृ. 10)

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी उपरोक्त पुस्तक की पृष्ठ संख्या 241 पर लिखा है कि बज्जी संघ की भाषा बज्जिका थी। बज्जिका बज्जी संघ की लोकभाषा और राजभाषा भी थी। बज्जिका एक जीवंत भाषा है जो बिहार के वर्तमान जिले वैशाली, हाजीपुर, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, शिवहर से लेकर नेपाल के तराई क्षेत्र तक बोली जाती है। बज्जिका का साहित्य भी बहुत समृद्ध है। इसका अपना इतिहास, व्याकरण और शब्दकोश भी है। दर्जनों लोग इस भाषा में शोध कर चुके हैं।

वर्ष 1998 में एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी— ‘बज्जिकार्पण’। यह बज्जिका साहित्य की विभिन्न विधाओं का संग्रह है जिसके संपादक थे स्मृतिशेष रामचन्द्र विद्रोही। इसमें श्री अवध किशोर सिंह का एक लेख है— ‘भारतीय एकता’। इसमें लेखक ने लिखा है— *भारत के एकता आउर विविधता— ई दूनू महत्त्वपूर्ण हुए। विविधता से देश सम्पन्न होइअ, तरक्की करइअ आरउ आगे बढ़इअ। एकता से देश मजबूत होइअ, ताकतवर बनइअ आउर अखंड रहइअ।*

इसमें निबंधकार ने राष्ट्रीय एकता और अखंडता पर ध्यान आकृष्ट किया है। सीतामढ़ी जिले के एक स्मृतिशेष उमाशंकर लोहिया की भी एक कविता इस पुस्तक में है। लोहिया बापू को याद करते हैं और अनुत्तरित प्रश्न उनके जेहन में आ जाता है—

* वरिष्ठ निबंधकार, कहानीकार, समीक्षक एवं कवि। तीन सौ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। कई पुरस्कारों और सम्मानों से सम्मानित।

बापू! जब-जब तोहर याद अबइअ
स्मृति के आईना में झलकइअ
तब केतना प्रश्न अनुत्तरित छोर जाइअ।
सोचे के मजबूर करइअ!

श्री हरिनारायण सिंह तो देश को सांप्रदायिकता की आग में जलने से दुखी हैं।
उन दिनों पंजाब भी जल रहा था और अयोध्या के 'राम' कचहरी के फाइलों में बंद थे—

की भेलई ई देस के, ई देश धू-धू जल रहल हए
कश्मीर आतंक में हए/पंजाब के मत बात पूछअ।
हए अयोध्या में विकट/संग्राम सीताराम सोचऽ।

आजादी के बाद कांग्रेसी राज में जनता के लाभार्थ कितनी योजनाएँ बनीं वह
शत-प्रतिशत जनता तक और अंतिम उपेक्षित व्यक्ति तक नहीं पहुँचीं तथा घोटालों
का उदय हो गया। तब संपादक विद्रोही का कवि मन कहता है—

घोटाला-पशुपालन, आउर अलकतरा,
हवाला पर सोचू तनका, केकरा से खतरा?

उन दिनों विद्रोही जी जनता से प्रार्थना करते हैं कि इस सरकार को बदल दें—
अब हिनको निकालू/कहइअ विद्रोही— लाउ ईमानदार हो।
अब करे न केहू घोटाला/करू देश के विकास हो।

बज्जिका के एक आध्यात्मिक और चिंतक साहित्यकार हैं गणेश प्रसाद 'सारंग'।
वे इन दिनों शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ हैं। इन्होंने सन् 2015 में एक
पुस्तक प्रकाशित करवाई थी— 'बज्जिका-अंगना'। इन्होंने अपनी पुस्तक में जिक्र
किया था कि राष्ट्रीय आंदोलन में बज्जिका भाषी महिलाओं का भी अमूल्य योगदान
था। उन्होंने अपनी पुस्तक में सीतामढ़ी जिलांतर्गत बाजपट्टी प्रखंड के हुँमायुपुर ग्राम
की चंपा रानी के विषय में लिखा है। इनका जन्म 03 दिसंबर 1867 में हुआ था। इन्होंने
बज्जिका में दो पुस्तकें प्रकाशित करवाई— (1) भजनवाली और (2) भारत माए के
पुकार।

'गीता' में भगवान कृष्ण ने कहा था—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मं संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥"

धर्म की हानि होने पर धर्म के उत्थान के लिए साधुओं की रक्षा एवं दुष्टों के
विनाश के लिए भगवान का अवतार होता है।

श्रीकृष्ण ने द्वापर में ये बातें कही थीं। चंपा रानी कलियुग में चांडाल अंग्रेजों को
कंस की संज्ञा देते हुए भगवान कृष्ण से पूछती हैं—

हे माधव! फेनू कब लेबई भारत में औतार।
अंग्रेज कंस के कहिड़ा करबई संहार॥
एक बेर फेनू महाभारत इहाँ मचावऽ आके।
एक बेर फेनू महाभारत इहाँ मचावऽ आके॥

अब कहिया तू करबहू भारत माता के उद्धार॥ ('भारत माता के पुकार' से)
पराधीन भारत, में चंपारानी फिर भारत माता की तुलना दुर्गामाता से करती हैं—

मइआ के सरूप के बखान हम कथी करु?
दुनिया जहान में न कोनो एहन नारी हए॥
चालिस करोड़ बेटा-बेटी चले आगू-पीछू॥
उत्तर शोभेला हिमाला के मुकुट चम-चम।
दखिन में दिव्य सिंघ कनिया कुमारी हए॥
पछिम में अरब समुन्दर लहर मारे।

पूरब में अँचरा तऽ बंगाल के खाड़ी हए।

अंग्रेजों ने चंपारानी पर गिरफ्तारी का वारंट निकाल दिया। चंपारानी गिरफ्तार नहीं हो सकी, नेपाल भाग गई। उनकी पुस्तकें जला दी गईं। दो प्रतियाँ बच गईं— उन्होंने एक प्रति सीतामढ़ी जिला के सनातन पुस्तकालय में दी थी और एक प्रति सीतामढ़ी जिला के ही दुःखहरण पुस्तकालय बेलाही नीलकंठ में दी थी। आजादी मिलने के तुरंत बाद चंपा रानी का निधन 5 अप्रैल 1948 को हो गया। लगता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए ही उनका प्राण अटका हुआ था।

स्वतंत्रता आंदोलन में हजारों स्वतंत्रता सेनानियों की मृत्यु हुई, गिरफ्तारी हुई। अंततोगत्वा 15 अगस्त 1947 को देश को आजादी मिली। परंतु वह खंडित भारत की आजादी दी। इस विखंडित आजादी का दर्द गणेश प्रसाद 'सारंग' की कविता में देखें—

एगो माए के दू गो बेटा जब,
अलग-अलग खिचड़ी पकावे तब।
के जानत माए के दिन के दरद
तब दरद में बीते गरमी-शरद॥

आजादी के बाद जब पाकिस्तान ने अपने आतंकवादियों को भेजकर भारत में अशांति फैलाना प्रारंभ किया तब कवि गणेश प्रसाद 'सारंग' कहते हैं—

हिंद के को लागी पाललक,
सब दिन जहर वाला साँप हाँकलक।
उत्पात रहे, छोटका भाई के,
सहे के पड़े बड़का भाई के।

कोनो बहाना लेके घुसे,
बड़का के दुख देख के हँसे।

जब महाकवि अटल बिहारी वाजपेयी जी प्रधानमंत्री थे तब उन्होंने भारत-पाक
मित्रता हेतु भी पहल की थी, तब सारंग जी ने लिखा—

अगर शुद्ध विचार पाक के हए।
भारत मदद के तइआर हए।
भारत अपन चैन के देश हए।

दुनिया से भारत के जय-जय हए॥

बज्जिका की सभी विधाओं के विद्वान डॉ. शारदाचरण, जिन्हें लोग 'बज्जिका
पाणिनी' भी कहते हैं, ने 2020 में एक पुस्तक लिखी— 'आखर-पाती'। यह एक
काव्य-संग्रह है। डॉ. शारदाचरण ने पाकिस्तान को चेतावनी दी है—

हिमालय पर फहरइअ, सरहद पर गरजइअ।
लहरइअ हरदम समुंदर के उप्पर॥
अब केहू हमरा के आँखिया देखएतन।
धरब आँख लेकर तरहत्थी पर ओक्कर॥
कि दुनिया में भारत हए सबसे पवित्तर।

देश के भ्रष्टाचार एवं वंशवाद को लेकर कविवर डॉ. शारदाचरण को चिंता है—
गठरी सभ्हे साथ रहल हए। केक्कर केक्कर बात कहू हम॥
वंशवाद के चलन चलइअ। केक्कर केक्कर लात सहू हम॥
वीर भगत सिंह याद अबइअ। दिन में उल्लू गीत गअइअ॥

चंपारानी की तरह कविवर डॉ. शारदाचरण जी भी भगवान के अवतार की प्रतीक्षा
में हैं—

खटमल अइसन खून चूसइअ।
नेता, अफसर, पेंढिआ॥
एतना पाप बढ़ल दुनिया में,
अब तू अएबऽ कहिया?

कवि डॉ. शारदाचरण तीसरी आजादी का सपना देखते हैं। उनका कहना है कि
पहली आजादी कांग्रेसों ने दिलाई, द्वितीय आजादी लोकनायक जय प्रकाश नारायण
जी ने दिलाई अब तीसरी आजादी प्रधानमंत्री मोदी जी दिलाएँगे—

राम-रहीम, धरम करम सब राष्ट्रबोध हए
सभ्हे लोक विकास, आस मोदी के होइअ।

फिर वे मोदी जी का आह्वान करते हैं—

तेसर आजादी के परचम

आबऽ-लहरा दऽ।

जगमग-जगमग चलऽ,

जला दऽ साहस के दीअरा॥

त्रेता युग में भगवान राम हुए। कई भाषाओं में रामायण की रचना हुई— संस्कृत में 'वाल्मीकि रामायण', तमिल में 'कंब रामायण' हिंदी में 'रामचरितमानस' आदि।

बज्जिका में सर्वप्रथम 1857 ईस्वी में 'बज्जिका रामायण' की रचना हुई। फिर अवध बिहारी जी का 'गीत रामायण' और दिनेश्वर प्रसाद 'दिनेश' का 'बरबे रामायण' आया। 2021 में बज्जिका के महान लेखक, कवि एवं गजलकार ज्वाला सांध्यपुष्प ने 'लोक रामायण' की रचना की। इस रामायण में राष्ट्रीय चेतना को उजागर किया गया है। भगवान राम को अगर बनवास नहीं होता, तब वे मात्र अवध के राजा बनकर रह जाते। परंतु ज्वाला सांध्यपुष्प को संपूर्ण जंबू द्वीप की सुरक्षा की चिंता है—

जब द्वीप रहे अखंडित, ई विचार हए हमर सबके।

सुरक्षा हरदम करबे करम, ब्रह्मा के ई रचना के॥

इनके राम राष्ट्रभक्ति में डूबकर चिंतित है—

सीमा पार से शत्रु घुसइअ रात बेरात ससरके।

हारि करे जेन्ना गिददर, खाइअ बाल भम्होरके॥

'रामचरितमानस' में भगवान राम ने माता कैकेयी को कहा था कि माता आपको तो अपयश होगा परंतु आप मुझे अयोध्या के राजा बनने से रोकेंगी और बन जाने का कार्यक्रम बना देंगी जिससे मैं राक्षसों का संहार कर सकूँ। ज्वाला सांध्यपुष्प के राम यही बात माता कैकेयी को पत्र लिखकर कहते हैं— क्योंकि राम जानते हैं कि माता कैकेयी परम देशभक्त हैं—

अइसन नारी कैकेयी, देशभक्त अवतार।

देश धरम हित में सदा, बिस पिएला तइआर।

अतः भगवान राम ने पत्र लिखकर कैकेयी को ऐसा प्रभावित किया कि राम मात्र अयोध्या के राजा न बनकर, संपूर्ण राष्ट्र की सुरक्षा करें—

मुदा बतएली रही हुनका चिट्ठी में सब खोल के।

तगइली फेरु राष्ट्रभक्ति हुनका में न बोल के॥

ज्वाला सांध्यपुष्प एक गजलकार भी हैं। पाकिस्तान द्वारा कश्मीर में बराबर आतंकवाद से चिंतित हैं और उसे चेतावनी देते हैं—

नुका के अन्हरिए रोजे फाँफूकारे ऊ,

बेरा बेरी पिटा के कहिया से चोटाएल हए।

हिए से टैंक से हम बम देबई बोला।

ऊ गरदन तोरबा के पहिले डेराएल हए।

सीमा पर जुटकऽ लागल हए दाँव ओहो।

भुलाएम हम न कहियो जे सब हेरायल हए॥

बज्जिका के एक प्रमुख विद्वान कवि स्मृतिशेष शंभु अगेही थे जिन्हें 'बज्जिका का विद्यापति' भी कहा गया है। 1996 ई. उनकी एक कविता आई थी— 'उगलन दिनमान'। हजारों बलिदान और यातना सहने के बाद जब हमें मिली तो उन्होंने लिखा—

जाने केतना जौवन चल गेल, तब उगलन दिनमान।

आजादी के आकाश कुसुम हए पौरुस के परमान॥

के-के बहएलन लेहू केतना के भेल बलिदान।

छोट भेल इतिहास के पन्ना, जाने सब भगवान।

केतना माँग सेनुर उजरल, केतना गोद भेल खाली।

आजादी के पागल प्रेमी, भेलन केतना कुर्बान।

काला पानी, जेहल खाना बनल हुनकर मयखाना।

मृत्यु-सुंदरी के अपना के, चटपट भेलन स्वर्ग रवाना।

थमा गेलन हमरा तिरंगा, कहलन रखिहऽ मान,

दे देलन तन-मन-धन जीवन कुचलन मोह अरमान॥

बज्जिका के एक प्रसिद्ध साहित्यकार थे— रत्नानंद झा छोटन। उनकी एक पुस्तक है— 'मधुबास'। इसमें उन्होंने देशभक्ति के जुनून के विषय में लिखा है—

अप्पन माटी अप्पन घाटी। चौड़ा रखिह एकरा ला घाटी॥

दुश्मन के मुँह पर तू मारिह। थप्पड़ चोट चहेट नमन कर॥

जात धरम के फेर न परिह। पुरखा के मत मोँछ मचोरिहऽ।

बुद्ध-महावीर गाँधी बाबा के; न तू पहुँचइहऽ ठेस मानकर।

अपन भारत देश नमन कर॥ —(मधुबास, पृ. 74)

भारत प्राचीन काल में विश्वगुरु था— आज फिर भारत गुरु बन जाए— इसकी कल्पना भी 'छोटन' जी करते हैं—

आबऽ संकल्प करी हम सऽ, भारत बन जाए जगत गुरु।— (ओम शांति, पृ. 29)

स्मृतिशेष अमरनाथ मेहरोत्रा हिंदी और बज्जिका के जाने-पहचाने कवि थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'गीत गाँओ बनजारा' में कारगिल-युद्ध में भारतीय सैनिकों की शहादत की प्रशंसा की है—

जुआन के परान के बलिदान। एगो आदर्श उदाहरन हए।

देश के सउँसे धन, सोना, चानी, के तउलल जाए तबहिओ

हुनकर परतल न हो सकईअ।

कवि हरिनारायण सिंह 'हरि' की एक पुस्तक 'बिहान के बात करऽ' 2022 में छपी है। भारत आजाद है परंतु लोगों का सपना अभी पूर्ण नहीं हुआ— कवि असंतोष प्रकट करते हैं—

सोचली रऽ आजादी पाएम, भारत स्वर्ग बनाएम।
एक बेर फेनू दुनिया के असली राह देखाएम।
उप्पर—उप्पर सब कुछ बदलल, ना बदलल बुनियादी।
ई—कइसन हई स्वतंत्रता आ कइसन हई आजादी।

आजादी से पहले सभी भारतवासियों का सपना था कि हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी बनेगी— परंतु राजनीतिक प्रपंच के कारण हिंदी राजभाषा बन गई और अंग्रेजी कायम रही, तब हरिनारायण जी ने लिखा—

देसी भासा नउरी बन गेल, अंग्रेजी पटरानी।
आ हम सब अंग्रेज के वंशज, अप्पन इहे कहानी।।

बी. आर. अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर में हिंदी के पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ. राम प्रवेश सिंह ने दर्जनों रेखाचित्र लिखे हैं। राष्ट्रीय स्तर के प्रकांड विद्वानों में इनकी गिनती है। एक रेखाचित्र 'शिरमा बाबा और शहवीर मियां' में उन्होंने अपने पात्र के माध्यम से यह संदेश दिया है कि जब सम्मानित करने की बात हो तब सबसे पहले उसे सम्मानित किया जाए जिसके पिता ने अपना घर उजाड़ दिया, सर्वस्व खो दिया और स्वयं शहीद हो गए। डॉ. राम प्रवेश सिंह ने यह संदेश दिया है कि 'सेवा से शहादत बड़ी होती है'।

हमारे भारत की परंपरा रही है कि पहले भी हमारी वीरांगना पत्नी अपने पति को टीका लगाकर, आरती उतारकर सीमा की रक्षा हेतु भेजती थी। दुखित महतो भक्त राज की भारतीय नारी अपने पति को प्रेरित और प्रोत्साहित करती है—

एगो बात कहई छी हम! सुन लऽ मोर राजा।
चल जा जल्दी सीमा पर, बजहअ जहाँ बाजा।।
भाई हमर आई हुंआ पर, अप्पन करतब करइअ।
माई के लाज बचाबे में, मारइअ आ मरइअ।।
बन जा तूह वीर बहादुर।

इस प्रेरणा पर पति भी तैयार होकर कहता है—

आई हम जाइछी हे सजनी! भारत पाक सीमानमा।
घर में घुस कऽ मारम ओक्करा, लागल हई लगनमा।।

जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर के प्रधानमंत्री एवं बज्जिका के कवि श्री उदय नारायण सिंह अपने देश के जवानों को हनुमान जी की तरह अपनी शक्ति का एहसास कराते हैं—

जागु जुआन! अब भेल बिहान! अब सूतल न रहू चारद तान।

...अप्पन शक्ति के पहचानूँ, जेड़ में छपल समुन्नत ज्ञान।।

डरू न तनकों कोनों अधम से, जे अधम खड़ा होए सीना तान।

भारत का ही एक क्षेत्र बज्जि-संघ विश्व का प्रथम गणतंत्र था- इसकी याद दिलाते हुए हाजीपुर के एक कवि श्री अखौरी चन्द्रशेखर कहते हैं-

अप्पन भारत देश जे, जग में प्रजातंत्र सीखएलक।

जगली हम तब, जग-जागल, फइलल सभ्यता के आलोक।

हमरे संस्कृति के प्रकाश से, जगमग होइत गेल भूलोक।।

वैशाली के ही एक महान आंचलिक कवि मणिभूषण प्रसाद सिंह 'अकेला' जी भारत का गुणगान करते हैं-

जेकरा पूरब पश्चिम-दक्खिन, सिंधु शोभा-हार हए।

जे में हीरा, पन्ना, मोती, रतन, सऽ भरमार हए।

....जोन देश में संविधान में सबके सम अधिकार हए।

ऊ अगजग सिरमौर देश, भारत से हमरा प्यार हए।

हाजीपुर के ही जाने-माने कवि, गद्यकार एवं समाजसेवी श्री रवींद्र कुमार 'रतन' राष्ट्रीय चेतना जगाते हुए कहते हैं-

राष्ट्रीय चेतना जगाने, राष्ट्र-पटल पर अइली हऽ।

गणतंत्र के इतिहास पर, डाले ला परकास हम अइली हऽ।

बढल चरन-कमल, पुष्प भगवान बुद्ध के वैशाली गाम।

अग्यान अन्हरिया मिटे लगज, छाएल इंजोरिया चारो धाम।

मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष एवं बज्जिका के प्रख्यात विद्वान डॉ. ब्रह्मदेव प्रसाद कार्थी की एक पुस्तक 'जय जगन्नाथ' 2025 में प्रकाशित हुई थी। इस काव्य-संग्रह के पृ. 22 में इन्होंने महान भारत देश के सर्वधर्म समभाव की चर्चा की है-

हर मजहब के पीर-पैगम्बर के कयलक सम्मान।

जन्मभूमि इ मानवता के धरती के मुस्कान हय।

ई भारत देश महान हय।

आज हमारे देश भारत में 'वंदेमातरम्' का गीत पुनः जोर-शोर से ध्वनित होने लगा है। डॉ. कार्थी भी लिखते हैं-

कहिओ बार न कयलक ई अप्पन दुश्मन पर,

खता माफ सबके कयलक सौ बार बन्देमातरम्।

बन्देमातरम्।

भारत कभी किसी पर वार नहीं करता जब हमें कारगिल युद्ध के लिए मजबूर किया गया तब डॉ. कार्थी ने लिखा-

अइसन हवा बहल करगिल से जगल जोश मदर्दानी।

खउले लागल देश इ सँउसे के कयलक मनमानी।।

सर्वधर्म समभाव के विषय में राष्ट्रीय स्तर के बाल-कवि डॉ. सतीश चंद्र भगत ने भी लिखा है—

हरिअर— भरल खेत आ, हम मंदिर—महजिद गुरुद्वारा,

ऊँचा लच्छ हमरा पाबे के, अइसन हय संकल्प हमारा।।

बज्जिका में कवयित्रियों ने भी कमाल किया है। डॉ. विद्या चौधरी एक पत्रिका की भी संपादक हैं— लगभग हर दो साल पर एक पुस्तक प्रकाशित करवाती हैं। इन्होंने बज्जि राष्ट्र गौरव के संबंध में लिखा है—

भारत माँ के आँचल। बिहार के बज्जिकांचल।

खोललक सऊँसे दुनिया ला द्वार, एक्कर महिमा अपरम्पार।।

बज्जि संघ विश्व का प्रथम गणतंत्र था जो कभी पराधीन नहीं हुआ। डॉ. विद्या लिखती हैं—

न मानलक मगध के दासता, ई रहल सदा निडर स्वतंत्र,

एक्कर स्वतंत्रता के वेदी पर, नारी भी तजलक अपन द्वंद्व।

एक और कवयित्री हैं— डॉ. भावना। इनकी भी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बिहार सरकार से सम्मानित भी हो चुकी हैं। मैं इनकी कविता 'रानी लक्ष्मीबाई' की पंक्तियों से इस निबंध का समापन कर रहा हूँ। यह कविता इनकी पुस्तक 'हम्मर लेहू, तोहर देह' से उद्धृत है—

पहिला स्वतंत्रता संग्राम के/डोरी जिनका हाथ रहे।

ऊ महान स्वतंत्रता सेनानी के/लक्ष्मीबाई नाम रहे।

.... कनिया पुतरिया, दल्ला भत्ता/खेल न हुनका अबइत रहे।

घुड़सबारी, तलवार बाजी/इहे हुनका फबइत रहे।

जब देखू तलवार के संगे/धम-चउकरी मचबइत रहथ।

खेल-खेल में तलवार के धार के/अउरो तेज बनबइत रहथ।।



संपर्क

विनोद कुमार सिन्हा— ग्राम पो. — बेलाही नीलकंठ, वाया अथरी, जिला— सीतामढ़ी,
843311 (बिहार), मो.—9934679796, ई—मेल: dksinha@gmail.com

भाषा प्रौद्योगिकी एवं भारतीय भाषाएँ : विकास, चुनौतियाँ और संभावनाएँ

राम किशोर*

भारत की भाषाई विविधता दुनिया में सुविख्यात है अर्थात् भारत भाषाई विविधता का प्रतीक है। यहाँ 22 आधिकारिक अनुसूचित मान्यता प्राप्त भाषाएँ और सैकड़ों बोलियाँ एवं उपभाषाएँ हैं। यह भाषाई समृद्धता हमारी सनातन ज्ञान परंपरा एवं संस्कृति की संवाहक है। लगभग 90% से अधिक भारतीय मुख्यतः अपनी मातृभाषाओं में संवाद करते हैं, अतः ज्ञान एवं विचार, शोध व अनुसंधान आदि के लिए परस्पर भाषाई विनिमय आवश्यक है, एतदर्थ भाषा प्रौद्योगिकी का निर्माण एवं विकास हमारे लिए अपरिहार्य हो गया है। भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी की पहुँच अभी तक जनसामान्य की पहुँच से दूर है। डिजिटल खाई को पाटने और संसाधनों तक समान पहुँच को बढ़ावा देने के लिए भाषा प्रौद्योगिकी का विकास व प्रचार-प्रसार आवश्यक है।

भाषा प्रौद्योगिकी में ऐसी संगणन प्रक्रियाएँ शामिल हैं जो मशीन को मानव भाषाओं को समझने और विश्लेषण करने में सक्षम बनाती हैं। इस बहु-विषयक क्षेत्र में प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (एनएलपी), मशीनी अनुवाद, वाक् पहचान आदि का समावेश है। हालाँकि, भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी को अपनाने में कई बाधाएँ हैं, जिनमें डेटा की कमी, बोली में भिन्नता और असंगत मानकीकरण शामिल हैं।

भारत की सरकार द्वारा संचालित पहल, शैक्षणिक अनुसंधान और निजी क्षेत्र के नवाचार इन चुनौतियों का उत्तरोत्तर समाधान कर रहे हैं। यह शोधपत्र भारत के भाषा प्रौद्योगिकी पारिस्थितिकी तंत्र का गहन अवलोकन प्रस्तुत करता है, जिसमें टीडीआईएल जैसे सरकारी कार्यक्रमों, भाषाई कोष निर्माण, एआई विकास और इस क्षेत्र में आने वाली चुनौतियों और अवसरों पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

ऐतिहासिक एवं नीतिगत पृष्ठभूमि

भारत में भाषा प्रौद्योगिकी के प्रारंभिक प्रयास संगणकीय (कंप्यूटेशनल) भाषाविज्ञान और लिपि डिजिटलीकरण कार्यक्रमों से जुड़े हैं, जिनका उद्देश्य भाषाई विरासत को

* सहायक आचार्य, अनुवाद एवं संगणकीय भाषाविज्ञान, अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

संरक्षित करना था। भारत में इंटरनेट के बढ़ते प्रसार के साथ ही डिजिटल बहुभाषी समाधानों की आवश्यकता ने गति पकड़ी है।

भारत सरकार का भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी विकास (टीडीआईएल) कार्यक्रम, जिसकी शुरुआत 1991 में हुई थी, प्रमुख भारतीय भाषाओं में सॉफ्टवेयर उपकरण और कॉर्पस विकसित करने के प्रयासों का नेतृत्व करता है। टीडीआईएल ने 22 भाषाओं के लिए यूनिकोड-संगत फॉन्ट विकास, स्थानीयकृत इनपुट तंत्र, मशीनी अनुवाद प्रणाली, वाक्-से-पाठ और पाठ-से-वाक् प्रौद्योगिकियों का सफलतापूर्वक समर्थन किया है।¹

2007 में स्थापित, भारतीय भाषाओं के लिए भाषाई डेटा कंसोर्टियम (एलडीसी-आईएल), एआई और एनएलपी अनुसंधान के लिए आवश्यक बड़े पैमाने पर भाषाई डेटासेट को व्यवस्थित रूप से विकसित और जारी करता है। एलडीसी-आईएल वर्तमान में 20 भारतीय भाषाओं के लिए संसाधनों का संग्रह करता है, जो भाषा प्रौद्योगिकी के लिए पर्यवेक्षित शिक्षण को सक्षम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।²

भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी में अनुसंधान को सक्षम बनाने के लिए 'भाषिनी' परियोजना प्रारंभ की गई है। जो स्थायी भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी (ILT) एवं प्रौद्योगिकी के लिए दीर्घकालिक पारिस्थितिकी तंत्र हेतु कार्यनीति/युक्तियाँ विकसित करती है। भारतीय भाषाओं के लिए मशीनी अनुवाद एवं बहुभाषी भाषा मॉडल बनाकर और उन्हें सरकारी और वाणिज्यिक अनुप्रयोगों में एकीकृत करके वैश्विक एआई में भारत की प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ावा देने का प्रयास करती है।³

प्रमुख वैश्विक तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी कंपनियाँ भी भारतीय भाषा तकनीकी एवं भाषा प्रौद्योगिकी निर्माण व विकास हेतु प्रयत्नशील हैं। (श्रीवास्तव, बी.एल.एम. आदि) गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, अमेज़न, मेटा (फेसबुक) जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारतीय भाषाओं के लिए मशीनी अनुवाद, वाक् पहचान (Speech Recognition), स्वचालित लिप्यंतरण (Transliteration), टेक्स्ट-टू-स्पीच (TTS), और प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) संबंधी नवाचारों पर कार्य कर रही हैं। गूगल ट्रांसलेट ने भारतीय भाषाओं को वैश्विक संवाद में स्थान दिलाने में योगदान दिया है एवं हाल ही में आठ नई भाषाओं को अपने ट्रांसलेट सिस्टम में जोड़ा है।⁴ वहीं माइक्रोसॉफ्ट का "भाषा इंडिया"

1. झा, गिरेश नाथ 2010, द टीडीआईएल प्रोग्राम एंड द इंडियन लैंग्वेज कॉर्पोरा इनिशिएटिव (आईएलसीआई), इन प्रोसीडिंग्स ऑफ़ द सेव्थ इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन लैंग्वेज रिसोर्स एंड इवैल्यूएशन (एलआरईसी'10), वैंलेटा, माल्टा, यूरोपियन लैंग्वेज रिसोर्स एसोसिएशन (ईएलआरए)
2. चौधरी, नारायण, एलडीसी-आईएल: द इंडियन रिपोजिटरी ऑफ़ रिसोर्स फॉर लैंग्वेज टेक्नोलॉजी, लैंग्वेज रिसोर्स एंड इवैल्यूएशन 55, 855.867 (2021).
3. यजादा, वरालिका, डिजिटल इंडिया भाषिणी (2022): ब्रिजिंग इंडिया'ज़ लैंग्वेज डिवाइड थ्रू मल्टीलिंगुअल इनोवेशन. आईएमपीआरआई
4. google translate: Google eight Indian languages including Sanskrit to Google Translate- The Economic Times.

प्लेटफॉर्म शिक्षा, शासन और उद्योग में भारतीय भाषा कंप्यूटिंग को प्रोत्साहित कर रहा है।⁵ अमेज़न और मेटा जैसी कंपनियाँ भी अपने उत्पादों और सेवाओं (जैसे ई-कॉमर्स, सोशल मीडिया और वर्चुअल असिस्टेंट) में भारतीय भाषाओं के समावेशन द्वारा करोड़ों उपभोक्ताओं को स्थानीय भाषाई सुविधा प्रदान कर रही हैं⁶ तथा मशीनी अनुवाद एवं अन्य तकनीकी अनुप्रयोगों पर शोध एवं अनुसंधान कर रही है। इन प्रयासों से न केवल डिजिटल समावेशन की प्रक्रिया को गति मिली है, बल्कि भारतीय भाषाओं की डिजिटल समृद्धता एवं वैश्विक प्रासंगिकता भी बढ़ी है।

तकनीकी अवसंरचना और उपकरण

भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी प्रयासों के अंतर्गत अनेक महत्वपूर्ण साधन और उपकरण विकसित किए गए हैं। ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकॉग्निशन (OCR) प्रणालियाँ देवनागरी, तमिल, तेलुगु और बंगाली जैसी लिपियों के मुद्रित पाठों को डिजिटल स्वरूप में बदलने की सुविधा प्रदान करती हैं। वाक् पहचान और वाक् संश्लेषण प्रणालियाँ (ASR और TTS) मातृभाषाओं में ध्वनि-आधारित इंटरफेस को सक्षम बनाती हैं, जिससे मोबाइल आधारित उपयोग और सुगम्यता के नए आयाम खुले हैं। मशीन अनुवाद प्रणालियाँ भी विकसित की गई हैं जो भारतीय भाषा युग्मों के लिए कार्य करती हैं, यद्यपि सीमित कॉर्पोरा और संसाधनों की बाधाओं के कारण ये प्रणालियाँ अभी भी चुनौतियों का सामना कर रही हैं।

यूनिकोड मानकीकरण भारतीय भाषाओं की विविध लिपियों को विभिन्न उपकरणों पर एक समान प्रस्तुत करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है। इसके साथ ही वर्चुअल कीबोर्ड और इनपुट मेथड एडिटर (IME) जैसे उपकरणों ने भाषा-टाइपिंग की सहजता को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाया है जिससे अंतर्जाल (इंटरनेट) पर भारतीय भाषाओं में सामग्री एवं उनका प्रयोग निरंतर बढ़ रहा है (KPMG Report, 2017)।⁷

भारतीय मशीन अनुवाद प्रणालियों, डिजिटल पुस्तकालयों, ऑनलाइन शब्दकोशों, कॉर्पस निर्माण और भाषाई प्रसंस्करण उपकरणों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, जिससे भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी एवं संगणकीय शोध एवं विकास के साथ-साथ डिजिटलीकरण, भाषा तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन मिला है। ये तकनीकी कार्य बहुभाषिक भारतीय संदर्भों में आने वाली चुनौतियों, जैसे लिपि विविधता, भाषाई भिन्नता और संसाधन की कमी आदि से दूर करने में अत्यंत सहायक सिद्ध हुई हैं।

-
5. Transforming translation for Indian language with AI- Microsoft Stories India
 6. Amazon Collaborates with IIT Bombay to Advance Artificial Intelligence and Machine Learning-About Amazon India.
 7. केपीएमजी. (2017). इंडियन लैंग्वेज- डिफाइनिंग इंडिया'ज़ इंटरनेट, केपीएमजी इन इंडिया रिपोर्ट

मशीन अनुवाद प्रणालियों के क्षेत्र में भारत सरकार की विभिन्न परियोजनाओं के तहत विविध मशीन अनुवाद प्रणालियाँ विकसित की गई हैं जैसे Mantra और Matra (C-DAC, पुणे) अंग्रेजी से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए ट्रांसफर-आधारित दृष्टिकोण, अनुसारक (Anusaaraka) भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद के लिए पाणिनीय व्याकरण ढांचे का उपयोग करता है, जो भाषाई सिद्धांत और कंप्यूटेशनल मॉडलिंग का एकीकृत रूप है। Shakti और Shiva, IIT हैदराबाद, IISC बेंगलूर और कार्नेगी मेलॉन विश्वविद्यालय द्वारा विकसित हाइब्रिड प्रणालियाँ, नियम-आधारित और सांख्यिकीय पद्धतियों का संयोजन कर उच्च अनुवाद सटीकता सुनिश्चित करती हैं। इसके अतिरिक्त, Sampark विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद को वितरित और क्लाउड-आधारित डिप्लॉयमेंट के साथ संभालता है, जबकि AnglaBharti अंग्रेजी से कई भारतीय भाषाओं तक नियम-आधारित समर्थन प्रदान करता है।

‘भाषिनी’⁸ मशीन प्रणाली भारत सरकार की प्रमुख अनुवाद पहल है जो कि अद्यतन तंत्रिका आधारित मशीन दृष्टिकोण पर विकसित की गई अनुवाद प्रणाली है। अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं एवं भारतीय भाषाओं से भारतीय भाषाओं के लिए शीघ्र एवं सटीक अनुवाद प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त अनुवादिनी, गूगल ट्रांसलेट, माइक्रोसॉफ्ट बिंग आदि अन्य प्रमुख मशीन अनुवाद प्रणालियाँ हैं जो विदेशी भाषाओं के साथ ही प्रमुख भारतीय भाषाओं के लिए कार्य कर रही हैं तथा अन्य भाषाओं पर निरंतर कार्यशील हैं।

डिजिटल पुस्तकालयों के माध्यम से भारतीय भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान का संरक्षण एवं संग्रहण किया जाता है तथा यह ज्ञान की सुदूर उपलब्धता और आसान पहुँच का एक सुदृढ़ साधन है। एक संपूर्ण शिक्षण पारिस्थितिकी तंत्र बनाने के लिए भारत सरकार ने तकनीकी का उपयोग करते हुए डिजिटल पुस्तकालयों पर बल दिया है। संप्रति राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय (NDLI), जो 39 से अधिक भारतीय भाषाओं में 100 मिलियन से अधिक शैक्षिक संसाधनों का समेकन करता है एवं डिजिटल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया (DLI), जो दुर्लभ ग्रंथों और पांडुलिपियों के डिजिटलीकरण और संरक्षण पर केंद्रित है तथा CIIL पुस्तकालय, जो भारतीय भाषाओं में व्यापक मल्टीमीडिया और मेटाडेटा खोज उपकरण प्रदान करता है। हाल ही में जय अनुसंधान उद्घोष के साथ ही एक राष्ट्र एक सदस्यता⁹ (ONOS) को प्रारंभ किया गया है ताकि ज्यादा से ज्यादा व्यक्तियों को डिजिटल रूप में अध्ययन सामग्री एवं संसाधन प्राप्त हो तथा वे अपने अध्ययन और अनुसंधान में उनका प्रयोग कर सकें।

8. <https://anuvad.bhashini.gov.in/>

9. <https://onos.gov.in/>

शब्दकोश एवं पारिभाषिक शब्दावली से भाषा की समृद्धता बढ़ती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में शब्दकोश निर्माण की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। शब्दकोश एवं पारिभाषिक शब्दावली किसी भी विषयवस्तु को जानने एवं समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। किसी भी भाषा प्रौद्योगिकी के निर्माण में शब्दकोश एवं पारिभाषिक शब्दावली महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में काम आता है। अतः शब्दकोश एवं पारिभाषिक शब्दावली को ऑनलाइन माध्यम में विकसित करना और डिजिटल संसाधन के रूप में उनका प्रयोग करना लोगों के लिए लाभप्रद सिद्ध हो रहा है। भारत सरकार एवं अन्य निजी संस्थानों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग¹⁰ (शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार) पारिभाषिक शब्दावली निर्माण करने के लिए प्रमुख संस्था के रूप में कार्यरत हैं। आयोग ने स्वनिर्मित सभी शब्दावलियों को 'शब्द'¹¹ नाम के वेबपोर्टल पर अन्वेषणीय प्रारूप (searchable format) में ऑनलाइन उपलब्ध है। भारतीय भाषाओं के लिए शब्द, हिंदी शब्द-सिंधु¹², ई महाशब्दकोश¹³, भारतवाणी शब्दकोश¹⁴ और दक्षिण एशिया के डिजिटल शब्दकोश¹⁵ आदि अनेक ऑनलाइन शब्दकोश पोर्टल उपलब्ध हैं, जो मानव और मशीन अनुवाद दोनों के लिए सहायक हैं।

कॉर्पस निर्माण पहलों में TDIL परियोजनाओं का मशीन-पठनीय कॉर्पस निर्माण एवं भाषाई उपकरण विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सामूहिक रूप से, इन पहलों ने भारतीय भाषाओं के लिए एक मजबूत तकनीकी और शैक्षिक पारिस्थितिकी तंत्र स्थापित किया है, जो न केवल संगणकीय (कंप्यूटेशनल) अनुसंधान को सशक्त करता है, बल्कि भारत की भाषाई विविधता के संरक्षण, प्रसार और डिजिटल उपलब्धता में भी योगदान देता है। इन सभी तकनीकों के साथ ही हाल के वर्षों में उद्योग-स्तरीय प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण पाइपलाइनों में तंत्रिका-आधारित विधियों का एकीकरण तेजी से हो रहा है।

भारतीय भाषाओं की भाषाई चुनौतियाँ

भारतीय भाषाओं की भाषाई संरचना और विविधता का समाधान प्रौद्योगिकी विकास के लिए चुनौतीपूर्ण है। सबसे प्रमुख समस्या लिपि और वर्तनी विविधता की है, क्योंकि अधिकांश भारतीय भाषाएँ जटिल संयुक्ताक्षरों और शब्दांश-आधारित लिपियों का उपयोग करती हैं, जिनके लिए उन्नत फॉन्ट रेंडरिंग और इनपुट प्रणालियों की आवश्यकता होती है। हिंदी और तमिल जैसी अत्यधिक रूपात्मक भाषाओं में विभक्ति और रूपांतरण के कारण परिष्कृत रूपात्मक विश्लेषकों का विकास आवश्यक हो जाता है।

10. <https://cstt.education.gov.in/en>

11. <https://shabd-education.gov.in/>

12. hindishabdsindhu.rajbhasha.go.in/

13. https://cdac.in/index.aspx?id=me_if_emahashabdakosh

14. <https://bharatavani.in/home/dictionaries>

15. <https://dsal.unchicago.edu/dictionaries/#gsc.tab=o>

इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय बोलियों की विविधता और अंग्रेजी तथा स्थानीय भाषाओं के बीच कोड-स्विचिंग की प्रवृत्ति भी एक बड़ी चुनौती है, जिसे मॉडलिंग करना आसान नहीं है साथ ही बृहद एवं गुणवत्तापूर्ण एनोटेटेड डेटासेट की कमी के कारण पर्यवेक्षित शिक्षण (supervised learning) आधारित दृष्टिकोण सीमित हो जाते हैं। भारतीय समाज में बहुभाषिकता सामान्य है और उपयोगकर्ता प्रायः कई भाषाओं का समानांतर प्रयोग करते हैं। इस कारण बहुभाषी एवं मिश्रित इनपुट को समझने और संसाधित करने वाली प्रणालियों की आवश्यकता बढ़ जाती है।

कृत्रिम मेधा (एआई) और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (एनएलपी) नवाचार

हाल के वर्षों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। 'भारतजीपीटी' और 'भाषिनी' जैसी पहलों के अंतर्गत बहुभाषी बृहद भाषा मॉडल विकसित किए गए हैं, जो बारह से अधिक अनुसूचित भारतीय भाषाओं का समर्थन करते हैं और भारतीय भाषा एनएलपी के लिए आधारभूत संरचना प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय सांकेतिक भाषा को समझने के लिए मशीन लर्निंग का उपयोग करके पहचान प्रणालियाँ विकसित की जा रही हैं, जिसका भारतीय सांकेतिक भाषा हेतु वास्तविक समय अनुवाद के लिए उपयोग किया जा सके तथा अनुवाद उपकरण विकसित किए जा सकें हैं। इससे श्रवण-बाधित समुदाय के लिए सुगमता बढ़ाने की संभावना है।

निजी क्षेत्र में REVERIE और Devanagari.AI जैसी कंपनियाँ भारतीय भाषाओं के लिए स्थानीयकरण, अनुवाद और संवादात्मक एआई समाधान प्रस्तुत कर रही हैं। इसके साथ ही शैक्षणिक अनुसंधान संस्थान भी वाक् अनुवाद, एनएलपी पाइपलाइन और भाषा संसाधन निर्माण से जुड़े अत्याधुनिक शोध कार्य कर रहे हैं, जिससे इस क्षेत्र का वैज्ञानिक आधार और मजबूत हुआ है।

भावी संभावनाएँ

भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी को सशक्त बनाने के लिए कुछ रणनीतिक कदम आवश्यक हैं। इसके लिए सबसे पहले एनोटेटेड कॉर्पोरा का विस्तार किया जाना चाहिए जिसमें बोलियों और सोशल मीडिया की भाषा को विशेष रूप से शामिल किया जाए। भारतीय भाषाओं की रूपात्मक एवं वाक्यात्मक विशेषताओं के अनुरूप उन्नत एआई मॉडल विकसित करना भी अत्यंत आवश्यक है। साथ ही सुलभ और मुक्त भाषाई अवसंरचना का निर्माण तथा विभिन्न शैक्षणिक और औद्योगिक क्षेत्रों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना अनिवार्य है।

इन प्रौद्योगिकियों का व्यापक प्रभाव लोकतांत्रिक शासन, स्वास्थ्य सेवाओं, शिक्षा और वित्तीय समावेशन जैसे क्षेत्रों में देखा जा सकता है। अंततः नैतिक एआई उपयोग, डेटा गोपनीयता और सांस्कृतिक संरक्षण को सुनिश्चित करते हुए भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी को भविष्य के लिए टिकाऊ और समावेशी बनाया जा सकता है।

भाषा प्रौद्योगिकी और कृत्रिम मेधा (एआई) में भारत का निरंतर निवेश डिजिटल समावेशन के लिए परिवर्तनकारी संभावनाएँ प्रदान करता है। भाषाई और तकनीकी चुनौतियों के बावजूद, व्यापक सरकारी पहल, शैक्षणिक अनुसंधान और उद्योग नवाचार – सामूहिक रूप से एक समावेशी डिजिटल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करते हैं। डेटा संवर्धन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता मॉडल में सुधार, बुनियादी ढाँचे के मानकीकरण और सार्वजनिक-निजी सहयोग में निरंतर प्रयास लाखों भारतीय भाषा उपयोगकर्ताओं को समान डिजिटल पहुँच प्रदान करके सशक्त बनाएँगे।



संपर्क

राम किशोर, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदानगढ़ी, नई दिल्ली-110068
मोबाइल-8826563463, ई-मेल: ramkishorignou.ac.in

मैंने अपनी कविता में लिखा है
'मैं अब घर जाना चाहता हूँ;
लेकिन घर लौटना नामुमकिन है;
क्योंकि घर कहीं नहीं है।

— श्रीकांत वर्मा

तुलसीदास के काव्य में 'भायप' भक्ति

अमन कुमार*

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू।
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होइ॥

गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में चित्रकूट में राम और भरत का मिलाप कराकर सबसे मर्मस्पर्शी दृश्य प्रस्तुत किया है। लेकिन भरत के राम मिलन से पहले के वृत्तांत को अगर हम ध्यान से देखें तो यह साफ स्पष्ट हो जाएगा कि भरत का प्रेम कितना निश्छल है और राम के मिलन से पहले भरत की क्या दशा हो गई थी। राम चित्रकूट में कहाँ निवास कर रहे हैं यह निषादराज को पता था लेकिन भरत को नहीं। भरत राम को वापस अयोध्या लौटने का आग्रह करने निकले हैं और साथ में है अयोध्या का भारी जनसमुदाय। भरत के दल को आता देख निषादराज ने ऋषि वशिष्ठ को देख दूर से ही दंडवत किया— 'देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू॥' लेकिन एक संत की दृष्टि देखिए। वशिष्ठजी ने यह नहीं देखा कि यह निषाद है; छोटी जाति का है, उसे राम का सखा समझकर आशीर्वाद दिया और भरत से भी कहा कि ये रामजी का सखा है— 'जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाई मुनीसा॥'

और जब भरत ने सुना ये 'रामसखा' हैं तो वे रथ से कूद पड़े, हृदय में अपार अनुराग उत्पन्न हो गया— 'राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥'² अच्छा यह सोचने वाली बात है कि भरतजी रथ से क्यों उतर गये! वो भी एक निषाद के लिए! वे तो राजकुमार हैं! यहाँ तुलसीदास ने शील और मर्यादा की एक सुंदर झाँकी प्रस्तुत की है। तुलसी की भक्ति-पद्धति में शील और मर्यादा का विशेष महत्त्व है। (इस बात का पंडित रामचंद्र शुक्ल ने बहुत सुंदर विश्लेषण कर दिखाया है— अपनी पुस्तक गोस्वामी तुलसीदास में।) इसी मर्यादा के कारण भरत रथ से उतर आए। वशिष्ठजी ने कहा कि यह राम का सखा है और भरतजी रामजी के सेवक हैं। सेवक छोटा होता है, सखा बराबरी का; सखा के

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

1. तुलसीदास रामचरितमानस, अयोध्या कांड
2. तुलसीदास रामचरितमानस, अयोध्या कांड

सामने सेवक रथ पर खड़ा रहे, इससे भक्तिभाव की मर्यादा नहीं रहेगी। इसलिए भरत रथ से उतर आए। जब निषादराज ने भरत को दंडवत किया तो भरत ने उसे उठाते हुए हृदय से लगा लिया। भरत निषादराज से मिले तो उन्हें लगा कि मानो लक्ष्मण से भेंट हो गई हो। हृदय में प्रेम समा नहीं पा रहा है—

‘करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।

मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेम न हृदयँ समाइ॥’³

अब जब भरत निषादराज के साथ रामनिवास ढूँढने निकले तो सर्वप्रथम शृंगवेरपुर पहुँचे, तो सबसे पहले निषादराज ने उन्हें राम घाट का दर्शन कराया और कहा कि यहाँ रामजी ने स्नान किया था। भरतजी रामघाट को देखते ही मानो गिर ही गए। वे रामजी के प्रेम में ऐसे मग्न हुए जैसे श्रीराम से ही भेंट हो गई हो—

‘रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥’⁴ सभी ने रात्रि में शृंगवेरपुर में ही विश्राम किया। सब थक के सो गए। सिर्फ भरत जाग रहे हैं। निषादराज ने पूछा ‘आप सोए नहीं!’ भरत ने कहा ‘जिन आँखों में नीर हो उनमें नींद कहाँ!’ निषादराज ने कहा ‘फिर विश्राम कैसे मिलेगा।’ भरतजी ने कहा ‘रामजी का विश्रामस्थल दिखा दो, तो थोड़ा विश्राम मिले।’ भरत हाथ जोड़े निषाद के साथ चले। शरीर थककर शिथिल पड़ गया है लेकिन हृदय में अपार प्रेम उमड़ रहा है—

‘चले सखा कर सों कर जोरें। सिथिल सरीर सनेह न थोरें॥’⁵

निषाद उन्हें लेकर ‘सिंसुपा’ वृक्ष के नीचे पहुँचे और कहा यहीं रघुनाथजी सोए थे—

‘जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किय बिश्रामु।

अति सनेहँ सादर भरत कीन्हैउ दंड प्रनामु॥198॥’⁶

भरतजी ने वृक्ष को प्रणाम किया। निषादराज ने कहा कि ‘यह वृक्ष सौभाग्यशाली हो गया।’ भरत जी ने कहा ‘हो नहीं गया, है। अभागा तो मैं हूँ! माता कौशल्या ने कहा था। “बड़भागी बनू अवध अभागी”॥’⁷ और जब वहाँ रामजी की साँथरी देखी तो भरतजी रोने लगे, और जब सीताजी की साँथरी देखी तो भरत फफककर कहते हैं कि ‘यह हृदय फट क्यों नहीं रहा! लगता है ये (मेरा हृदय) वज्र से भी अधिक कठोर है!— *बिहरत हृदउ न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि॥’⁸* निषादराज ने समझाया। उसी समय कनकबिंदु आ गए, भरतजी ने आश्चर्य से पूछा ‘ये कहाँ से आ गए?’ निषादजी

3. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

4. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

5. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

6. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

7. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

8. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

ने कहा 'जैसे आज आप रो रहे हैं, ठीक उसी तरह आप लोगों को याद कर रघुनाथजी भी रोया करते थे— "जब-जब राम अवध सुधि करहीं। तब-तब बारि बिलोचन भरहीं।।"⁹ और मैंने देखा, रामजी को रोता देख सीताजी व्याकुल होकर रोने लगती और उनके आँसू जैसे महि पर गिरते, कनकबिंदु हो जाते थे।।' भरतजी ने उन कनकबिंदुओं को सीताजी ही मानकर प्रणाम किया— 'कनक बिंदु दुइ चारिक देखे/ राखे सीस सीय सम लेखे।'¹⁰ सभी ने रात्रिभर विश्राम किया। सुबह भरत ने सारे दल को चला दिया, और भरत आज पैदल ही जा रहे हैं। तीसरे पहर शाम में भरत प्रयाग पहुँच गए —

'भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।

कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग।।'¹¹

अच्छा तीर्थराज प्रयाग का दर्शन बहुतों ने किया, लेकिन जैसा भरत ने दर्शन किया वह तो अद्भुत ही है। भरत ने त्रिवेणी प्रयाग का दर्शन भी राम भक्त की तरह ही किया। त्रिवेणी में भरतजी कटि पर्यंत जल में खड़े हो गए तो उन्हें मानों गंगा-जमुना में सीता-राम के दर्शन हो गए। गंगाजी की श्वेत धारा मानो सीताजी ही हों। और यमुना जी की स्यामल धारा में भरतजी को रामजी के दर्शन हो गए और उनके दोनों हाथ जुड़ गए— 'देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे।'¹² यह भक्ति की ही दृष्टि है जिससे सारा जगत सिया-राममय दिखता है।

अब भरत तीर्थराज प्रयाग से कहते हैं कि 'मैं अपना धर्म (क्षत्रिय धर्म) त्यागकर आपसे भीख माँगता हूँ, क्योंकि आर्त मनुष्य कौन-सा कुकर्म नहीं करता?'—

'मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू।।'¹³

तीर्थराज प्रयाग ने कहा, क्या चाहिए— 'चारि पदारथ भरा भँडारु'¹⁴!

भरत ने कहा—

'अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।

जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।'¹⁵

अक्सर यह होता है कि हम जिससे अगाध प्रेम या स्नेह करते हैं तो हम यह कोशिश करते हैं कि वह जाने कि हम उसके प्रेमी हैं। लेकिन भरत ऐसे नहीं हैं वह चाहते हैं कि कोई जाने नहीं कि मैं रामजी से प्रेम करता हूँ। लोग भले ही उन्हें

9. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

10. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

11. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

12. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

13. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

14. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

15. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

गुरुद्रोही और स्वामीद्रोही कहें; पर श्रीसीतारामजी के चरणों में मेरा प्रेम आपकी (तीर्थराज प्रयाग) कृपा से दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहे—

‘जानहुँ रामु कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही।

सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें।’¹⁶

इस आर्त विनय को देख तीर्थराज प्रयाग ने कहा— ‘हे तात भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो, तुम्हारा रामचरणों में अगाध प्रेम है तुम मन में ग्लानि न लाओ, तुम्हारे समान दूसरा रामजी को कोई भी प्रिय नहीं है—

‘भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी।

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू।

बाद ग्लानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाही।’¹⁷

तीर्थराज प्रयाग ने ‘सब बिधि साधू’ क्यों कहा? सिर्फ साधु कहने से काम चल सकता था! इसका गूढार्थ यह है कि तुलसी के लिए गंगाजी रामभक्ति की धारा हैं — ‘राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।’ इसलिए गंगाजी ने कहा कि ‘हे भरत तुम भक्ति की दृष्टि से साधु हो’, यमुनाजी ने कहा कि ‘तुम धर्म की दृष्टि से साधु हो’, और सरस्वतीजी तो स्वयं ज्ञान की देवी हैं इसलिए उन्होंने कहा कि ‘हे भरत तुम ज्ञान की दृष्टि से साधु हो।’ इसलिए तीर्थराज प्रयाग ने कहा — ‘तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू।’

अब भरत ऋषि भारद्वाज के आश्रम पहुँच गए। भरत सजल नयन और सिर झुकाए मुनि के सम्मुख बैठे हैं। उनके मन में बड़ा संकोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे (कैकेई की कुटिलाई के संबंध में)— ‘मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू।’¹⁸ लेकिन भारद्वाज जी ने कहा ‘हे भरत तुम मन में ग्लानि न लाओ। हमें सब पता लग गया है, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैं तुमको अच्छे से जानता हूँ, इसलिए मैं तुम्हारा सही परिचय सबको बता देता हूँ। ‘यह कैकेयी किशोर भरत नहीं हैं, यह दशरथ नंदन भरत नहीं हैं, यह श्रीरामानुज भरत नहीं हैं, मेरे मत अनुसार तुम तो साक्षात् राम स्नेह हो; जैसे राम स्नेह ने देह धारण कर लिया हो— तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू।’¹⁹

और एक बात कहूँ भरत, मैं झूठ नहीं बोल रहा; मेरे मन में राग-द्वेष नहीं है, उदासीन हूँ और तपस्वी हूँ, वन में रहता हूँ— ‘सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं।’²⁰ कोई मुझसे पूछे कि ‘जीवनभर की तपस्या का फल क्या? तो मैं

16. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

17. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

18. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

19. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

20. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

कहूँगा कि 'सीता-राम का दर्शन' यानी परमात्मा का दर्शन — सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा और कोई कहे कि परमात्मा के दर्शन का फल क्या? तो मैं कहूँगा कि भरत तुम्हारा दर्शन; क्योंकि तुम फल के फल हो — 'तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा।'²¹

रात्रि भर आश्रम में रहे। सवेरा हुआ, फिर वही रट कि 'मिल जाओ राम तरस रही अखियाँ' और भरत समाज सहित चित्रकूट की ओर चल पड़े। भरतजी चले ही जा रहे हैं और ऊपर देवता योजना बना रहे कि 'मिलने न पाएँ'। इंद्र के हृदय की धुकधुकी बढ़ गई। उन्होंने देवगुरु बृहस्पति से पूछा। 'ये... ये... मिल जाएँगे। और भरतजी ने रामजी को वापस लौटने का निवेदन किया, तो क्या रामजी लौट जाएँगे?' देवगुरु ने कहा— 'अवश्य लौट जाएँगे।' इंद्र ने कहा— 'तब तो काम बिगड़ जाएगा।' देवगुरु ने कहा 'भरत कहेंगे तब तो राम लौटेंगे।' इंद्र ने कहा 'जब कहने के लिए जा रहे हैं तो कहेंगे क्यों नहीं?। देवगुरु ने कहा— 'तुम मन को स्थिर करो और डरो मत। तुम भरत को नहीं जानते। वह रामजी की परछाई हैं और परछाई शरीर के अनुसार चलती है न कि शरीर को अपने अनुसार चलाती है। *मन थिर करहु देव डरु नाही। भरतहि जानि राम परिछाहीं।*²² निषादराज कह रहे थे कि हम रास्ता बताएँगे लेकिन वह रास्ता भूल गए। और देवता कह रहे थे हम मिलने नहीं देंगे और अब वह रास्ता बता रहे हैं— 'सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहि फूला।'²³

ये रास्ता क्यों भूल गए। क्योंकि सब नशे में जा रहे हैं! कौन सा नशा है वह भी देख लें— '*करत मनोरथ जस जियँ जाके। जाहिं सनेह सुराँ सब छाके।*²⁴

अब भरत चित्रकूट आ गए, राम 'सैल' को देख उनके हृदय में प्रेम समा नहीं पा रहा है। उनकी हालत उस तपस्वी की तरह हो गई है जिसने अपने तप का फल पा लिया हो—

'राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु।

*तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु।*²⁵

भरतजी ने सभी माताओं और अयोध्यावासियों को मंदाकिनी गंगा के किनारे ठहरा दिया और स्वयं अनुज संग निषादराज के साथ राम के दर्शन को चल पड़े। यहाँ चित्रकूट में तुलसीदास ने एक विलक्षण काम किया है। वह यह कि तुलसीदास जब मानस में रावणादि राक्षसों का वर्णन करते हैं तो दूरस्थ संज्ञा 'उहाँ' का प्रयोग करते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

21. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

22. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

23. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

24. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

25. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

‘उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब ते जारि गयउ कपि लंका।’

‘उहाँ दूत एक मरमु जनावा। रावन कालनेमि गृह आवा।।’²⁶

लेकिन राम के लिए ‘इहाँ प्रात जागे रघुराई।’ ‘इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर’। इसका मतलब क्या? इसका मतलब यह कि तुलसीदास हमेशा राम के साथ हैं उनको अपने हृदय में बसाए रखना चाहते हैं। और राक्षसों के लिए ‘उहाँ’ इसलिए कि राक्षस खल उधर दूर ही रहें तो अच्छा, यहाँ तो (हृदय में) रामजी ही रहेंगे। लेकिन एक जगह तुलसीदास ने यह क्रम बदल दिया है। चित्रकूट में। चित्रकूट में बाबा रामजी के लिए लिखते हैं—‘ उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा।’ और भरत के लिए— ‘इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनी पुनीत नहाए।’ अगर आप तुलसीदास से पूछते कि ‘बाबा आपने दल बदल दिया है। आप रामजी के लिए ‘इहाँ’ लिखते थे, लेकिन चित्रकूट में भरत के लिए ‘इहाँ’ और रामजी के लिए ‘उहाँ’ लिखने लगे, ऐसा काहे बाबा! तो बाबा हँसते हुए कहते कि— ‘बछवा, जब एक तरफ रावण हो और एक तरफ राम। तो हम रामजी के साथ हैं। लेकिन जब एक तरफ भरतजी हों और दूसरी तरह रामजी, तो हम भरतजी के साथ।’ आप तर्क करते कि ‘क्यों बाबा यहाँ तो बहुत भीड़ है।’ तो तुलसीदास का जबाब होता कि ‘हमारे लिए भीड़ अच्छी।’ आप कहते कि ‘आप जैसे संत को भीड़ से क्या काम’ तो बाबा मुस्कुराते हुए कहते कि ‘खरा सिक्का कहीं भी चल जाएगा, लेकिन खोटा सिक्का तो, सिर्फ भीड़ में ही चलेगा! क्योंकि— ‘रामसों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटी।’

राम सो खरो है कौन, मोसों कौन छोटी।²⁷

अब, निषादराज आगे—आगे जा रहे हैं भरत पीछे—पीछे। भरत यह सोच रहे हैं कि श्री सीताराम लक्ष्मण वह स्थान छोड़ के न चले जाएँ—

रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।²⁸

रामजी मुझे छोड़कर भले चले जाएँ, लेकिन मैं राम जी को छोड़कर कहाँ जाऊँगा, मैं तो उनकी पनही हूँ। और पाँव भले ही पनही को छोड़कर आगे चला जाएँ लेकिन पनही पाँव को छोड़कर कहाँ जाएगा— ‘मोरें सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही।’²⁹ माता की करनी याद आती तब पाँव आगे नहीं बढ़ते, लेकिन जैसे श्रीराम जी के स्वभाव की याद आती है तब स्वयं पाँव आगे बढ़ने लगते हैं—

‘फेरत मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी।

जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ।’³⁰

26. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

27. तुलसीदास: विनय-पत्रिका, विनयावली, पद संख्या-72

28. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

29. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

30. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

भरत की मनःस्थिति को समझना आवश्यक है क्योंकि, वे माता की करनी से बहुत व्यथित हैं ठीक वैसे ही जैसे जल की धारा में मछली उलटी चल रही हो—

‘भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाहँ जल अलि गति जैसी।’³¹

उसी समय केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरतजी से कहने लगा— ‘हे नाथ! ये जो पाकर, जामुन, आम और तमाल के विशाल वृक्ष दिखाई देते हैं —

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाइ।

नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला।³²

जिन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में एक सुंदर विशाल बड़ का वृक्ष सुशोभित है, जिसको देखकर मन मोहित हो जाता है, उसके पत्ते नीले और सघन हैं और उसमें लाल फल लगे हैं। उसकी घनी छाया सब ऋतुओं में सुख देने वाली है—

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा।

नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाँह सुखद सब काला।³³

मानो ब्रह्माजी ने परम शोभा को एकत्र करके अंधकार और लालिमामयी राशि सी रच दी है। हे गुसाईं! ये वृक्ष नदी के समीप हैं, जहाँ श्रीराम की पर्णकुटी छाई है

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी।

ए तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई।³⁴

सखा के वचन सुनकर और वृक्षों को देखकर भरतजी के नेत्रों में जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। भरत ने जैसे ही सुना कि राम की पर्णकुटी वहाँ पर है वैसे ही सब कुछ भूल गए और हाथ जोड़कर आश्रम की ओर चल पड़े। रास्ते में श्री राम जी के पद चिह्न दिखाई दिए, श्री रामचंद्रजी के चरणचिह्न देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं, मानो दरिद्र पारस पा गया हो। वहाँ की रज को मस्तक पर रखकर हृदय में और नेत्रों में लगाते हैं और श्री रघुनाथजी के मिलने के समान सुख पाते हैं। यह है भाइयों का प्रेम। भारतीय साहित्य में ऐसा प्रेम आपको दुर्लभ ही दिखाई देगा, जहाँ मुगल संस्कृति में एक भाई दूसरे भाई की हत्या कर राज्य ले रहा था वहीं तुलसीदास ने उस मुगल संस्कृति के समकक्ष एक ऐसा चरित्र— भरत का रखा है, जिसे राज्य का लेशमात्र भी लोभ नहीं है, राम के विरह में उसकी ऐसी दशा हो गई है जिसे देखकर सभी आश्चर्यचकित हैं। तुलसीदास ने तो पशु—पक्षियों को भी दुःखी दिखाया है, वे लिखते हैं—

31. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

32. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

33. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

34. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

‘भरतजी की अत्यंत अनिर्वचनीय दशा देखकर वन के पशु, पक्षी और जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेम में मग्न हो गए। प्रेम के विशेष वश में होने से सखा निषादराज भी रास्ता भूल गए। तब देवता सुंदर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे। भरत के प्रेम की इस स्थिति को देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर गए और उनके स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे कि ‘यदि इस पृथ्वी तल पर भरत का जन्म (अथवा प्रेम) न होता, तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता?

देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा।।

सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला।।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे।।

होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को।।’³⁵

भरत का प्रेम इतना निश्छल है कि वही देवता जो चाह रहे थे कि भरत और राम की मुलाकात न हो पाए, नहीं तो काम बिगड़ जाएगा, अब अपनी सहज ईर्ष्या छोड़कर कर भरत को रास्ता दिखाते हैं और फूल बरसाते हैं। धन्य हैं बाबा तुलसीदास और उनके भरत।

भरत चलते-चलते रामजी के आश्रम के पास पहुँच गए। वन इतना सघन है कि लक्ष्मण इन सबको आते नहीं देख पाए। बाबा लिखते हैं कि ‘भरतजी ने प्रभु श्री रामचंद्रजी के समस्त सुमंगलों के धाम और सुंदर पवित्र आश्रम को देखा— ‘भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन।’³⁶

मिलने की आकुलता इतनी है कि बिना पूछे भरत आश्रम में प्रवेश कर जाते हैं। प्रेम कभी-कभी इतना व्याकुल करता है कि वह सारी सीमाएँ, मर्यादाएँ, नीतियाँ और व्यावहारिकता को तोड़ डालता है। ‘आश्रम में प्रवेश करते ही भरतजी का दुःख और दाह (जलन) मिट गया, मानो योगी को परमार्थ (परमतत्त्व) की प्राप्ति हो गई हो। भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी प्रभु के आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूछी हुई बात का प्रेमपूर्वक उत्तर दे रहे हैं)—

करत प्रबेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा।

देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे।’³⁷

अब बाबा ने राम के वनवासी रूप का जो चित्रण किया है उसे देखकर लगता है कि भरत नहीं बल्कि तुलसीदास स्वयं राम को देख रहे हैं, उनकी कल्पना में राम जैसे उस रूप में जीवंत हो उठे हों, कितना मनोरम बिंब प्रस्तुत किया है— ‘सिर पर जटा है, कमर में मुनियों का (वल्कल) वस्त्र बाँधे हैं और उसी में तरकस कसे हैं। हाथ

35. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

36. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

37. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

में बाण तथा कंधे पर धनुष है' वहीं 'वेदी पर मुनि तथा साधुओं का समुदाय बैठा है और सीताजी सहित श्री रघुनाथजी विराजमान हैं—

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें। तून कसैं कर सरु धनु काँधें।

बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू।³⁸

रघुराज का श्याम शरीर कितना सुंदर है यह कोई तुलसीदास से पूछे। तुलसीदास को सौंदर्य के प्रतिमान ढूँढने के लिए कहीं और नहीं जाना होता उनके लिए तो साक्षात् राम ही सौंदर्य हैं। सुंदर पुरुषों की तुलना अक्सर कवि कामदेव से करता है, तुलसीदास ने भी 'मानस' में कई बार पुरुष सौंदर्य का प्रतिमान कामदेव को माना है। लेकिन तुलसीदास के यहाँ 'कोटि' कामदेव भी राम की सुंदरता की बराबरी नहीं कर सकता। लेकिन क्या बात है कि जब भी तुलसीदास को राम के सौंदर्य की उपमा देनी होती है, तो वे कामदेव का जिक्र अवश्य करते हैं और अगर रामजी के साथ सीता जी भी विद्यमान हों, तो तुलसीदास सीधे रति और कामदेव को याद करते हैं। यही है मध्यकालीन काव्य रूढ़ियों, जिसके शिकार सभी कवि हैं स्वयं तुलसीदास भी इससे बच नहीं सके हैं। ये और बात है कि जितने प्रकार के सौंदर्य के प्रतिमान तुलसीदास ने गढ़े, शायद ही जायसी को छोड़कर किसी और कवि ने उस काल में गढ़े होंगे। सिर्फ संस्कृत में कालिदास का नाम ध्यान आता है। रामविलास शर्मा ने ठीक लिखा है कि 'तुलसीदास पर कालिदास के सौंदर्यबोध का गहरा प्रभाव था। सौंदर्यबोध की प्रेरणा तुलसीदास ने कालिदास से ही ग्रहण की थी।'³⁹

इसलिए सीता और राम को एक साथ देखते ही तुलसीदास को कामदेव और रति का ध्यान आता है और वे लिखते हैं— 'श्री रामजी के वल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किए हैं, श्याम शरीर है। (सीता—रामजी ऐसे लगते हैं) मानो रति और कामदेव ने मुनि का वेष धारण किया हो — 'बल्कल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा।।'⁴⁰ लेकिन जैसे ही याद आया कि यह तो भरत की आँखों से मैं देख रहा हूँ, और साथ में छोटे भाई रिपुसूदन भी खड़े हैं। बाबा ने फटाक से प्रसंग बदल दिया और तुरंत भक्ति पर लौटे और सच्चिदानंद जैसे उपमान ले आए, और बताने लगे कि 'श्री रामजी अपने करकमलों से धनुष—बाण फेर रहे हैं और हँसकर देखते ही जी की जलन हर लेते हैं (अर्थात् जिसकी ओर भी एक बार हँसकर देख लेते हैं, उसी को परम आनंद और शांति मिल जाती है।)—

'कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।।'⁴¹

38. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

39. रामविलास शर्मा, भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, तुलसी का सौंदर्यबोध

40. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

41. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

(इतनी सफाई से काम नहीं चला हो तो) आगे के उपमान देखिए बाबा लिखते हैं — 'सुंदर मुनि मंडली के बीच में सीताजी और रघुकुलचंद्र श्री रामचंद्रजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो ज्ञान की सभा में साक्षात भक्ति और सच्चिदानंद शरीर धारण करके विराजमान हैं—

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।

ग्यान सभौ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु।⁴²

एक पंक्ति पहले 'जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा' और उसके तुरंत बाद 'भगति सच्चिदानंदु'!

(वाह वाह वाह! क्या बात है बाबा!) इन्ही सबको देखकर बाबा, आपके सौंदर्यबोध को कुछ आलोचकों ने मर्यादाबोध वाला सौंदर्यबोध कहा है। (आप लाख सफाई दे दीजिए कि 'बछवा हमने रामललानहछू और पार्वती-मंगल' में खुलकर सौंदर्यबोध दिखाया तो है! अब लोग कुछ कहें हमरा का! सब रामजी देखेंगे तुम भरत और रामजी के मिलन पर ध्यान दो!')

हाँ तो, भरत जी रामजी को देखकर लकड़ी के समान गिर पड़े। चित्रकूट में साधु संतों का जमावड़ा वह भी राम के सान्निध्य में, कितना भावविभोर कर देने वाला दृश्य होगा तुलसीदास के लिए! अगर भरत की जगह तुलसीदास होते तो वह भी लकड़ी के समान भूमि पर गिरकर साष्टांग प्रणाम करते, और फफककर कहते कि 'हे नाथ! रक्षा कीजिए, हे गुसाई! रक्षा कीजिए', ठीक ऐसा ही भरत ने किया, खड़े-खड़े रामजी को देखकर, 'छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज समेत भरतजी का मन (प्रेम में) मग्न हो रहा है। हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गए। हे नाथ! रक्षा कीजिए, हे गुसाई! रक्षा कीजिए' ऐसा कहकर वे पृथ्वी पर दंड की तरह गिर पड़े—

'सानुज सखा समेत मग्न मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन।'

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई। भूतल परे लकुट की नाई।'⁴³

आश्चर्य रामजी ने भरत की आवाज नहीं सुनी, जबकि 'चींटी के पग नूपुर बाजे' वह भी साहेब (रामजी) सुनते हैं! फिर भरत जी की पुकार नहीं सुनी! क्योंकि भीतर ही भीतर भरत से मिलन हो रहा है। लेकिन लखन ने भरत की आवाज पहचान ली!— 'बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने।' उन्होंने मन में जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। (वे श्री रामजी की ओर मुँह किए खड़े थे, भरतजी पीठ पीछे थे, इससे उन्होंने देखा नहीं।) और लखन ने जैसे ही सुना! वैसे ही वे भीतर से काँप गए! मन ही मन कहने लगे कि 'हे भगवान ऐसे प्रेमस्वरूप भरत भैया को मैं कुटिल और कुबंधु कह रहा था— 'कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनवास एकाकी'⁴⁴

42. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड, दोहा-239

43. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

44. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

अपराध हो गया है —कैसे शांति मिलेगी!’ अब इस ओर तो भाई भरतजी का सरस प्रेम और उधर स्वामी श्री रामचंद्रजी की सेवा की प्रबल परवशता— *‘बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा।’*⁴⁵ अब बाबा ने जो लक्ष्मण की मनःस्थिति का चित्रण किया है वह तो अद्भुत ही है। तुलसीदास जैसा कवि अपनी असमर्थता व्यक्त कर देता है कि कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मणजी के चित्त की इस गति (दुविधा) का वर्णन कर सकता है, दो तरह का संशय है मन में एक तो यह कि ‘न तो (क्षणभर के लिए भी सेवा से पृथक होकर) मिलते ही बनता है और न (प्रेमवश) छोड़ते (उपेक्षा करते) ही— *‘मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई।’*⁴⁶

इसलिए तुरंत प्रभु के चरणों की ओर गए लेकिन मन भरत की ओर लगा हुआ है। पहली बार लखन इधर से उधर गए हैं, वन जाने से पहले माता सुमित्रा के पास राम ने अनुमति लेने के लिए भेजा था। तब भी लक्ष्मण का मन राम और जानकी के पास ही था— *‘जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथ।’*⁴⁷ आत्मग्लानि से आँखों से आँसुओं की बूँदें उमड़ आईं, उन्होंने राम के चरणों में सिर रख दिया। भगवान के चरण—कमल भीग गए। भगवान की भाव समाधि भंग हुई। रामजी ने पूछा

‘लक्ष्मण प्रणाम क्यों कर रहे हो!’ (जदपि प्रभु जानत सब कारन)

लक्ष्मण ने कहा प्रभु प्रणाम नहीं कर रहा हूँ।

फिर कर तो रहे हो

‘मैं तो प्रणाम करके यह सूचना दे रहा हूँ कि कोई प्रणाम कर रहा है’

‘कौन’?

‘कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा।’⁴⁸

भरत नाम का क्या जादू है! राम ने जैसे सुना ‘भरत प्रनाम करत रघुनाथा’ तो रणधीर राम, धीर मुनि राम! प्रेम के कारण ही अधीर हो गए। हड़बड़ा कर उठे, कहीं पितांबर गिरा, कहीं धनुष गिरा, कहीं तरकश— *‘उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।’*⁴⁹

प्रभु को जाते हुए किसी ने नहीं देखा! सीधे भरत को उठाते देखा। भरत चरण छोड़ नहीं रहे थे, राम ने बरबस उठाकर हृदय से लगा लिया— *‘बरबस लिए उठाइ उर लाए—कृपानिधान।’*⁵⁰

45. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

46. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

47. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

48. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

49. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

50. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

भरत और राम के मिलन के समय मानो समय ही रुक गया हो, ऐसा प्रेम मिलन कि सब अपनी सुध भूल गए— 'भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान।'⁵¹

तुलसीदास लिखते हैं कि मिलन की प्रीति कैसे बखानी जाए? वह तो कविकुल के लिए कर्म, मन, वाणी तीनों से अगम है। दोनों भाई (भरतजी और श्री रामजी) मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को भुलाकर परम प्रेम से पूर्ण हो रहे हैं, उस श्रेष्ठ प्रेम को कौन प्रकट करे? कवि की बुद्धि किसकी छाया का अनुसरण करे? कवि को तो अक्षर और अर्थ का ही सच्चा बल है। नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है! भरतजी और श्री रघुनाथजी का प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेम को मैं कबुद्धि किस प्रकार कहूँ! भला, गौंडर की ताँत से भी कहीं सुंदर राग बज सकता है? (तालाबों और झीलों में एक तरह की घास होती है, उसे गौंडर कहते हैं।)

भरतजी और श्री रामचंद्रजी के मिलने का ढंग देखकर देवता भयभीत हो गए, उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। देवगुरु बृहस्पतिजी ने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेतें और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे—

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी।
परम पेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई।
कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई।
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा।
अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को।
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाज सुराग कि गौंडर ताँती।
मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी।
समुझाए सुरगुरु जड़ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे।।'⁵²

जब भरत और राम के मिलन के समय बाबा की वाणी मौन हो गई, तो बाबा के इस पाठक की वाणी तो स्वतः ही मौन हो जाएगी।



संपर्क

अमन कुमार, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग किरोड़ीमल कॉलेज, नार्थ कैंपस, यूनिवर्सिटी
एन्वलेव, दिल्ली-110007 मोबाइल-9310720047, ई-मेल: amanp62@kmc.du.ac.in

51. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

52. तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड

छत्तीसगढ़ी के कमार जनजातीय-समूह की 'कमारी' बोली का क्रिया-रूप

जयपाल सिंह प्रजापति*

छत्तीसगढ़ में मुख्य रूप से छत्तीसगढ़ी बोलने वाले 2011 की जनगणना के अनुसार 2.55 करोड़ जनसंख्या में से लगभग 62 प्रतिशत से अधिक है। छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 78,22,902 है जो छत्तीसगढ़ की कुल जनसंख्या का 30.60 प्रतिशत है। इसी तरह विशेष पिछड़े जनजातीय-समूहों—अबूझमाड़िया, कमार, बैंगा, बिरहोर, पहाड़ी कोरवा, भुजिया तथा पण्डो की कुल जनसंख्या 19,7,291 है। इसमें से कमार जनजातीय-समूह के लोगों की कुल जनसंख्या 26,530 है।¹ कमारी छत्तीसगढ़ के विशेष पिछड़े जनजातीय-समूह कमारों की बोली है। डॉ. हीरालाल शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'छत्तीसगढ़ ज्ञानकोष' में उल्लेख किया है कि कमारों की सर्वप्रथम चर्चा जबलपुर-प्रदर्शनी की जातिवैज्ञानिक समिति के प्रतिवेदन (1866 ई.) में हुई। वहीं कमारी बोली के संबंध में पहली बार चर्चा पी. एन. बोस (1980 ई.) ने की थी उन्होंने माना कि यह हल्बी के निकट है। जार्ज ग्रियर्सन से लेकर 1961 ई. के जनगणना-प्रतिवेदन में कमार को हल्बी की उपबोली माना गया।² हल्बी छत्तीसगढ़ के दक्षिण भौगोलिक-क्षेत्र बस्तर के हल्बा जनजातियों की बोली है। हल्बी को बहुविध स्रोतों से विकसित पिजिन विभाषा माना गया जिसे आर्य भाषा परिवार की बोली माना गया। ऐसे तथ्य मिलते हैं कि हल्बा जनजाति के लोग बस्तर के राजाओं के अंगरक्षक रहे। वहीं कमारों का न ऐसा कार्य और न ही बोली विकास के कोई इस तरह के संदर्भ मिलते हैं। हाँ, इस जनजाति के उद्भव और विकास के संबंध में आर. एस. रसेल एवं राय बहादुर हीरालाल ने कमार जनजातीय-समूह को गोड़ जनजाति की ही उप-शाखा माना है।³ (The Kamars of the Central Provinces are a purely aboriginal tribe and there is little doubt that they are an

* विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं छत्तीसगढ़ी विभाग, पंडित सुंदरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर।

1. Scheduled Tribe of Chhattisgarh, New Delhi : Census of India, 2011.
2. शुक्ल, हीरालाल, छत्तीसगढ़ ज्ञानकोष, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल 2006 पृ. 175
3. Russess R.S & hirala.l The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, London 1916. P. 323

offshoot of the Gonds, 1916, P. 323) ऐसा मान लेने से गोड़ों की भाषा 'गोड़ी' जिसे द्रविड़ भाषा परिवार के अंतर्गत मान लेने से मुरिया, दंडामी, माड़िया, अबुझमाड़िया के अधिक निकट कमारी बैठती है, हालाँकि उच्चारण भिन्नता के कारण कमारी, गोड़ी से अलग बोली बनाने की पक्षधर है। वर्तमान में कमारी बोली कमारी जनजातीय-समूह छत्तीसगढ़ के छह जिलों क्रमशः- गरियाबंद, महासमुंद, धमतरी, कांकेर, बलोदाबाजार तथा कोंडागाँव जिले के 408 गाँवों में निवासरत कमारों द्वारा बोली जाती है। प्रस्तुत आलेख कमारी बोली के क्रिया रूपों पर आधारित है।

क्रिया उसे कहते हैं जिस शब्द से किसी कार्य-व्यापार अथवा कार्य करना प्रकट होता हो। कमारी में क्रियाएँ इस तरह हैं, यथा- हासा (हँसना), बला (बोलना), धँवा (दौड़ना), खेला (खेलना), लिखा (लिखना), पढ़ा (पढ़ना), बसा (बैठना) इत्यादि। क्रिया धातुओं से बनती है। इसे यूँ कहें कि क्रिया का मूल रूप धातु है, जैसे- पढ़ना, खेलना, लिखना, तैरना आदि क्रियाओं में उनके धातु पढ़, खेल, लिख, तैर धातु हैं इन धातुओं में 'ना' जोड़ने से जो शब्द पढ़ना, खेलना, लिखना बने वे क्रिया के साधारण रूप हैं। ये रूप काल, वचन, लिंग के आधार पर परिवर्तित होते हैं, जैसे- पढ़ना से पढ़ूँगा, पढ़ूँगी, पढ़ा, पढ़ेगा इत्यादि।

कमारी बोली में क्रिया के ये रूप इस तरह देखने को मिलते हैं, यथा- 'हासा' क्रिया में हास (हँस), बला (बोल) में बोले, धँव (दौड़), खेल (खेल), लिख, (लिख), पढ़ (पढ़), बस (बैठ) कमारी की मूल धातुएँ हैं। धातु के अंत में 'आ' जोड़ने से कमारी क्रियाएँ बनी हैं।

कमारी बोली के क्रिया रूपों में काल, वचन, लिंग के आधार पर भिन्नता मिलती है। कमारी के क्रिया रूपों को समझने के लिए कमारी के क्रिया रूपों (काल, वचन, लिंग के आधार पर) का उल्लेख निम्नलिखित है-

(1)

सामान्य वर्तमान एकवचन (सामान्य निश्चयार्थ)	बहुवचन
उत्तम पुरुष आम जावंदे (मैं जाता हूँ)	आलोग जावंदे (हम जाते हैं)
मध्यम पुरुष तुम जाहदि (तुम जाते हो)	तुलोग जाहदि (तुम लोग जाते हो)
अन्य पुरुष हुना जादे (वह जाता है)	हुलोग जादे (वे लोग जाते हैं)

(2)

वर्तमान (अपूर्ण निश्चयार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष आम जावंदे (मैं जा रहा हूँ)		आलोग जावंद (हम जा रहे हैं)

मध्यम पुरुष	तुम जाहदि (तुम जा रहे हो)	तुलोग जाहदि (तुम लोग जा रहे हो)
अन्य पुरुष	हुनरार जादे (वह जा रहा है)	हुलोग जादे (वे लोग जा रहे हैं)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'जा' धातु से बनी 'जाना' क्रिया कमारी में क्रमशः जावंदे, जाहदि तथा जादे रूप में प्रयुक्त हुई है।

(3)

वर्तमान (अपूर्ण निश्चयार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जावॉं होतो (मैं जाता होऊँ)	आलोग जावॉं ठाता (हम जाते हों)
मध्यम पुरुष	तुम जाहदि होतो (तुम जाते हो)	तुलोग जाहदि होतो (तुम लोग जाते हो)
अन्य पुरुष	हुना जादे होतो (वह जाता हो)	हुलोग जादे होतो (वे जाते हों)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'जा' धातु से बनी 'जाता' क्रिया कमारी बोली में उत्तम पुरुष जावॉं मध्यम पुरुष में जाहदि तथा अन्य पुरुष में जादे रूप में प्रयुक्त हुई है

(4)

वर्तमान (पूर्ण निश्चयार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जावंदे (मैं जाता हूँ)	आलोग जावत ठाव (हम जाते जाते हैं)
मध्यम पुरुष	तुम जाहादे (तुम जाते हो)	तुलोग जाहादि (तुम लोग जाते हो)
अन्य पुरुष	हुना जात ठात (वह जाता है)	हुलोग जावत ठात (वे लोग जाते हैं)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'जा' धातु से बनी 'जाना' क्रिया कमारी बोली में उत्तम पुरुष एकवचन में जावंदे बहुवचन में जावत तथा मध्यम पुरुष एकवचन में जाहादे बहुवचन में जाहादि तथा अन्य पुरुष एकवचन में जात एवं बहुवचन में 'जावत' रूप में प्रयुक्त हुई है।

(5)

वर्तमान (सामान्य संभावनार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जावा होतो (यदि) मैं जाता होऊँ	आलोग जावंदे (यदि) जाते हों
मध्यम पुरुष	तुम जाहादे (यदि) तुम जाते हो	तुलोग जाहादे (यदि) तुम लोग जाते हो
अन्य पुरुष	हुना जावत आछत (यदि) वह जाता हो	हुलोग जात ठात (यदि) वे जाते हों

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'जा' धातु से बनी 'जाता, जाते' क्रिया एकवचन में उत्तम तथा अन्य पुरुष में 'जावा', जावत तथा अन्य पुरुष बहुवचन में 'जात' रूप में प्रयुक्त हुई है।

(6)

वर्तमान (पूर्ण संभावनार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जात ठाव गो (यदि) मैं जाता रहा होऊँ)	आलोग जावत ठाव (यदि) हम जाते हों)
मध्यम पुरुष	तुम जात ठाहास काय (यदि) तुम जाते रहे हो)	तुलोग जावत ठाहास (यदि) तुम लोग जाते रहे हो)
अन्य पुरुष	हुना जात आछत (यदि) वह जाता रहा हुआ हो)	हुलोग जावत ठात (यदि) वे जाते रहे (यदि) वे जाते रहे हुए हों)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'जा' धातु से बनी 'जाता, जाते' क्रिया एकवचन एवं बहुवचन में क्रमशः जात तथा जावत रूप में प्रयुक्त हुई है।

(7)

वर्तमान (आज्ञार्थ)	एकवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	तुम जाहा (तुम जाओ)	तुलाग जाहा (तुम/आप लोग जाएँ)
अन्य पुरुष	हुना जात (वह जाए)	हुलोग जात (वे जाएँ)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'जा' धातु से बनी 'जाओ, जाएँ' क्रिया मध्यम पुरुष एकवचन एवं बहुवचन में क्रमशः जाहा तथा अन्य पुरुष में जात' रूप में प्रयुक्त हुई है।

(8)

सामान्य भूत (सामान्य निश्चयार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जाहुन ठाव (मैं गया था)	आलोग जाहुन ठांव (हम गए थे)
मध्यम पुरुष	तुम जाहुन ठाहास (तुम गए थे)	तुलोग जाहुन ठाहास (तुम लोग गए थे)
अन्य पुरुष	हुना जाहुन ठात (वह गया था)	हुलोग जाहुन ठात (वे लोग गए थे)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'गया, गए' क्रिया तीनों पुरुषों के एकवचन एवं बहुवचन में क्रमशः जाहुन रूप में प्रयुक्त हुई है।

(9)

भूत (अपूर्ण निश्चयार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जात ठाँव (मैं जा रहा था)	आलोग जाहुन ठाँव (हम जा रहे थे)
मध्यम पुरुष	तुम जात ठाहास (तुम जा रहे थे)	तुलोग जाहुन ठाहास (तुम लोग जा रहे थे)
अन्य पुरुष	हुना जात ठात (वह जा रहा था)	हुलोग जाहुन ठात (वे लोग रहे थे)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'जा' धातु से बनी 'जाता' क्रिया क्रमशः जात एवं जाहुन रूप में प्रयुक्त हुई है।

(10)

भूत (पूर्ण निश्चयार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम धरुन ठाँव (मैं पकड़े हुआ था)	आलोग धरुन ठाँव (हम पकड़े हुए थे)
मध्यम पुरुष	तुम धरुन ठाहास (तुम पकड़े हुए थे)	तुलोग धरुन ठाहास (तुम लोग पकड़े हुए थे)
अन्य पुरुष	हुना धरुन ठात (वह पकड़े हुए था)	हुलोग धरुन ठात (वे लोग पकड़े हुए थे)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में 'पकड़' धातु से बनी 'पकड़ना' क्रिया धरुन रूप में प्रयुक्त हुई है।

(11)

भूत; सामान्य (संभावनार्थक)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम हुथा ठाँवा (यदि) मैं वहाँ होता)	आलोग हुआ हौवा (यदि) हम वहाँ होते)
मध्यम पुरुष	तुम हुथा होतास (यदि) तुम वहाँ होते)	तुलोग होथा होतास (यदि) तुम लोग होते)
अन्य पुरुष	हुना हुथार (यदि) वह वहाँ होता)	हुलोग हुथा आछत (यदि) वे लोग वहाँ होते)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में समापिका क्रिया 'होना' धातु से बनी 'होता, होते' क्रिया कमारी एकवचन में ठाँवा, होतास, हुथार तथा बहुवचन में हौवा, होतास, आछत रूप में प्रयुक्त हुई है।

(12)

भूत, :पूर्ण (संभावनार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम हुथा जावा जाले (यदि) मैं वहाँ जाता हुआ होता)	आलोग हुथा जात ठावा जाले (यदि) हम वहाँ जाते हुए होते)
मध्यम पुरुष	तुम हुथा जास ठास (यदि) तुम वहाँ जाते रहे होते)	तुलोग हुथा जात ठासात जाले (यदि) तुम लोग वहाँ जाते रहे होते)
अन्य पुरुष	हुना हुथा जात ठाता जाले (यदि) वह वहाँ जाते हुए होता)	हुलोग हुथा जात ठाता जाले (यदि) वे लोग वहाँ जाते हुए होते)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में समापिका क्रिया 'होना' धातु से बनी 'होता, होते' क्रिया कमारी एकवचन में हुथा रूप में प्रयुक्त हुई है।

(13)

भविष्य (सामान्य निश्चयार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जावाँ (मैं जाऊँगा)	आलोग जातास (हम जाएँगे)
मध्यम पुरुष	तुम जातास (तुम जाओगे)	तुलोग जातास (तुम लोग जाओगे)
अन्य पुरुष	हुनहा जाता (वह जाएगा)	हुलोग जाता (वे लोग जाएँगे)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में क्रिया 'जा' धातु से बनी 'जाओगे, जाएँगे' क्रिया कमाती एकवचन एवं बहुवचन में क्रमशः जावँ, जातास, जाता रूप में प्रयुक्त हुई है।

(14)

भूत (अपूर्ण निश्चयार्थक)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जात ठात (मैं जाता रहूँगा)	आलोग जात ठावँ (हम जाते रहेंगे)
मध्यम पुरुष	तुम जाहादे हातो (तुम जाते रहोगे)	तुलोग जात ठाहा (तुम लोग जाते रहोगे)
अन्य पुरुष	हुना जात ठाता (वह जाता रहेगा)	हुलोग जात ठाता (वे लोग जाते रहेंगे)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में क्रिया 'जा' धातु से बनी 'जाता, जाते' क्रिया कमाती एकवचन मध्यम पुरुष में जाहादे रूप में तथा एवं में जात रूप में प्रयुक्त हुई है।

(15)

भविष्य (पूर्ण निश्चयार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जात ठाव होतो (मैं जाता होऊँगा)	आलोग जावत ठावँ होतो (हम लोग जाते हुए होंगे)
मध्यम पुरुष	तुम जात ठातास तुलोग (तुम जाते होंगे)	जात ठाहास होतो (तुम लोग जाते होंगे)
अन्य पुरुष	हुना जात ठादे होतो (वह जाता रहा होगा)	तुलोग जातठाता होतो (वे लोग जाते रहे होंगे)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में क्रिया 'जा' धातु से बनी 'जाता, जाते' क्रिया कमाती एकवचन उत्तम, मध्यम, अन्य पुरुष में जात रूप में तथा में जावत, जात रूप में प्रयुक्त हुई है।

(16)

भविष्य (सामान्य संभावनार्थ)	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	आम जात ठावंदे (यदि) मैं जाता होऊँगा	आलोग जात ठावँ (यदि) हम जाते होंगे
मध्यम पुरुष	तुम जाहादे होतो (यदि) तुम जाते होंगे	तुलोग जाहादे होतो (यदि) तुम लोग जाते होंगे

अन्य पुरुष हुना जादे होतो हुलोग जादे होतो
(यदि) वह जाता होगा) (यदि) वे लोग जाते होंगे)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में क्रिया 'जा' धातु से बनी 'जाता, जाते' क्रिया कमारी एकवचन उत्तम, मध्यम, अन्य पुरुष में एकवचन एवं बहुवचन में जात, जाहादे, जादे रूप में प्रयुक्त हुई है।

(17)

भविष्य

(आज्ञार्थ)	एकवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष	तुम जातास (तुम जाओगे)	तुलोग जातास (तुम लोग जाओगे)
अन्य पुरुष	हुना जाहुन ठात (वह गया था/गई थी)	हुलोग जाहुन ठात (वे लोग गए थे)

उपर्युक्त उद्धरण में एकवचन एवं बहुवचन में क्रिया 'जा' धातु से बनी 'जाओगे, गए थे' क्रिया कमारी एक वचन मध्यम, अन्य पुरुष में एकवचन एवं बहुवचन में जातास, जाहुन रूप में प्रयुक्त हुई है।

कमारी बोली के क्रिया-रूप में हम पाते हैं कि 'जा' धातु से बनी क्रियाओं का रूप अलग-अलग काल, वचन के आधार पर भिन्न-भिन्न है। धातु रूप पर विचार करने पर कमारी बोली के क्रियाओं का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि उसमें विकारी क्रियाओं में सकर्मक और अकर्मक तथा अविकारी क्रियाएँ हैं। नीचे इसी आधार पर कमारी बोली के क्रिया रूप का विवेचन किया जा रहा है—

कमारी बोली में क्रिया के मुख्यतः दो भेद किए जा सकते हैं—

(1) सकर्मक क्रिया —

कमारी बोली में सकर्मक क्रिया है, यथा—

1. मनोहर जाहुन सौवया। (मनोहर गया और सोया)
2. घुघवा दिन मान सोवयदी। (उल्लू दिन में सोते हैं)
3. कुकड़ीन अंडा दयदी। (मुर्गी अंडा देती है)
4. कुकड़ो हा बासयदी। (मुर्गा बाँग देता है)
5. बोकड़ो घास खायदी। (बकरी घास खाती है)

उपर्युक्त उद्धरणों से पता चलता है कमारी बोली में सकर्मक क्रिया हैं। कमारी में इस क्रिया रूप का करण देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि उक्त वाक्यों में कार्य-व्यापार का फल कर्ता (मनोहर, घुघवा, कुकड़ीन, कुकड़ो, बोकड़ो) को छोड़कर कर्म (सौवया, सोवयदी, दयदी, बासयदी, खायदी) पर पड़ रहा है। उद्धरण 1 में 'जाहुन और सौवया' का फल मनोहर पर पड़ रहा है। इसी तरह 'सोवयदी', दयदी, बासयदी, खायदी का फल

प्रभाव क्रमशः घुघवा, कुकड़ीन, कुकड़ो, बोकड़ो पर पड़ रहा है। इस तरह देखें तो हिंदी की भाँति फल प्रभाव वाले शब्द उपरलिखित वाक्य में संज्ञाएँ हैं।

(2) अकर्मक क्रिया –

अकर्मक क्रिया युक्त कमारी में वाक्य हैं, यथा—

1. आम हुना के देख्यू। (मैंने उसे देखा)
2. हुनहा पुस्तक पढ़हीया। (उसने किताब पढ़ी)
3. हुनहा पैसा गिनया। (उसने पैसे गिने)
4. हुनहा पैसा निला। (उसने पैसा लिया)
5. हुना गोसी उठीया। (वह सुबह उठा)

उपर्युक्त उद्धरणों में देखें तो सभी में अकर्मक क्रिया हैं। कारण कार्य—व्यापार का फल कर्म (देख्यू, पढ़हीया, गिनयो, निला, उठीया) पर न पड़कर कर्ता (आम, हुनहा, हुना) पर ही है। उद्धरण 1 में देख्यू का फल आम (मैंने) पर है। इसी तरह पढ़हीया, गिनया, निला तथा उठीया का हुनहा तथा हुना पर।

कमारी बोली में क्रिया का अविकारी होना—

ऐसे कमारी शब्द भी हैं जिनमें कर्ता, लिंग, वचन, कारक, इत्यादि के कारण अर्थ परिवर्तन नहीं होता, यथा— आपन नाव साघा (अपना नाम बताओ), तुम नाव साघा (आप नाम बताओ) इन दोनों वाक्यों में 'नाव' शब्द का रूप परिवर्तित नहीं हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि सामान्यतः कमारी में अविकारी शब्दों का रूप लिंग, वचन, पुरुष के साथ एक जैसा ही रहता है। कमारी में इन अविकारी युक्त वाक्यों के मुख्यतः चार भेद किए जा सकते हैं। अविकारी शब्द मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं—

(क) क्रिया—विशेषण — जो शब्द क्रिया की विशेषता दर्शाते हैं, उन्हें क्रिया—विशेषण कहते हैं, कमारी में यथा—

1. हुना आधा—अधूरा काम करदे। (वह आधा—अधूरा काम करता है)
2. कोई काम के अधूरा न छाड़ना चाहिए। (कोई काम अधूरा नहीं छोड़ना चाहिए)
3. हुना बड़भारी काम करदे (वह बहुत काम करता है)

उपर्युक्त उद्धरणों में क्रमशः आधा—अधूरा, अधूरा, बड़भारी क्रिया—विशेषण हैं। ये क्रिया करदे (करता है), छाड़ना (छोड़ना) की मर्यादा को सुरक्षित रखे हैं।

(ख) संबंध—बोधक— जो शब्द संज्ञा अथवा सर्वनाम का वाक्य के दूसरे शब्दों के साथ संबंध जोड़ते हैं, उन्हें संबंध—बोधक कहते हैं। कमारी बोली में यथा—

1. खुड़सी उपरे पुस्तक आछय। (कुर्सी पर किताब है)
2. रानी खोली भीतरे बसा। (रानी कमरे के अंदर बैठी)
3. मनीसा सीढ़ीया चो उपरे—उपर जाहा। (मनीषा सीढ़ी के ऊपर से जाना)

उपर्युक्त उद्धरणों में 'उपरे', 'भीतरे', 'उपरे—उपर' शब्द संबंध बोधक हैं जो खुड़सी (कुर्सी), रानी (रानी) तथा मनीसा (मनीषा) संज्ञा को पुस्तक (किताब), खोली (कमरा), सीढ़ीया (सीढ़ी) आदि शब्दों के साथ संबंध जोड़ने के लिए हैं।

(ग) समुच्चय-बोधक अथवा योजक— जो शब्द अन्य शब्दों, वाक्यों अथवा वाक्यांशों को मिलाने का काम करते हैं, उन्हें समुच्चय-बोधक कहते हैं। कमारी में ऐसे वाक्य निम्नलिखित हैं—

1. छोयी अऊ गाय चो दुध बनियो माने जायदी कि छोयी चो दुध बनिया लागयदी (बकरी और गाय का दूध सुपाच्य माना जाता है, किंतु बकरी का दूध अच्छा मानते हैं)

उपर्युक्त उद्धरण में कमारी के 'अऊ' (और) 'कि' (किंतु) शब्द समुच्चय-बोधक हैं।

(घ) विस्मयादिबोधक — जिन शब्दों के द्वारा हर्ष, शोक, आश्चर्य आदि का भाव प्रकट होता है, उन्हें विस्मयादि-बोधक कहते हैं। कमारी में ऐसे वाक्य निम्नलिखित मिलते हैं—

1. अहा ! केधालो बड़े खेत हरे। (आहा! कितना बड़ा खेत है)
2. वाह! केतेक सुन्दर धान आछय। (वाह! कितनी सुंदर धान है)
3. अरे! तुम एलास। (अरे! तुम आ गए)
4. ओहो! योहा किसो होयलो। (ओह! यह क्या हो गया)
5. वाह! तुम पास होयलास। (वाह! तुम पास हो गए)

उपर्युक्त उद्धरणों में कमारी के 'अहा', 'वाह', 'अरे', 'ओहो', शब्द विस्मयादि-बोधक हैं।

इसी तरह ही कमारी ही अन्य क्रियाओं के संदर्भ भी लिए जा सकते हैं जो कमारी बोली में दैनंदिन लोक-जीवन में प्रयुक्त की जाती हैं, यथा— अङ्गाना (कुम्हलाना), अकाबकासी (घबराहट), आँटना (कराहना), कोदऊना (खुरचना), जोलतोहा (जोतना या हल चलाना), थाका (सुस्ताना), नागाँवा (छीनना), नाइयो (गाय, बकरी या भैंस के पैरों को बांधना/छांदना), मसका (मसलना), लुडाया (छिपना, छिपाना), वाहतोहा (भार उठाना) इत्यादि। यह सत्य है कि कमार जनजातीय-समूह अपनी बोली कमारी को अपने और अपने जीवन से मजबूती से जोड़े हुए है यह कमारों की विशेषता ही कही जानी चाहिए कि उन्होंने अपनी बोली को अब तक संरक्षित रखा है, बोली को एक सीमा तक परिवर्तन से बचाया है अन्यथा विश्व की अनेक बोलियाँ विलुप्त हो गई हैं या विलुप्त होने की कगार पर हैं।



संपर्क

जयपाल सिंह प्रजापति— विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं छत्तीसगढ़ी विभाग पं. सुंदरलाल शर्मा बहुगुणा मुक्त विश्वविद्यालय, छत्तीसगढ़ कोना—बिरकोना रोड, बिलासपुर, मध्यप्रदेश-495009, मोबाइल-9229703055, ई-मेल: singh.jaipal82@gmail.com

असमिया लोकसाहित्य में भारतीयता के रंग

नीतामणि बरदलै*

भारतीय संस्कृति अपनी प्राचीनता, निरंतरता और समन्वयशीलता के कारण विश्व की महान सांस्कृतिक परंपराओं में विशिष्ट स्थान रखती है। भाषाई, धार्मिक, जातीय और भौगोलिक विविधताओं के बावजूद भारतीय संस्कृति का मूल स्वर एकता, समन्वय, सहिष्णुता और लोकमंगल की भावना में निहित है। यही सांस्कृतिक चेतना भारतीयता के रूप में अभिव्यक्त होती है। लोकसाहित्य किसी भी समाज की सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक विरासत और जीवन-दृष्टि का प्रामाणिक दस्तावेज होता है। लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, लोकनाट्य, कहावतें तथा लोकविश्वास न केवल जनसामान्य के अनुभवों को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि वे उस समाज की सांस्कृतिक पहचान और मूल्यबोध को भी संरक्षित रखते हैं। पूर्वोत्तर भारत का प्रवेशद्वार कहे जाने वाले असम की लोकसंस्कृति अत्यंत समृद्ध, बहुआयामी और प्राचीन है। यहाँ आर्य, अनार्य, द्रविड़, तिब्बती-बर्मी तथा विभिन्न जनजातीय संस्कृतियों के दीर्घकालीन संपर्क और समन्वय ने एक विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण किया है। असमिया लोकगीतों, लोककथाओं, डाकवचनों तथा लोकनाट्यों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीयता केवल एक वैचारिक अवधारणा नहीं, बल्कि लोकजीवन में रची-बसी सांस्कृतिक अनुभूति है।

असमिया लोकगीत असम की लोकसंस्कृति, जनजीवन और सामूहिक भावनाओं की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं। ये गीत लोकमानस के सुख-दुःख, प्रेम-विरह, धार्मिक आस्था, प्रकृति-प्रेम, कृषि-जीवन तथा सामाजिक परंपराओं को स्वर प्रदान करते हैं। असमिया लोकगीतों में भारतीय सांस्कृतिक एकता का एक महत्वपूर्ण उदाहरण जगन्नाथ संस्कृति के रूप में भी दिखाई देता है। प्राचीन काल से ही असम में जगन्नाथ मंदिर की परंपरा और श्रद्धा का प्रभाव विद्यमान रहा है। लोकमान्यता है कि असम के हाजो में स्थित माधव मंदिर, पुरी के जगन्नाथ मंदिर का प्रतिरूप है। यह विश्वास असम और ओड़िशा के मध्य प्राचीन सांस्कृतिक संबंधों का

* अनेक पत्र-पत्रिकाओं में शोध आलेख प्रकाशित, संप्रति— सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय, असम)।

द्योतक है। असमिया लोकगीतों में जगन्नाथ की महिमा का वर्णन करते हुए गाया जाता है—

“उरेषात आछिला जगन्नाथ हरि।
राइजक आहिला अवतार धरि।
कि अश हरि, नगरे नगरे फूरे कीर्तन करि॥”

इस लोकगीत में जगन्नाथ को लोकमंगलकारी अवतार के रूप में स्मरण किया गया है, जो जनसामान्य के बीच भक्ति और कीर्तन का संदेश फैलाते हैं। यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि असमिया लोकसाहित्य क्षेत्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर भारतीय सांस्कृतिक और धार्मिक चेतना से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। कृष्ण भारतीय सांस्कृतिक चेतना के ऐसे लोकनायक हैं जिनकी लोकप्रियता क्षेत्रीय सीमाओं से परे संपूर्ण भारत में व्याप्त है। असमिया लोकसमाज में भी कृष्ण जन्म और उनकी लीलाओं से संबंधित अनेक गीत प्रचलित हैं। एक लोकगीत में कृष्ण जन्मोत्सव का उल्लास इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

“आजी नंदर घरे अ’ उठे उत्सवर रोल,
यशोदार पुत्र जन्मे, बाजे मृदंग खोल॥”¹

अर्थात् नंद के घर उत्सव का आनंद छाया हुआ है, यशोदा के पुत्र के जन्म पर मृदंग और खोल बज रहे हैं। इस लोकगीत में भगवान कृष्ण के जन्मोत्सव का उल्लासपूर्ण चित्रण किया गया है। जगन्नाथ और कृष्ण से संबंधित लोकगीत यह सिद्ध करते हैं कि असमिया लोकसाहित्य भारतीय धार्मिक—सांस्कृतिक परंपरा से गहरे रूप में अनुप्राणित है तथा भारतीयता की अखिल भारतीय चेतना को लोकभाषा और लोकसंस्कृति के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। राधा—कृष्ण के प्रेम का वर्णन भी असमिया लोकगीतों की एक विशिष्ट विशेषता है। राधा और कृष्ण के मिलन का दृश्य इस प्रकार अंकित है—

“अ’ कानाइ नाबाजायो बांसी,
बेर काटि याबा नरु चोवा तुमि आसि॥
करो आलिंगन कानाइक॥”²

इस लोकगीत में प्रेम, समर्पण और भक्ति का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यहाँ राधा और कृष्ण केवल प्रेमी—प्रेमिका नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सांस्कृतिक चेतना में निहित प्रेम, सौंदर्य और आध्यात्मिक अनुराग के प्रतीक हैं। लोकगीतों में भगवान राम की महिमा और आदर्श चरित्र का भी व्यापक चित्रण मिलता है। लोकविश्वास में

1. शर्मा, नवीन चंद्र, असमर लोक साहित्य, प्रथम संस्करण, गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन, 2014, पृ. 231,
2. वहीं, पृ. 236
3. नाथ, प्रफुल्ल कुमार, असमिया लोकसाहित्य आरू संस्कृति, प्रथम संस्करण, गुवाहाटी: अशोक प्रकाशन, 2019, पृ. 421

यह धारणा भी प्रचलित है कि भगवान राम स्वर्ग से तुलसी को पृथ्वी पर लेकर आए थे। तुलसी भारतीय संस्कृति में पवित्रता, श्रद्धा और धार्मिक आस्था का प्रतीक मानी जाती है। असम में काति बिहु के अवसर पर तुलसी रोपण करते समय गाया जाने वाला यह लोकगीत उल्लेखनीय है—

“आनिला तुलसी प्रभु राम गदाधरे।

*आनिला तुलसी प्रभु मनुष्य नगरे।।”*⁴

यह लोकगीत दर्शाता है कि असमिया लोकजीवन में धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक परंपराएँ किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। भारतीय सांस्कृतिक एकता का एक महत्वपूर्ण स्वर असमिया लोकगीतों में विभिन्न पर्व-त्योहारों के चित्रण में भी दिखाई देता है। फागू अथवा होली उत्सव इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। विशेष रूप से बरपेटा क्षेत्र में होली को दौल उत्सव के नाम से जाना जाता है। लोकगीतों में होली उत्सव की उमंग, सामूहिक आनंद और कृष्ण-भक्ति का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। एक लोकप्रिय लोकगीत में फागू उत्सव का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

“मनर उल्लासे फागू खेले नंदराज,

खेले रंग यशोमती।

*विरिंदा वन माजे आनंद मुरुति आजि होली।”*⁵

इन पंक्तियों में होली केवल रंगों का उत्सव नहीं है, बल्कि भक्ति, प्रेम और सामूहिक आनंद का उत्सव बनकर उभरती है। फागू या दौल उत्सव से संबंधित गीत न केवल धार्मिक आस्था को अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि भारतीयता की उस सांस्कृतिक भावना को भी पुष्ट करते हैं, जो विविध क्षेत्रों और समुदायों को एक साझा सांस्कृतिक अनुभव से जोड़ती है।

भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख आधार लोकमंगल की भावना है। भारतीय चिंतन में व्यक्ति की अपेक्षा समाज और समष्टि के कल्याण को अधिक महत्व दिया गया है। यही कारण है कि भारतीय पर्व-त्योहार केवल व्यक्तिगत उत्सव नहीं होते, बल्कि सामुदायिक सहभागिता और सामाजिक समरसता के अवसर भी होते हैं। असम में वैशाख मास में मनाया जाने वाला रंगाली बिहु केवल कृषि और ऋतु परिवर्तन का उत्सव नहीं, बल्कि सामूहिक जीवन के उल्लास और लोकमंगल का प्रतीक है। हुसोरी गीत असमिया लोकसंस्कृति की अत्यंत प्राचीन और महत्वपूर्ण धरोहर हैं। एक हुसोरी गीत में कहा गया है—

4. शर्मा, नवीन चंद्र, असम लोक साहित्य, प्रथम संस्करण, गुवाहाटी: ज्योति प्रकाशन, 2014, पृ. 239.

5. वहीं, पृ. 247.

“हुसोरी बाइ ओ दलौचराइ,
आमि जे आछो हुसोरी गाइ।
देउतार पदुलित गोंधाइछे मालती,
केतकी मलेमलाइ ए गोविंदाइ राम।।”⁶

इस गीत में गोविंद और राम का स्मरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह दर्शाता है कि असमिया लोकजीवन में स्थानीय सांस्कृतिक परंपराएँ भारतीय धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना से गहरे रूप में जुड़ी हुई हुसोरी परंपरा भारतीयता के उस आदर्श को मूर्त रूप देती है जिसमें समाज का प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के सुख और कल्याण की कामना करता है। यह परंपरा ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ की भारतीय भावना का लोकजीवन में साकार रूप है। इस प्रकार रंगाली बिहु और हुसोरी गीत असमिया लोकसाहित्य में भारतीयता के लोकमंगलकारी, सामुदायिक और सांस्कृतिक एकता के रंगों को अत्यंत सशक्त रूप से अभिव्यक्त करते हैं।

असम की अनेक पौराणिक लोककथाएँ वेदों, उपनिषदों, पुराणों और महाकाव्यों से प्रेरित हैं। इनमें भारतीय धार्मिक विश्वास, देवी-देवताओं की महिमा, नैतिक आदर्श तथा लोकआस्थाएँ एक साथ अभिव्यक्त होती हैं। असम की प्रसिद्ध पौराणिक लोककथाओं में नरकासुर और कामाख्या देवी की कथा विशेष उल्लेखनीय है। यह असम की स्थानीय सांस्कृतिक स्मृति को भारतीय पौराणिक चेतना से जोड़ती है। लोकप्रिय अलौकिक लोककथाओं में ‘तेजिमला’ का विशेष स्थान है। कथा में अलौकिक तत्वों का समावेश है, किंतु इसके केंद्र में सामाजिक यथार्थ, स्त्री-पीड़ा और न्याय की स्थापना का संदेश निहित है। इसी प्रकार ‘तुला और तेजा’, ‘पानशै’, ‘चम्पावती’ तथा ‘चिलनीर जियेकर साधु’ जैसी अनेक अलौकिक कथाएँ असमिया समाज में प्रचलित हैं। इन कथाओं में प्रेम, करुणा, त्याग, पारिवारिक संबंधों की मर्यादा, अन्याय के विरुद्ध संघर्ष और मानवीय संवेदनाओं का चित्रण मिलता है। ये मूल्य भारतीय संस्कृति की आधारभूत विशेषताएँ हैं। पंचतंत्र, हितोपदेश, बृहदकथा, बेतालपंचविंशति तथा जातक कथाओं की अनेक विशेषताएँ असमिया लोककथाओं में समाहित हैं। ‘राजहाँह आरु काउरी’ ‘बाघ आरु केकोरा’ तथा ‘शियाल पंडित’ जैसी अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं। इन कथाओं में पशु-पक्षियों को मानवीय गुणों से युक्त पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा उनके माध्यम से नीति, बुद्धिमत्ता, मित्रता, नैतिकता और जीवन-व्यवहार की शिक्षा दी जाती है। इस संदर्भ में साहित्यरथी लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ द्वारा संकलित प्रसिद्ध लोककथा-संग्रह ‘बूढ़ी आइर साधु’ का विशेष उल्लेख आवश्यक है। यह ग्रंथ असमिया लोककथाओं का अमूल्य भंडार है,

6. पाठक, हरeram, असमिया लोक साहित्य: एक विश्लेषण, प्रथम संस्करण, लखनऊ: गोपिका प्रकाशन, 2008. पृ.28

जिसमें लोकजीवन, लोकविश्वास, नैतिक आदर्श और सांस्कृतिक परंपराओं का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है।

लोकनाट्य ओजापालि केवल एक लोककलात्मक प्रस्तुति नहीं है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक एकता का भी सशक्त माध्यम है। इसकी कथावस्तु मुख्यतः रामायण, महाभारत, पुराणों तथा देवी-देवताओं से संबंधित आख्यानों पर आधारित है, जो भारत के विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से श्रद्धा और आस्था के विषय रहे हैं। ओजापालि की परंपरा भारतीय कथावाचन परंपरा से भी गहरे रूप में जुड़ी हुई है। उत्तर भारत में रामकथा और भागवत कथा, महाराष्ट्र में कीर्तन, बंगाल में कथावाचन तथा दक्षिण भारत में हरिकथा जैसी परंपराएँ लोकसमाज को धर्म, संस्कृति और नैतिक मूल्यों से जोड़ने का कार्य करती रही हैं। असम की ओजापालि इसी अखिल भारतीय कथावाचन परंपरा का एक विशिष्ट क्षेत्रीय रूप है। कथावाचन परंपरा से उसका संबंध यह प्रमाणित करता है कि भारतीय संस्कृति की मूल चेतना विविध रूपों में अभिव्यक्त होने के बावजूद एक ही सांस्कृतिक सूत्र से बँधी हुई है। यह भाव वास्तव में एक भारत श्रेष्ठ भारत की अवधारणा को साकार करता है, जहाँ क्षेत्रीय अभिव्यक्तियाँ राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता को समृद्ध बनाती हैं। असमिया लोकनाट्य परंपरा में खुलिया भाउना का भी विशेष स्थान है। खुलिया भाउना के अंतर्गत 'लवण दैत्य वध', 'सीता स्वयंवर', 'सिंधुमणि वध', 'रावण वध' आदि नाटक भारतीय महाकाव्यों और पौराणिक आख्यानों पर आधारित हैं। पुतलाभिनय, धुलिया भाउरिया, कुशान पाला तथा धूरानाट जैसी लोकनाट्य परंपराएँ भारतीय सांस्कृतिक चेतना की संवाहक रही हैं। इन लोकनाट्यों के माध्यम से धर्म, सत्य, न्याय, भक्ति, लोकमंगल और नैतिक आदर्शों का प्रसार किया जाता है, जो भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्व हैं।

असमिया लोकसाहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग डाकवचन है। कृषि, ऋतु-चक्र, पारिवारिक संबंध, सामाजिक व्यवहार और नैतिक मूल्यों से संबंधित अनेक डाकवचन आज भी जनजीवन में प्रचलित हैं। ज्योतिष, स्वास्थ्य, कृषि और जीवन-व्यवहार से संबंधित डाकवचन भारतीय लोकबुद्धि के परिचायक हैं। लोकानुभव पर आधारित ये कथन रोग-निवारण और स्वस्थ जीवन पर बल देते हैं जैसे—

"जालुक पीपली आदा खाई,

डाके बोले तार काह पलाई।"

अर्थात् जो व्यक्ति काली मिर्च, पीपली और अदरक का सेवन करता है, वह कफ संबंधी रोगों से बचा रहता है। यह डाकवचन भारतीय आयुर्वेदिक परंपरा तथा

7. शर्मा, सत्येंद्रनाथ, डाक वचन: लोकज्ञान और कृषि-संस्कृति, प्रथम संस्करण, गुवाहाटी: वाणी मंदिर, 2008, पृ. 40.

लोकचिकित्सा ज्ञान की ओर संकेत करता है। इस प्रकार डाकवचन भारतीय ज्ञान-परंपरा, आयुर्वेद, ज्योतिष और लोकानुभव के जीवंत दस्तावेज हैं, जिनमें भारतीयता का व्यावहारिक और जीवनोपयोगी स्वरूप प्रतिबिंबित होता है।

असमिया लोकसाहित्य असम की सांस्कृतिक स्मृति, लोकजीवन और सामूहिक चेतना का सजीव दस्तावेज है। यद्यपि इसकी उत्पत्ति और विकास स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में हुआ है, तथापि इसकी मूल संवेदना भारतीय संस्कृति की व्यापक धारा से गहरे रूप में जुड़ी हुई है। असमिया लोकगीतों, लोककथाओं, लोकनाट्यों, डाकवचनों तथा लोकविश्वासों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीयता के विविध आयाम इनमें सशक्त रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। असमिया लोकगीतों में राम, कृष्ण, राधा, जगन्नाथ तथा विभिन्न भारतीय पर्व-त्योहारों का उल्लेख भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक एकता का परिचायक है। बिहु, हुसोरी और फागू गीतों में लोकमंगल, सामूहिकता, उत्सवधर्मिता और प्रकृति-प्रेम जैसे भारतीय जीवन-मूल्य प्रतिबिंबित होते हैं। इसी प्रकार लोककथाओं में रामायण, महाभारत, पुराण, पंचतंत्र, हितोपदेश और जातक परंपरा का प्रभाव भारतीय कथा-संस्कृति की निरंतरता को प्रमाणित करता है। नरकासुर-कामाख्या आख्यान, तेजिमला जैसी कथाएँ तथा पशु-पक्षियों पर आधारित नीति-कथाएँ भारतीय लोकबुद्धि, नैतिकता और सांस्कृतिक विश्वासों की वाहक हैं। लोकनाट्य परंपराओं ओजापालि, खुलिया भाउना, कुशान पाला, पुतलाभिनय, धुलिया भाउरिया और धूरानाट में भारतीय महाकाव्यों, पुराणों, भक्ति परंपरा तथा कथावाचन की अखिल भारतीय धारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वहीं डाकवचनों में भारतीय ज्ञान-परंपरा, ज्योतिष, आयुर्वेद, लोकानुभव और व्यावहारिक बुद्धि का सुंदर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः असमिया लोकसाहित्य में स्थानीयता और राष्ट्रीयता, लोक और शास्त्र, क्षेत्रीयता और भारतीयता का जो सुंदर समागम दिखाई देता है, वही भारतीय संस्कृति की वास्तविक शक्ति है। इस दृष्टि से असमिया लोकसाहित्य न केवल असम की सांस्कृतिक धरोहर है, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक एकता, समन्वय और विविधता में एकता की भावना का भी एक सशक्त एवं जीवंत प्रतीक है।



संपर्क

नीतामणि बरदलै— सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, डिगबोई महिला महाविद्यालय, डिगबोई (डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय) असम-786171,

मो.—6913412180, ई-मेल: nitamoni.dmm@gmail.com

दमण की काली रेत और लहरों के सानिध्य में

कुबेर कुमावत*

भारत के पश्चिमी राज्य गुजरात के दक्षिण दिशा में और अरब सागर के किनारे बसे केंद्रशासित प्रदेश दमण की मैं बात कर रहा हूँ। यह भारत का अत्यंत सुंदर, शांत, सौम्य और प्रदूषणरहित तटीय शहर है। इस नगर के इतिहास के विषय में कहा जाता है कि 1523 ईसवी में एक पुर्तगाली यात्री जिसका नाम डियागो डी मेलो था और जो ऑर्म्स की ओर जा रहा था तब एक भयंकर तूफान के कारण उनकी नाव दिशाहीन हो गई और वह संयोगवश दमण के तट पर पहुँच गया। इसके बाद यह प्रदेश पुर्तगाली उपनिवेश का हिस्सा बन गया और लगभग 400 वर्ष तक यहाँ पुर्तगाली शासन रहा। स्वतंत्रता के बाद सन् 1991 में भारतीयों ने इस प्रदेश को पुर्तगाली शासन से मुक्त कराया। लगभग 72 वर्ग किलोमीटर वर्ग में फैला यह प्रदेश भारत का अत्यंत सुंदर और शांत प्रदेश है। दमणगंगा नदी के कारण यह नगर नानी दमण और मोटी दमण इन दो भागों में विभाजित है। दमणगंगा नदी पर बने पुल पर यदि हम सागर की ओर मुँह करके खड़े हो जाएँ तो हमारे दाईं ओर नानी दमण पड़ता है तो बाईं ओर मोटी दमण। नानी का अर्थ है छोटा पर आप नाम पर न जाए। जो नानी दमण है वह असल में बड़ा है और जो मोटी दमण है वह आकार में छोटा। मोटी दमण अपनी प्राचीन पश्चिमी वास्तुकला, ऐतिहासिक एवं भव्य किले और चर्च के लिए विशेष प्रसिद्ध है। यहाँ के लंबे समुद्री तट का नाम जैम्पोर बीच है और तट से लगकर ही यह प्राचीन ऐतिहासिक किला है। नानी दमण यद्यपि मोटी दमण से कुछ अधिक आधुनिक है और विशेषकर वाणिज्यिक गतिविधियों का केंद्र है। नानी दमण की अपेक्षा मोटी दमण अधिक शांत और सुंदर है। खान-पान की दुकानें, होटल्स, रेस्टोरेंट्स, रिसोर्ट्स और बाजार नानी दमण में अधिक है। नानी दमण का समुद्र तट भी विशाल और लंबा है जिसका नाम देवका बीच है। इन दोनों समुद्र तटों पर सूर्यास्त का दृश्य अत्यंत सुंदर एवं विहंगम प्रतीत होता है। दमण नगर का संबंध महाराष्ट्र से अधिक निकट का है वह इसलिए कि जिस दमणगंगा नदी के नाम पर इसका नामकरण हुआ है उसका उद्गम स्थल नासिक के डिंडौरी तहसील में सह्याद्री

* प्रोफेसर हिंदी विभाग, प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर, जलगाँव, महाराष्ट्र यह बहुमुखी साहित्यकार, कवि, लेखक, आलोचक, चिंतक, डायरीकार है।

पर्वतमाला में बसे अंबेगाँव के पास है। इस उद्गम स्थल से यह नदी लगभग 131 किलोमीटर की यात्रा करती हुई दमण शहर को बीच से काटती हुई अरब सागर में मिल जाती है।

इस बार दमण की मेरी यह यात्रा एक साहित्यिक आयोजन के उद्देश्य से संयोगवश संपन्न हुई। दिनांक 22 जून, 2026 की प्रातः ढाई बजे मैं ट्रेन से दमण पहुँचा। यह समय 21 जून की मध्यरात्रि भी कहा जा सकता है। अपने गृहनगर अमलनेर से 21 जून की शाम में 7:30 बजे की खानदेश एक्सप्रेस से मैं रात में 2 बजे गुजरात राज्य के वापी स्टेशन पर पहुँचा। इस ट्रेन को यद्यपि डेढ़ बजे ही वापी स्टेशन पहुँचना चाहिए था पर यह अमलनेर से ही कुछ विलंब से चल रही थी। आप तो अच्छी तरह जानते हैं कि समय पर आगमन और प्रस्थान को लेकर भारतीय ट्रेनों की क्या स्थिति है। प्राप्त जानकारी के अनुसार कुल ट्रेनों में से केवल दस से पंद्रह प्रतिशत ट्रेनें ही समय पर चलती हैं। खैर, वापी स्टेशन पर पहुँचने से आधा घंटा पूर्व ही मैंने भाई डॉ. पुखराज जांगिड़ को फोन कर दिया था कि मैं किस समय पर पहुँच रहा हूँ। यद्यपि इतनी रात्रि में उन्हें फोन करना और स्टेशन तक बुलाना मुझे कतई अच्छा नहीं लग रहा था पर मैं क्या करता? मुझे लग रहा था कि उन्होंने टैक्सी या कार की कोई व्यवस्था कर रखी होगी। मेरे लिए ट्रेन से दमण की यह यात्रा एकदम नई थी और इस यात्रा से पूर्व ही मैं उन्हें अपने आगमन और वापसी की स्थिति से अवगत करा चुका था। छरहरी देह के और फुर्तीले लगने वाले पुखराज भाई स्टेशन के मुख्य द्वार पर ही मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। लंबा चेहरा, सीधी नुकीली नाक और जाटों की जैसी मूँछें रखे हुए पुखराज जी को मैंने उनकी किसी को तलाशती नजरों से ही पहचान लिया और उन्होंने मुझे भी। वापी स्टेशन से दमण की दूरी कुल दस किलोमीटर की है। इतनी रात्रि में भाई पुखराज जी अपना स्कूटर लेकर पहुँचे थे। मुझे उन्हें इस तरह जोखिम लेकर स्टेशन बुलाने पर कुछ अपराधबोध—सा लग रहा था पर मैं इसे व्यक्त नहीं कर सकता था। “अतिथि देवो भव” की अपनी महान भारतीय परंपरा में अतिथि के लिए कष्ट उठाना एक साधारण—सी बात मानी गई है पर आज के समय में यह आतिथ्य भावना दुर्लभ है इसलिए मैं उनसे अभिभूत हुए बिना न रह सका। वें स्कूटर बहुत तेज चला रहे थे। रास्ते में आवारा कुत्तों की उपस्थिति देखकर मैंने उन्हें स्कूटर थोड़ी धीमी गति से चलाने को कहा। इन आवारा कुत्तों के कारण हमारे देश में हर वर्ष सैकड़ों लोगों की जान चली जाती है। जब भी मैं घर से बाहर किसी अन्य व्यक्ति के साथ बाईक या कार से प्रवास करता हूँ तो प्रायः अपनी सुरक्षा के लिए चिंतित हो ही जाता हूँ। इस समय भी हो गया था पर सकुशल अतिथियों के लिए बुक किए गए होटल में पहुँच गया। यह होटल वापी से दमण जाने वाले कुंटा रोड पर है और मशाल चौक के बगल में ही स्थित है। इस कुंटा रोड की भी अपनी कथा है जो महाभारत की कुंती से संबंधित है। वास्तव में यह मशाल चौक, चौक न होकर एक तिराहा है

जहाँ से एक रास्ता दाईं ओर दमण हवाई अड्डे की ओर जाता है तो दूसरा रास्ता जो वापी से सीधा आ रहा है देवका बीच और नानी दमण के मुख्य मार्केट की ओर चला जाता है। यात्रा से कुछ अधिक थका होने के कारण अपनी सारी निजी डिटेल्स रिसेप्शन काउंटर पर दर्ज करने के बाद मैं होटल की पाँचवीं मंजिल पर अपने कमरे में जाकर लेट गया और मुझे कब नींद आई इसका पता भी न चला।

दमण की मेरी यह यात्रा केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के सौजन्य से संपन्न हो रही थी। केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली एवं हिंदी विभाग, राजकीय कॉलेज दमण के संयुक्त तात्वावधान में दिनांक 22 एवं 23 जून को “यात्रावृत्तांत एवं भारतीयता” इस विषयपर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया था। इस संबंध में 11 जून को ही मुझे केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली द्वारा एक निमंत्रण पत्र भेजकर अवगत करा दिया गया था। मुझे निमंत्रित करते हुए यह सूचित किया गया था। जबकि मैं इस विषय का मर्मज्ञ हूँ और मेरे अनुभव तथा विशेषज्ञता को ध्यान में रखते हुए मुझे इस संगोष्ठी में “बाहरी विशेषज्ञ” के रूप में आमंत्रित किया जा रहा है। यह विषय मेरी रुचि के अनुकूल है और इस दायित्व के योग्य मुझे समझने के लिए मैं निदेशालय के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। दूसरी बात यह कि अपने प्राध्यापकी के अब तक के कार्यकाल में मैं पहली बार हिंदी यात्रावृत्त विधा पर आयोजित यह राष्ट्रीय संगोष्ठी देख रहा हूँ। हिंदी साहित्य की नवीन विधाओं जैसे डायरी, संस्मरण, यात्रावृत्त, निबंध, साक्षात्कार, स्तंभलेखन आदि में मेरी प्रारंभ से रुचि रही है। इसीलिए इस विषय को लेकर मैं कुछ अधिक ही उत्साहित था। इस संगोष्ठी में यात्रावृत्त लेखन में भारतीयता को देखने की विशेष अपेक्षा रखी जाने के कारण मैं अपने साथ नरेश मेहता के “साधू न चले जमात” और सतीश कुमार के “बिना पैसे के दुनिया का पैदल सफर” इन दो यात्रावृत्तों तथा अपने द्वारा लिखित एवं विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित यात्रावृत्तों के पन्ने भी लेकर गया था। यात्रावृत्त लेखन विधा के प्रति छात्रों और अध्यापकों को विशेष रूप से प्रेरित करना मेरा मुख्य प्रयोजन था। 22 जून की प्रातः दस बजे तक स्नान कर मैं अपने को तैयार कर चुका था। होटल में ही मैंने नाश्ता मँगा लिया था। नाश्ते में पावभाजी, शीरा और मक्खन लगे ब्रेड स्लाइड से लगभग भरपेट भोजन करने जैसी अनुभूति मुझे हो चुकी थी। वें अकेले ही काफी भागदौड़ कर रहे हैं ऐसा मुझे लगा। महाविद्यालय और होटल के बीच की दूरी अधिक नहीं थी। महाविद्यालय के पुराने प्रवेश द्वार से भीतर प्रवेश करते ही हरे-भरे, शांत तथा भव्य एवं विशाल इमारतों से युक्त परिसर ने पहली ही दृष्टि में मुझे आकर्षित कर लिया। महाविद्यालय की एक प्राचीन इमारत अब खंडहर में बदल चुकी थी और ठीक उसके बगल में ही एक नवनिर्मित इमारत में महाविद्यालय का अध्ययन एवं अध्यापन का कामकाज चल रहा था। कुछ नई विशाल निर्माणाधीन इमारतों के शिल्प एवं स्थापत्य ने मुझे और अधिक आकर्षित किया। इमारतों के

आर्किटेक्चर पर सरकार कितना खर्च करती है। इतना खर्च करने के बाद भी वास्तविक शिक्षा तथा अध्ययन एवं अध्यापन के प्रति समाज की उदासीनता एक नया प्रश्न निर्माण करती है। कहीं हम उत्तम शिक्षा को लेकर दिखावे पर तो अधिक बल नहीं दे रहे हैं? कुछ समझ में नहीं आता।

महाविद्यालय की नई इमारत की दूसरी मंजिल पर संगोष्ठी स्थल था। संगोष्ठी स्थल की ओर जानेवाले मार्ग और सीढ़ियों पर सुंदर अप्रतिम रंगोली बनाई हुई थी। संगोष्ठी हॉल में ठीक मुख्य मंच के समक्ष वारली चित्रकला की ओर एक सुंदर एवं मोहक रंगोली ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। सर्वप्रथम तो मुझे यह लगा कि यह कोई कालीन बिछाया गया है परंतु उसपर पैर रखने से पूर्व ही मैं सचेत हो गया। बाद में बताया गया कि यह सभी रंगोलियाँ किसी प्रोफेशनल कलाकार के द्वारा नहीं बल्कि महाविद्यालय की छात्राओं द्वारा ही बनाई गई हैं।

इस तरह की सुंदर और आकर्षक संकल्पना से युक्त आयोजन निदेशालय द्वारा समय-समय पर देश के सुदूर हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में कार्यान्वित होते रहेंगे ऐसी अपेक्षा करता हूँ। इस संगोष्ठी में उपस्थिति के कारण ही मेरा गुजराती एवं हिंदी साहित्य के अनेक सुधी विद्वानों, अध्यापकों एवं साहित्यकारों से परिचय हुआ मुझे प्रायः अपने जीवन में आनेवाले नए-नए लोगों से मिलकर विशेष आनंद की अनुभूति होती है। पहले से यह कौतूहल बना रहता है कि इस नए स्थान पर अब कुछ नए लोगों से मिलना होगा। अब ये सभी मित्र और यहाँ का अनुभव मेरे लिए अविस्मरणीय घटना बन चुकी है। दोपहर के भोजन में विशेष रूप से खमण, आमरस और आलू डिंगरी की सब्जी का स्वाद याद रहेगा।

अब इस नगर का इन दो दिनों में शाम को मैंने जो भ्रमण किया उस विषय पर आता हूँ। यद्यपि इससे पूर्व सन् 2024 में मैं सपरिवार दमण की यात्रा कर चुका था। तब मेरा इस नगर में किसी से कोई परिचय नहीं था। नासिक से डहाणू बीच, घोलवड, बोर्डी बीच और फिर दमण ऐसी यह तीन से चार दिनों की यात्रा संपन्न हुई थी। इस रास्ते में चीकू के बागान काफी अधिक थे। मोटे रसीले चीकुओं, आम, पपई, जामुन आदि फलों का स्वाद लेते हुए हम दमण की ओर बढ़े थे। इसी यात्रा में मेरा परिचय 'ताटगोळ' नामक एक नए फल से हुआ था। इस फल को अंग्रेजी में 'आइस एप्पल' और हिंदी में 'ताडीफल' कहा जाता है। यह एक गोलाकार फल होता है जिसके भीतर जेली जैसा मुलायम एवं पानीदार अंश मिलता है जिसे लोग मजे से खाते हैं। गरमी के दिनों में और विशेषकर डीहाइड्रेशन में यह फल खाना शरीर के लिए फायदेमंद होता है। इस फल के अनेक पेड़ हमें डहाणु से घोलवड की यात्रा में मिले। मुंबई से पालघर, डहाणु, घोलवड तक का क्षेत्र अपर कोंकण कहा जाता है। घोलवड से कुछ आगे बढ़ने के बाद गुजरात राज्य की सीमा में प्रवेश हुआ और फिर केंद्रशासित प्रदेश

दमण में। उस समय दमण के विषय में मुझे अधिक जानकारी नहीं थी। तब जैम्पोर और देवका बीच के नाम तक मैंने नहीं सुने थे। उस समय इस नगर के इन दोनों समुद्री तटों पर उत्तम आधुनिक स्थापत्य शैली में बन रही सड़क और दीवारों का कार्य निर्माणाधीन था। 22 जून की शाम में मैंने भाई पुखराज जी से अनुरोध किया कि कहीं से मेरे लिए एक स्कूटर का प्रबंध कर दे और उन्होंने बिना किसी संकोच के अपनी ही स्कूटर की चाबी मेरे हाथों में थमा दी। शाम को छह बजे के आसपास मैं स्कूटर से दमण नगर के भ्रमण पर निकल गया। सर्वप्रथम देवका बीच पहुँचा तो देखा कि तटीय सड़क बहुत ही सुंदर बन गई है और यह सड़क सागर किनारे से जुड़ी हुई है। आधुनिक कोर्निश एवं मोल्डिंग स्थापत्य शैली के खंभों और द्वारों से सागर किनारे को अत्यंत सुंदर, आकर्षक और भव्य रूप प्रदान किया गया है। समुद्र की काली रेत पर उछलती लहरों को देखकर मन हर्ष से भर जाता है। काली रेत के कारण ही समुद्र का जल और लहरें भी घनी काली दिखाई देती हैं। जैसे कि मैं कह चुका हूँ कि यह देवका बीच नानी दमण का हिस्सा है और मोटी दमण का बीच जो काफी लंबा और विस्तृत है उसे जैम्पोर बीच कहते हैं। यहाँ पर ऐसी ही लंबी सुंदर एवं आकर्षक सड़क बनी हुई है। ऐसा लगता नहीं है कि हम भारत में हैं। लगता है किसी पश्चिमी देश का हम भ्रमण कर रहे हैं। देवका बीच से स्कूटर से आगे बढ़ते हुए मैं उस स्थान पर आ गया जहाँ दमणगंगा नदी समुद्र में मिलती है। इस स्थान पर लकड़ी से निर्मित कई नावें अपना लंगर डाले खड़ी थीं। यहाँ से मैं सीधे मोटी दमण नहीं जा सकता था इसलिए पलटकर फिर से दाईं ओर ऊपर जाती हुई सड़क पर चढ़ते हुए चाइना मार्केट के रास्ते एक बड़े और विशाल चौड़े चौराहे पर पहुँच गया। इस चौराहे से दाईं ओर जाते हुए एक रास्ते पर मुड़ गया और दमणगंगा नदी पर बने पुल को पार करते हुए तथा अपने बाईं ओर बने ऐतिहासिक किले के बीच से गुजरती हुई सड़क से फिर से दमणगंगा नदी के तट पर आ गया। किले के द्वार से बाईं ओर घूमकर आगे बढ़ते हुए ठीक जैम्पोर बीच लाइट हाउस वाले हिस्से पर पहुँच गया। इसके निकट कुछ टहलने के बाद मैं फिर से फोर्ट के बीच बने रास्ते से और दमणगंगा नदी पर बने पुल को पार करते हुए तुरंत ही नानी दमण आ गया। नानी दमण के प्रसिद्ध मार्केट जिसे चाइना मार्केट या फिर दुबई मार्केट भी कहा जाता है, के बीच प्रवेश कर भ्रमण किया। इस मार्केट में ज्यादातर स्त्रियों के काम की वस्तुओं की दुकानें ही अधिक थीं जिनमें तैयार कपड़े, चूड़ियाँ, परफ्यूम, हैंड बैग्स की शॉप्स उल्लेखनीय हैं। अब तक सूरज डूब चुका था और इस मार्केट के सामने वाली सड़क सुंदर और भव्य रोशनाई से जगमगा उठी थी। यहाँ सड़क के बीचोबीच भी अनेक आकर्षक लाइट्स लगे थे जो सड़क को मनमोहक रूप प्रदान कर रहे थे। यह सड़क सीधे देवका बीच की ओर जाकर समाप्त होती थी। इस सड़क पर ज्यादातर फास्ट फूड की दुकानें थीं और ज्यादातर लोग

गुजराती व्यंजन और रोल टाइप कुछ खाद्य पदार्थ बड़े मजे से खा रहे थे। अनेक रेस्टोरेंट और बार भी मुझे यहाँ दिखाई दिए।

दमण नगर वास्तव में अधिक बड़ा नहीं है। लगभग पाँच से छह किलोमीटर के दायरे के भीतर आप दमण का भ्रमण कर सकते हैं। भाषा की यहाँ कोई विशेष दिक्कत आती नहीं है और अधिकांश लोग हिंदी बोलते और समझते हैं। संभवतः यह प्रभाव दमण के केंद्रशासित प्रदेश होने के कारण है। परंतु यहाँ आपको अधिकांश गुजराती भाषी लोग ही मिलेंगे। दुकानों के बोर्ड अंग्रेजी और गुजराती भाषा में ही मिलेंगे पर कुछ हिंदी में भी मिलेंगे। सरकारी सूचनाएँ और फ़लक हिंदी और अंग्रेजी दोनों में मिलते हैं। आकर्षक पाश्चात्य स्थापत्य शैली के घर, किले और काली मुलायम रेत वाले सुंदर किनारे ही यहाँ का मुख्य आकर्षण है और दूसरा आकर्षण है काफी सस्ती शराब का मिलना। गुजरात और महाराष्ट्र के शराब पीने के शौकीन लोगों के लिए दमण स्वर्ग के समान है। गुजरात में जबकि शराब पर पाबंदी है इसलिए अधिकांश गुजराती मद्यप्रेमी लोगों के लिए दमण पहली पसंद है। यहाँ पर मद्यपान को लेकर कोई विशेष प्रतिबंध नहीं है और गोवा के समान एकदम खुला माहौल है। यही कारण है कि यह नगर भारत के अन्य नगरों से बिलकुल भिन्न है। शेष भारत में मद्यपान को लेकर भारी अज्ञान मिलता है और इसे चारित्रिक पतन का कारण माना जाता है पर सच्चाई यह है कि पीते बहुत लोग हैं। कोई अपने को बुरा व्यक्ति न समझ ले इसलिए उत्तम एवं सद्चरित्र के लोग दूसरों से छुपकर मदिरापान करते हैं। दरअसल यह उनकी विवशता है। लगभग गोवा के समान ही आपको यहाँ पर स्थान-स्थान पर लिकर शॉप मिल जाएगी। यहाँ की सड़कें भी काफी सुंदर और स्वच्छ हैं। सड़कों पर स्थान-स्थान पर गति एवं दिशादर्शक फलक मिलते हैं। सड़क के दोनों ओर फुटपाथ बने हुए हैं और इन्हें लंबी मजबूत रेलिंग से सड़क से काटा गया है। फिर भी अनेक लोग अपने दोपहिया वाहन इस रेलिंग के निकट ही पार्क करते हैं।

दूसरे दिन यानी 23 जून को मुझे फिर से स्कूटर से घूमने का अवसर मिला और इस बार मेरे साथी थे डॉ. कन्हैयालाल भट्ट। इस बार मैंने उनके साथ दोबारा नानी और मोटी दमण का भ्रमण किया। कन्हैयालाल जी अपने मोबाइल से बहुत अच्छे फोटो खींच लेते हैं। विशेषकर सूर्यास्त के समय उन्होंने मेरी बहुत सुंदर तस्वीरें खींची। दो बालकों के साथ किनारे पर फोटोशूट कर रहे एक दंपति की भी उन्होंने फोटो लेने के मामले में उत्साह से सहायता की। कन्हैयालाल जी गुजराती और हिंदी के बहुत अच्छे साहित्यकार हैं और काफी मिलनसार व्यक्ति हैं। रात में लगभग साढ़े आठ बजे के आसपास हम दोनों होटल लौट आए। मेरी रात में ढाई बजे वापी से वापसी की ट्रेन थी। रात में ठीक दस बजे के आसपास तेज बारिश प्रारंभ हो चुकी थी। यद्यपि भाई पुखराज जी ने मुझे वापी स्टेशन ड्रॉप करने का वादा किया था। पर मैंने उन्हें मना कर दिया और होटल के मैनेजर भाई तिवारी से किसी टैक्सी या ऑटो का प्रबंध

करने को कहा। उन्होंने तुरंत एक टैक्सी का प्रबंध कर दिया। रात के डेढ़ बजे टैक्सीवाला आ गया जिसने वापी स्टेशन छोड़ने के मुझसे पाँच सौ रुपये लिए। अब मैं स्टेशन पहुँच चुका था। बारिश कुछ धीमी हो चुकी थी। ट्रेन लगभग एक घंटा विलंब से आ रही थी। इसलिए मैंने स्टेशन पर टहलते हुए समय बिताया। प्लेटफॉर्म पर जहाँ यात्रियों के बैठने के लिए स्थान बने थे या बेंच थे उन पर छत से बारिश का पानी टपक रहा था। अधिकांश यात्री खड़े थे या प्लेटफॉर्म पर नीचे बैठे हुए थे। पता नहीं स्टेशन प्रबंधक यात्रियों की इस असुविधा की ओर ध्यान देंगे या नहीं। हर पाँच से दस मिनट के बाद मुंबई से सूरत की ओर जाने वाली ट्रेनें आ रही थीं और कुछ नॉनस्टॉप ट्रेनें धड़धड़ाती हुई अपने गंतव्य की ओर प्रस्थान कर रही थीं। प्लेटफॉर्म से तेजी से दौड़ती हुई इन ट्रेनों को देखना धड़कनों की गति बढ़ा देता था। मेरी ट्रेन तीन बजे पहुँची। मेरे कंपार्टमेंट में केवल एक व्यक्ति सो रहे थे जो मेरे आने से हड़बड़ाकर जाग गए पर मैंने उन्हें निश्चित सोने के लिए कहा। उन्हें नंदुरबार पहुँचना था। बाद में मुझे तुरंत नींद आ गई। यह सहयात्री अपने स्टेशन पर कब उतर गए पता ही नहीं चला। दौड़ाईचा स्टेशन के निकट मैं जाग चुका था। बाहर खिड़की से देखा तो काफी किसान अपने खेतों में बुआई का काम कर रहे थे। महिलाओं और पुरुषों को समूह में बुआई करते देखना एक अद्भुत अनुभव था। मेरी ट्रेन तेजी से अपनी दिशा की ओर बढ़ती जा रही थी। अमलनेर स्टेशन जब निकट आ रहा था तो बारिश और अधिक तेजी से प्रारंभ हो गई थी। लगभग दस बजे ट्रेन अमलनेर पहुँची। मेरा कोच इंजन से तीसरे या चौथे क्रम में होने के कारण छतवाला प्लेटफॉर्म कुछ पीछे छूट गया था। तेज बारिश में मुझे भीगते हुए ही आगे बढ़ना जरूरी था। मेरे लिए भीगने के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं था। बेटी नेहल अपनी स्कूटर लेकर स्टेशन पहुँची थी और मेरी प्रतीक्षा करते हुए रुक गयी थी। ट्रेन लगभग पौन घंटा विलंब से पहुँची थी। मैंने उसे कहा कि क्या तुम मेरे लिए इतना भी कष्ट नहीं उठा सकती? वह कुछ नहीं बोली। मैंने अपना मोबाइल फोन, वॉलेट और अन्य चीजें भीगने से बचे इसलिए स्कूटर की डिक्की में रख दी। बेटी से कहा कि मैं बारिश में भीगना चाहता हूँ क्या तुम भी चाहती हो? वह कुछ नहीं बोली। वस्तुतः मुझे हर पहली बारिश में नहाने का आनंद उठाना होता है। हम दोनों बारिश में भीगते हुए ही घर पहुँचे और तुरंत अदरक मिली हुई गरमागरम चाय ने हमारा स्वागत किया।



संपर्क

कुबेर कुमावत— 'यूथिका', प्लॉट नं. 38, 1762/3, केले नगर, ठेकू रोड, अमलनेर—425401
जिला—जलगाँव, महाराष्ट्र, भारत,

मो.—9823660903, ई—मेल: kuberikumawat72@gmail.com

(असमिया / हिंदी)

प्रेरणा

मूल और अनुवाद: हरि लुईटेल (उपाध्याय)*

घर के सामने सड़क के किनारे खड़ा पेड़ ज्यों सिकुड़ सा गया है। इसकी आयु कितनी हुई होगी? कोई नहीं जानता होगा। मनुष्य होता तो जन्मपत्री अथवा जन्म प्रमाण पत्र देखकर कहा जा सकता। आखिर पेड़ ही है ना, सोचना होगा, अनुमान लगाना होगा, कब इसका जन्म हुआ होगा। लोग कहा करते तो हैं आजकल ठंड कम पड़ने लगी है। पर कहने से ही क्या होता है, किसी दिन तो इतनी ज्यादा लगती है कि सोचा भी नहीं जा सकता। पेड़ पर भी ठंड का प्रकोप पड़ा होगा। न चाहते हुए भी मौसम के कहर से पत्ते रंग बदलने को मजबूर हुए होंगे। शायद नीति की दुहाई है— यही प्रकृति का नियम है, है ना? हाँ, कहने के सिवा कोई चारा नहीं, दूसरा कोई जवाब है भी नहीं। पेड़ के पत्तों ने भी शायद इस नियम को या तो स्वीकार कर लिया है, नहीं तो आत्मसमर्पण के लिए मजबूर हो गए हैं। अपनी सुंदरता को त्यागकर पीले होकर झड़ने लगे हैं। अब कुछ ही दिनों में यह खाली होकर बिलकुल नंगा हो जाएगा, हाँ, पूरा ही नंगा हो जाएगा। अभी कुछ ही दिन पहले कितना सुंदर था यह। हरे-हरे पत्तों की आँचल से ढका किसी सुंदरी रमणी सा दिखाई देता था। शाम-सवेरे चिड़ियों की चहचहाहट इसे मानो जीवंत बना रही थी। पड़की, मैना, बुलबुल कितने ही प्रकार के पक्षियों का यह बसेरा था। बुलबुल और मैना की एक-एक जोड़ी ने इसमें घोंसला भी बनाया था। इन्हें रोज नाचते और चिल्लाते भी देखा जाता था। शायद मैना और बुलबुल घोंसला बनाने को लेकर कभी-कभी झगड़ते हुए भी अनदेखा नहीं होते। इनकी चिल्लाहट के साथ एक-दूसरे पर झपटना शायद यही सूचित करता है। एक बिल्ली भी प्रायः पेड़ के नीचे बैठी देखी जाती थी, कभी-कभी उसे पेड़ के ऊपर कुछ हद तक चढ़ते देखा नहीं जाता, ऐसा भी नहीं है। उसका ऐसा करने का मकसद समझ से परे था। गर्मी के मौसम में कभी-कभी सांपों को भी सरकते पेड़ पर चढ़ते जाने का दृश्य नजर आता था। डर और संशय के बीच ही मैना और बुलबुल अपने बच्चों को इसी पेड़ पर पाल-पोसकर बड़ा करती थीं। कभी-कभी ताजे अंडे पेड़ के नीचे गिरे हुए भी देखे जाते थे। इस विषम माहौल के बीच अपनी संतान

* सेवानिवृत्त प्रधान शिक्षक, प्रकाशित कृतियाँ— 'विस्मृति को अँध्यारोभिग', 'सप्तपदी' (नेपाली कहानी संग्रह), अष्ट आयाम, 'मिसमास' (नेपाली निबंध संग्रह)। कई स्मृति ग्रंथों का संपादन।

को पाल पोसकर उड़ने लायक बनाना कितना मुश्किल और जोखिमभरा है शायद कोई समझ नहीं पाता। हो सकता है समझने का प्रयास भी कोई नहीं करता। वर्तमान मनुष्य नामक प्राणी तो और चार कदम आगे है। सुविधा पाने के लिए बाट जोहता रहता है, जैसे शेर शिकार के लिए। इन संशयों के बीच ये पक्षी लड़ते हुए जीवन-संग्राम में विजयी होकर जीते आए हैं।

परंतु इस पेड़ ने कभी भी किसी का कुछ अनिष्ट नहीं, उपकार जरूर किया है। कुछ एक दिन पहले फूल और पत्तों से शोभायमान होकर अपना सौंदर्य बिखेर रहा था। निराश्रयों को आश्रय दे रहा था। प्रचंड धूप और गर्मी से व्यस्थित सभी को भेदभाव से परे रहकर समान रूप से अपने शीतल छाँव से राहत पहुँचा रहा था। लेकिन अब की बात अलग है, बिलकुल उल्टा, यह खुद ही नंगा हो आया है। स्वयं अपने को ही ठंड के कहर से बचा नहीं सकता तब दूसरों की मदद करने की बात तो बहुत दूर की है। इसीलिए अब यहाँ कोई नहीं आता है। आता ही क्यों? जरूरत तो है नहीं। हाँ, कभी कभार एकाध चिड़िया जरूर आती है, घर बनाने के लिए नहीं, एकाध पल गंगी डाल पर उद्देश्यहीन बैठती है, इधर-उधर ताकती है, फिर फुर्र से उड़ जाती है।

अपने घर के आगे बरामदे में पड़ी कुर्सी पर अपने दुर्बल तन को बिठाकर, देह को चादर से लपेटकर नरेन मास्टर इसी पेड़ को टकटकी लगाए देख रहे हैं। देखते-देखते ही उनके मस्तिष्क में ये बातें तैरने लगी हैं। अचानक उनके मन में अनजाने ही कहीं से एक सवाल कौंध आता है, क्या उनका जीवन भी ऐसा ही होगा? साथ ही उनके विवेक ने कहा—नहीं, नहीं ऐसा हो नहीं सकता। मनुष्य और पौधों के जीवन में फर्क होता है। साधारणतया नरेन मास्टर ऐसे विचार मन में नहीं लाते। वे तो केवल अपने कर्तव्य के बारे में ही सोचते रहते हैं। हाँ, यह भी सच है कि वे केवल अपने या अपने घर के बारे में ही सोचते रहने वाले अथवा अनर्गल बातों में खोए रहने वाले व्यक्ति भी नहीं हैं। उनका तो एक अलग ही व्यक्तित्व है, अलग पहचान है, जिसके लिए उन्हें न पहचानने वाले इलाके भर में शायद ही कोई होगा। सभी उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। दरअसल वे सरकारी स्कूल के शिक्षक भी नहीं हैं। भेंचर स्कूल (बेसरकारी सार्वजनिक, जिसे स्थानीय लोग स्थापित करते हैं और सरकार से स्वीकृत होने पर सरकार ले सकती है) में शिक्षक की सेवा से रिटायर्ड हुए शिक्षक हैं। सारा जीवन उन्होंने पगार लिए बगैर स्कूल में बच्चों को पढ़ाया, ट्यूशन से ही अपना संसार चलाया है। उनका ट्यूशन भी अलग ही था, कोई पैसा देता तो लेते, नहीं देता तो नहीं, यूँ ही मुफ्त में पढ़ा दिया करते। नौकरी की बाट जोहते-जोहते शादी भी देर से हुई। दो संतानें हैं—एक बेटा, एक बेटी, जोन और जोनाली। बेटे ने किसी तरह बी. ए. की डिग्री लेकर किसी प्राइवेट कंपनी में जॉब जॉइन किया है। आगे पढ़ने की इच्छा तो रही होगी पर न हो सका। उसके मन में इसका दुःख जरूर रहा होगा। पर पिता

के मन को चोट पहुँचने की आशंका से कुछ न कहता होगा। एक दिन अपनी माँ को कहते नरेन मास्टर ने सुना भी था किसी मुक्त विश्वविद्यालय से होने पर भी एम.ए. की डिग्री लेकर ही रहूँगा। बेटा जोनाली स्नातक की अंतिम वर्ष में पढ़ाई कर रही है। शिक्षकता के दिनों घर की खेती-बाड़ी के कामों पर एक नजर डालने तक का समय उनके पास न था। पर आजकल ज्यादातर समय खेती-बाड़ी में ही बिता रहे हैं। इसी बीच सामाजिक कार्यों में भी कभी-कभार सहयोग पहुँचाते रहते हैं। यही नरेन मास्टर का रोजमर्रा का सांसारिक जीवन है। आजकल उनका जीवन पतझड़ के उसी नंगे पेड़ का सा हो गया है। आज ही उनको इस बात का अहसास हुआ है। इच्छा न होते हुए भी हालात मनुष्य को कभी-कभी मायूस कर देते हैं। न सोचने वाली बातें भी सोचने पर मजबूर कर देती हैं। नरेन मास्टर का मन भी आज उदास है। अच्छा नहीं लग रहा है। जैसे किसी दलदल के बीच कोई उनके दिलपर हथौड़े से प्रहार कर रहा है। उससे वे निकल नहीं आ पा रहे हैं, जितना दूर होना चाहते हैं, उतना ही वे इस दलदल में फँसते जा रहे हैं। निकलना मुश्किल हो रहा है। मुड़कर देखते हैं अपने जीवन के उन अनमोल पलों को, जो आज गुजर चुका है—अतीत हो चुका है। एक-एक पल, दिन, सप्ताह, महीना, वर्षों को मसल-मसलकर देख रहे हैं आखिर उनसे गलती कहाँ हुई है? उनका मन कहता है, नहीं, उनसे कहीं भी कोई गलती नहीं हुई है। समय और हालात के भँवर में भी वह अपना जीवन नाव खेते आ रहे हैं। निष्ठा से अपना कर्तव्य पालनकर आए हैं। किसी भी हालात में वे अपने कर्तव्य पथ से भटके नहीं हैं। क्या निष्ठा से अपना कर्तव्य पालन करना ही उनकी भूल है? परंतु उनका मन उसे भूल नहीं मानता। उनकी इन बातों से घर के लोग सहमत नहीं हैं। बच्चों का कहना है— वे एक आदर्श शिक्षक तो माने जा सकते हैं, परंतु पिता की जिम्मेवारी निर्वहन में सफल हुए हैं, कहने में उन लोगों के मन में लगता है कि हिचकिचाहट है। ये बातें मास्टरजी के मन में चुभ सी गई हैं। अपने छात्र-छात्रा और संतान को एक सी नजर से देखना ही उनकी गलती है क्या? शिक्षक ही माँ-बाप, माँ-बाप ही शिक्षक नहीं है क्या? हाँ, एक बात तो सही है कि उन लोगों के मन में उभरे सभी अभावों को वे पूरा नहीं कर सके। उनका मानना है जिसके न होने से जीवन आगे बढ़ नहीं सकता वही वास्तव में अभाव है। दूसरे सभी भोग-विलास के सिवाय कुछ नहीं। ऐसी सीमाहीन चाहतों को पूरा करने से हाथ खींचना ही भला है। दिखावापूर्ण विलासी जीवन उन्हें कतई पसंद नहीं है। उच्च सोच और सादगीभरा जीवन जीना बेहतर है। ऐसी सोच हैं नरेन मास्टर की। उनके बच्चे उन्हें समझकर भी क्यों नहीं समझ पा रहे हैं? एक हूक चुभ सा जाता है। ऐसी बातों से कभी-कभी वे चिढ़ते हैं। साधारण सी बातें भी कभी-कभी राई का पहाड़ बन जाती है सोचा भी नहीं जा सकता। निर्बाक हो गए थे मास्टरजी। बात का बतंगड़ बनने से पहले ही उन्होंने विषय को मोड़ दिया

था शांति से। फिर भी उनके मन को इसने खरोंच दिया था। यह बात है तो पुरानी, तो भी वे इसे भूल नहीं पाए हैं। लेकिन आज की बात कुछ अलग है, बात उनकी पत्नी नंदिनी की है, वही नंदिनी जो उन्हें जीवन की हर कठिनाई में अंधे की लाठी बनकर सहारा देते आई है। आज अचानक क्या हुआ कहा नहीं जा सकता। उनके पुराने घर को ही नए सिरे से बनाने की चर्चा के बीच ही रुपए-पैसों की बात निकल आई थी। बातों के अंत में आज तक अपने पति को सीधे मुँह न लगने वाली सहनशीला सीधी-सादी नंदिनी के मुँह से निकल आया था— “इतने सालों तक शिक्षकता करने पर आपको मिला ही क्या है?” इन शब्दों ने मास्टरजी के दिल में आग ही लगा दी और आग की तपिश सर तक पहुँच गई। सारे शरीर में झुरझुरी सी हुई। स्वयं को रोक नहीं पाए। हुंकारते हुए कहा— “क्या मिलना चाहिए था? हाँ। क्या नहीं मिला है तुम्हें?”

“रुपया” नंदिनी ने तुनककर जवाब दिया था।

“सभी बातों को तोड़ मरोड़कर रुपए-पैसों के साथ जोड़ा मत करो। हर किसी बात पर रुपया-रुपया की रट लगाना छोड़ो। मुझे गुस्सा आ जाता है।” मास्टरजी ने भी उसी मिजाज से जवाब दिया। “आपके गुस्साने से होगा क्या? रुपया न हो तो घर का बोझ उठता नहीं है। मैं ही जानती हूँ बेटे की नौकरी लगने से पहले आपके ट्यूशन के पैसों से कैसे घर सँभाला करती थी?”

“पहले भी भात (चावल) ही खाते थे आज भी वही भात खा रहे हैं। कपड़े पहले भी पहनते थे, अब भी पहन रहे हैं।”

“खाने-खाने के बीच और पहनने-पहनने के बीच फर्क होता है।”

“फर्क तुम्हारे दिल में है—”

“अपना भाषण अपने पास ही रखिए। ऐसे भाषण सुन-सुनकर कान पक गए हैं, उम्र बीत चुकी है। कितने दिन हुए जो आपने खेती बाड़ी में पाँव रखा है? मास्टरजी के मुँह की बात छीनकर नंदिनी बकने लगी— “आदर्श और कर्तव्य की दुहाई देते-देते जीवन ढलने लगा है। बाप-दादा ने कुछ जमीन जोड़ रखी थी सो उसमें से थोड़ी गिरवी रखने पर भी दो जून की रोटी चबा रहे हैं, नहीं तो द्वार-द्वार फिरना पड़ता। दुःख और दर्द के सिवा क्या दिया है आपके आदर्श और कर्तव्य के पाठ ने?। कुछ चाटुकारों को छोड़कर कोई इनको पूछता तक नहीं, फिर भी इनके कानों पर जूँ नहीं रेंगती—”

इतने दिनों से नंदिनी के मन में जो विचार दबे हुए थे, आज ज्यों अपना बाँध तोड़कर मन की भड़ास निकालने पर मुँह से प्रवाहित हो रहे थे। नरेन मास्टर इन सबका जवाब दे तो सकते थे। लेकिन कहा कुछ नहीं, चुपचाप सुनते रहे। बातों से बातें बढ़कर बतंगड़ बन जाने से घर का अमन-चैन गुम हो जाता है। बकते-बकते

नंदिनी पिछवाड़े की ओर चली गई। जोन और जोनाली कभी के अपने-अपने कामों में निकल गए थे। नंदिनी ने उसी का फायदा उठाया था। यूँ तो छोटी-छोटी तू-तू मैं-मैं मास्टरजी के लिए नई नहीं है। हाँ यह भी सही है कि उनके बाबूजी की जोड़ी हुई जमीन का एक छोटा हिस्सा नंदिनी के इलाज के लिए गिरवी रखना पड़ा था वह छुटा नहीं पाए हैं। ये बातें अब उनके भीतर गुस्से से अधिक अंतर्मुखी दर्द ही पैदा करने लगी हैं। ऐसे दर्द मास्टरजी के बिलकुल अपने होते हैं। इन्हें वे किसी के साथ बँटवारा कर नहीं सकते, साझा कर नहीं सकते।

आँख फिर उसी पेड़ पर टिक जाती है, नंगा होने लगा है। अब कुछ दिन बाद बिलकूल नंगा होकर सूखे पेड़ की भाँति दिखाई देने लगेगा। समय के साथ फिर से इसमें कोपलें निकल आएँगी, अपनी खोई हुई जिंदगी और जवानी लौटा पाएगा-----। एक मोटरसाइकिल आकर पेड़ के नीचे रुक जाती है। एक सज्जन मोटरसाइकिल से उतरकर उन्हीं की ओर आ रहे हैं। मास्टरजी को उनकी सूरत जानी पहचानी सी लग रही है। इस व्यक्ति का नाम----- सोचने लगते हैं, इतने में वह आ पहुँचा और मास्टरजी के पैर छूकर कहने लगा— “सर, पहचाना? मैं आपका छात्र बिरेन-----।” उस व्यक्ति के स्कूली जीवन का संपूर्ण चित्र मास्टरजी की आँखों में तैरने लगा। उनका मुखमंडल खिल उठा। भावावेश में आकर कहने लगे—“क्यों नहीं पहचानता?। भला तुम लोगों को कैसे भूल सकता हूँ?”

“मालूम है सर, दूसरा और कोई भूल भी जाए तो भी आप हमें नहीं भूलेंगे।” मुस्कराते हुए बिरेन ने जवाब दिया।

“हाँ, फिर भी ये दाढ़ी, मूँछ पहनावा सभी मिलकर पहचानने में कुछ कठिनाई तो लाती ही है। कुछ मोटे भी तो हो गए हो। बैठो खड़े क्यों हो?”

“नहीं सर, आज नहीं”

“क्यों?” छोटा सा सवाल नरेन मास्टर का।

“नहीं सर, आज बहुत जल्दी में हूँ। एक विशेष कोम से आपके पास आया हूँ।” कहते-कहते बिरेन ने एक लिफाफा निकालकर हाथ में लिया। “बैठो तो सही, जल्दी होने पर भी जो कहना है बैठकर कहो।” मास्टरजी के मन में सैंकड़ों सवाल उभर आए। किसे पहले पूछें, किसे बाद में, सूझ नहीं रहा। “आजकल तुम रहते कहाँ हो? क्या करते हो? अभी आए कहाँ से?” “एक ही साँस में पूछ बैठे।” सर, मैं बारहवीं पास करते ही दिल्ली चला गया और वहीं पढ़ने लगा। आजकल सरकारी नौकरी कर रहा हूँ। अभी छुट्टी में घर आया हूँ। “संक्षेप में जवाब देते हुए वहाँ आने का मकसद कहने लगा।” सर, हम आपके पुराने छात्र-छात्राएँ और दिग्गज शिक्षाविदों के सहयोग से देर से ही सही पर आपके कर्मजीवन की स्वीकृति के रूप में आपको सम्मान प्रदान करने के लिए अगले इतवार को एक आम सभा का आयोजन कर रहे हैं। उस दिन हमारा

सम्मान ग्रहण करने में आप अस्वीकार न करें। सभा में शिक्षाविभाग के मंत्री और अन्य प्रभारी भी पधारने वाले हैं। हममें से एक आकर आपको सभा में ले जाएँगे।”

“अचानक ऐसा सिद्धांत? मैं कुछ समझा नहीं।”

“सर, हम कुछ पहले से ही चुपके-चुपके प्रस्तुति चला रहे थे। आपको अगर पहले बता देते और मकसद पूरा न होता तो अच्छा नहीं लगता। इसी डर से गिने-चुने लोगों तक ही सीमित रखा, फैलाया नहीं था। आपको शायद याद भी होगा कुछ महीने पहले जगत आपके पास आया था, आपके जीवन के बारे में कुछ जानकारी हासिल करने, हम ही ने तो चुपचाप उसे भेजा था।” बिरेन से लिफाफा लेते वक्त उन्हें लगा कि किसी ने उनके कलेजे को जकड़ लिया है, कलेजे में पड़ी गाँठ गले में आकर अटक गई। भाव-विभोर होकर अस्पष्ट स्वर में कहा— “एक कप चाय——”। वाक्य समाप्त हुआ ही नहीं बिरेन ने उन्हें रोकते हुए कहा— “सर, आज चाय रहने दीजिए। चाय के लिए कुछ दिन बाद जरूर आऊँगा। आपसे बहुत सारी बातें भी करनी हैं। आज के लिए क्षमा करें।” मास्टरजी को दोबारा कहने का मौका ही न देते हुए प्रणाम कर बिरेन चला जाता है। कुछ समय तक मास्टरजी बिरेन को जाते हुए टकटकी बाँधे देखते रहे। इस तरह वे अपने ही भीतर कितने समय तक खो गए खुद उन्हें भी मालूम नहीं। अचानक उन्हें हाथ के लिफाफे का स्मरण हुआ। सावधानी से उन्होंने लिफाफे से पत्र निकालकर ध्यान से पढ़ा। फिर दूसरी बार पढ़ा। उनकी आँखों में ज्यों कोहरा सा छा गया, नजर धुँधली सी हो गई। पलभर के बाद ही मोती सी बूँद बनकर चिट्ठी के ऊपर ही दो बूँद टपक पड़ी। उनका चेहरा आनंद की रोशनी से चमक उठा। थके हुए दुर्बल शरीर नई शक्ति से संचारित हुआ। जीवन-संघर्ष के दबाव में दबकर बोझ बना शरीर हल्का बन जाने का बोध हुआ। कौन कहता है शिक्षकता की सेवा से नरेन मास्टर को कुछ हासिल नहीं हुआ? हाँ, यह सच है कि वे रुपए-पैसे, धन-दौलत जुटा नहीं सके, पर उससे भी बड़ी दौलत जुटा पाए हैं, जिसमें वे सदा जीवित रहेंगे। चूँकि पत्र में स्पष्ट लिखा है कि सभा में केवल उन्हें सम्मानित ही नहीं किया जाएगा बल्कि उनके कर्म जीवन पर लिखित एक ग्रंथ का लोकार्पण भी किया जाएगा। उनका मन कहता है—यह केवल कोरे कागज पर काले अक्षर से भरा पन्नों का समूह ही नहीं है बल्कि उनके जीने का सहारा है— एक संजीवनी है, एक प्रेरणा है।

“क्यों गठरी की तरह दुबककर गुमसुम बैठे हुए हैं? तबियत ठीक नहीं है क्या?” नंदिनी की आवाज से वे चौंक जाते हैं। विचारों की शृंखला टूट जाती है। भाव जगत से वास्तव जगत में लौटते हैं। “नहीं, नहीं कुछ नहीं हुआ, ठीक हूँ”, मुस्कान के साथ नंदिनी की ओर देखते हुए कहते हैं। “चाय के लिए बुला रही थी, सुनाई नहीं दिया क्या?” फिर मास्टरजी के हाथ में चिट्ठी देखकर पूछ बैठती है, “किसकी चिट्ठी है या कुछ और—— ?” नरेन मास्टर बिना बोले चुपचाप चिट्ठी नंदिनी के हाथ में

थमा देते हैं और कुर्सी से उठने लगते हैं। नंदिनी ध्यान से पढ़ती है। पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखें भर आती हैं, कुछ समय पहले अपने कहे शब्दों के पछतावे से या खुशी से, कहा नहीं जा सका। मास्टरजी के चेहरे पर एक नजर डालती है, फिर दोनों धीरे-धीरे घर के भीतर चले जाते हैं।



संपर्क

हरि लुईटेल— गेलापुखुरी, वाया विश्वनाथ चारिआलि, विश्वनाथ असम—784176,
मोबाइल— 9957050509, ई-मेल: hariprasadupadhyaya3691@gmail.com

तुम्हारे पास हमारे पास
सिर्फ एक चीज है
ईमान का झंडा है
बुद्धि का बल्लम है,
अभय की गैती है
हृदय की तगारी तसला है
नए-नए बनाने के लिए भवन
आत्मा के मनुष्य के।

— मुक्तिबोध

नक्शा

मूल और अनुवाद: जगतारजीत सिंह*

मुझे ज़मीन में से निकालकर टैंकर में भरकर आगे की ओर धकेल दिया। यहाँ से मुझे रवाना किया गया न तो मुझे उस जगह का पता है और न ही उस जगह का जिस पर मुझे लाकर खड़ा किया गया है।

हाँ, मुझे इतना पता है मेरा रास्ता काफी लंबा था जो उबड़-खाबड़ भी रहा।

मैं जिधर से गुजरा आस-पास के लोगों ने आँख भरकर मुझे देखा। उनके मन में लालच था। हर कोई मुझे अपने पास रख लेने की इच्छा लिए हुए था।

निश्चित जगह पर पहुँचते ही मुझे हर उम्र, वर्ग, जाति, लिंग के लोगों ने घेर लिया। मैं स्वयं तो लोहे की मोटी चादर में किसी कीमती वस्तु की तरह बंद था। मेरे दाएँ-बाएँ और ऊपर सशस्त्र पुलिस का पहरा था।

समझ में नहीं आ रहा था कि मुझे किससे बचाया जा रहा है,

हर कोई एक-दूसरे से भिड़ रहा था। भिड़ते समय हर भिड़ने वाले का अपना अंदाज था। ऐसे में हर कोई ऊँचे-नीचे बोलों का आसरा ले रहा था। उनके हाथों में पकड़े हुए बर्तन उनसे भी अधिक शोरीले थे।

यह युद्ध-भूमि नहीं थी, पर वातावरण बिल्कुल वैसा ही था। जीत में न किसी को जमीन मिलनी थी न धन-दौलत।

मेरा मूल्य क्या इन वस्तुओं से भी अधिक हो गया है?

मैंने अंदर रहते-रहते यह महसूस कर लिया था कि पहले से ही बँटी, टुकड़े-टुकड़े हुई मेरी देह की अब और बोटी-बोटी की जाएगी।

भीड़ में शामिल हर शख्स का शरीर युद्ध के समय गरमाए शरीर जैसा था। आँखें क्रोध के कारण बाहर को निकली हुई थीं और रगों में चल रही खून की गति साधारण से अधिक तेज थी।

युद्ध के समय हर तरह की तमीज भुला दी जाती है। इस समय का माहौल बिल्कुल वैसा ही था।

* दिल्ली सरकार से सेवानिवृत्त इंजीनियर एवं वरिष्ठ साहित्यकार। बाल साहित्य, कविता कला और अनुवाद में उनकी लगभग 25 पुस्तकें प्रकाशित हैं। वे हिंदी अकादमी, पंजाबी अकादमी (दिल्ली) और भाषा विभाग (पंजाब) से पुरस्कृत हैं।

बंदूकधारियों ने सबको साझा हुक्म सुनाया, “सभी लोग एक-दूसरे के पीछे खड़े हो जाए। पानी कम है, इसे बर्बाद न करना। एक आदमी के पास एक ही बर्तन होना चाहिए।”

भीड़ ने ये शब्द सुने। शायद नहीं सुने!

लोगों को पानी की जरूरत थी, शब्दों की नहीं।

टैंकर के ऊपर बैठे सिपाही ने बंदूक का मुँह भीड़ की ओर करते हुए कहा, “खुद को काबू में रखो। अगर हालात बिगाड़ने की कोशिश की तो उसको काबू में लाने के लिए हमें कुछ भी करने का अधिकार मिला हुआ है।”

मैंने अंदर बैठे हुए ये महसूस किया कि मुझे प्राप्त करने के लिए लोग अपना लहू तक गिराने की तैयार हैं।

क्या यही मेरी असली कीमत है, जिसे कभी समझा ही नहीं गया।

नहीं, नहीं। मैंने इतना कीमती होकर कभी जीना नहीं चाहा। कभी भी नहीं।

बाहर की हलचल लोहे की चादर से छनकर अंदर दाखिल हो रही थी।

मुझे भीड़ के दरम्यान बाँटने में जितनी देरी की जा रही थी बेचैनी और अविश्वास उसी अनुपात में बढ़ता जा रहा था।

बाहर हो रही हर तरह की हलचल के बीच केवल मैं ही अडोल बैठा था।

कई तरह के हुक्म और हिदायतों के बाद टैंकर की टोंटी के मुँह में लगी डार को ढीला किया गया।

धक्के-मुक्की के बीच मुझे जितनी मिकदार से भिन्न-भिन्न आकार के बर्तनों में डाला जा रहा है। लगभग उतनी ही मिकदार मैं इधर-उधर बिखर भी रहा था।

मुझे सँभालने वाले कितने लोग रहे, इसका हिसाब न तो मुझसे रखा गया न ही कोई दूसरा इस बारे में बता सकता है।

जो किसी न किसी तरह मुझे अपने-अपने घर छोड़ आए थे वो पुनः हाज़िर हो गए थे। अगर सभी नहीं थे तो भी उनमें से काफी उपस्थित थे। इसका ज्ञान लोगों के आपसी ताहनों-मेहणों और गाली-गलौच से हो रहा था।

वैसे जिन घरों तक मेरी पहुँच हो चुकी थी उन घरों के लोगों की रफ़्तार और गुफ़्तार में बदलाव आ चुका था। अपने पास कुछ होने का घंमड़।

जिनको मेरी छोह अभी तक प्राप्त नहीं हुई थी, उनका व्यवहार दूसरी तरह का था। वे स्वयं को पहले से अधिक गरीब और हीन महसूस कर रहे थे।

कुछ ही समय में टैंकर के भीतर मेरी होंद लगभग न के बराबर रह गई थी। खाली बर्तनों, चेहरों के बीच में खाली ही था।

मैं एक आकार में से कई आकार धारण कर कई घरों की शोभा बन गया था। मैं जहाँ-जहाँ पहुँचा था वहाँ-वहाँ तकरार भी जा पहुँचे। मुझे कहाँ रखा जाए, मुझे कैसे बरता जाए इत्यादि।

इस ओर मेरा ध्यान पहले कभी नहीं गया था।

पुलिस वालों के शरीर पसीने से बुरी तरह भीगे हुए थे। भीड़ में शामिल लोगों का बस चलता तो उसे इकट्ठा कर बर्तनों में सँभाल लेते।

लोगों की आँखों के सामने टैंकर का खाली हो जाना भी उन्हें इस बात का विश्वास न दिला सका।

अंततः खाली टैंकर को चलने का हुक्म दिया गया। संभव है किसी दूसरी जगह के लोग इसका इंतजार कर रहे हों।

कब से कर रहे हैं? कुछ नहीं कहा जा सकता।

टैंकर में अभी भी मेरा कुछ अंश बचा हुआ था। यह टैंकर के चलने पर महसूस हुआ। मैं हल्के-हल्के छल्लों में तब्दील होकर इधर-उधर डोलने लगा। हर छल अपने सामने वाली दीवार छूने से पहले ही लौट आती।

चढ़ाई पर आकर टैंकर रुक गया।

झाड़वर और पुलिस वालों के बीच हुई बातचीत से पता चला कि मशीन में कोई खराबी आ गई है, जिसे दूर करने में कुछ समय लग सकता है।

काफी सोच-विचार के बाद यही फैसला किया गया कि टैंकर वहीं छोड़ दिया जाए।

टैंकर में मैं इधर-उधर बिखरा पड़ा था। पर अब हर ओर से चलकर उसके पीछे वाले हिस्से में जमा होने लगा।

धीरे-धीरे मेरी मिकदार बढ़ने लगी।

जंग लगे हुए स्थानों से गुजरते समय मुझे ऐसा लगा जैसे धड़कती नाड़ियों में से लहू गुजर रहा हो।

मैं एक कोने में था और मेरे सामने, दूसरी तरफ था टैंकर का खाली स्पेस। मुझे डर लगने लगा था।

अंदर अंधेरा था। वह तो पहले भी था। बाहर क्या है, मुझे नहीं पता।

तभी बाहर ठक्-ठक् की आवाज हुई। समय के साथ-साथ इसमें तेजी आने लगी। मेरी तलाश में निकले कुछ लोगों ने टैंकर के मुँह पर लगी 'नोजल' को तोड़ दिया। मैं धार बनकर बाहर निकल आया। उन्होंने मुझे तीन-चार बर्तनों में जल्दी-जल्दी इकट्ठा कर लिया।

टैंकर से मेरा संबंध अब बिलकुल टूट चुका था।

बाहर अंदर की अपेक्षा कम अँधेरा था। कहीं-कहीं लौ का आभास हो रहा था।

तीन-चार व्यक्ति मुझे बर्तनों में सँभाले अपने घरों की ओर चल पड़े।

राह पर चलते हुआँ को किसी ने ऊँची आवाज़ में ललकारकर रोक लिया। बड़े रोब से पूछा, "क्या लिए जा रहे हो, इतनी रात बीते?"

उनमें से एक जना धीमे से बोला, "पानी"।
 "पानी नहीं लग रहा। पेट्रोल है, चोरी का।"
 "नहीं, नहीं। पानी है।" दूसरे साथी ने उत्तर दिया।
 उस आदमी को अब यकीन हो गया कि ये लोग बर्तनों में पानी ही ले जा रहे हैं। इसके बाद उसने अपनी मंशा जाहिर कर दी।
 "चोरी की है, इसकी।"
 "नहीं तो।"
 "एक बर्तन मुझे दे दो।"
 "यह कैसे हो सकता है? काफी समय भटकने के बाद हम इसे ढूँढ सके हैं और हम इसे बड़ी दूर से उठाकर ला रहे हैं।" अपने साथी की आवाज के साथ दूसरों ने भी समर्थन में अपने-अपने सिर हिलाए।
 अजनबी पीछे नहीं हटना चाहता था। उसने उन्हें पैसे का लालच देते हुए कहा, "मुझे एक बर्तन पानी चाहिए। बताओ इसके बदले कितने पैसे लेना चाहते हो?" बताओ।
 तीनों-चारों साथी एक दूसरे का मुँह देखने लगे। लग रहा था इस माँग को पूरा करने को कोई तैयार नहीं था। सभी के वास्ते पानी पैसों से कहीं अधिक कीमती था।
 ये कैसे हालात बनते जा रहे हैं। मैं भिन्न-भिन्न आकारों में साथ-साथ पड़ा सोच रहा था।
 पहले कभी ऐसा हुआ है? मुझे याद नहीं आ रहा।
 इस प्रवाह को एक झटका लगा जब एक मोटर साइकिल सवार आदमी इनके बीच आ रुका।
 उसने मोटर साइकिल रोकते ही जान लिया कि क्या मामला है। वह यह भी जान गया कि इन बर्तनों में पानी है और दोनों ओर के बीच तकरार का कारण इसका लेन-देन है।
 मोटर साइकिल वाले ने अजनबी के साथ बात करने को प्राथमिकता दी क्योंकि वह अपनी उसकी बाहरी दिखावट के कारण उसे अधिक सभ्य लगा। उसको हाथ के इशारे से अपनी ओर बुलाने के बाद मोटर साइकिल सवार ने धीरे से पूछा, "क्या मामला है?"
 अजनबी ने कहा, "ये लोग पानी की चोरी कर बर्तनों में भरकर ले जा रहे हैं। मैंने इनसे एक बर्तन पानी की माँग की थी....।"
 "फिर क्या हुआ?"
 "ये नहीं मान रहे। मैं इसके बदले मुँह माँगे पैसे देने को तैयार हूँ।"
 "यह तो ज्यादाती है। मोटर साइकिल वाले ने कहा। फिर उसने तीन-चार लोगों की ओर मुँह कर कहा, "क्या बात है तुम्हें पानी का एक बर्तन देने में क्या मुसीबत है?"

उनमें से सबसे कम उम्र का आदमी बोल पड़ा, "हमें कई दिनों की भटकन के बाद यह मिला है। हमारा भी घर है, बच्चे हैं।"

"यह तो मेरे भी हैं," अजनबी ने कहा।

पहले वाले आदमी ने ही जवाब दिया, "आप के पास पैसे हैं। आप दौलतदार हो। आप जब चाहें इसे खरीद सकते हो। हमारे पास तो कुछ भी नहीं है।"

"अब तो तुम पैसे वाले हो, क्योंकि अब तुम्हारे पास"

हमें जाने दो। हमें अपने-अपने घर पहुँचना है, सभी जैसे एक ही स्वर में बोल पड़े।

मोटर साइकिल वाले ने कहा, " मैं भी पानी की तलाश में भटक रहा हूँ हमारी बस्ती के कई लोग पानी की तलाश में अपने-अपने घरों से निकल इधर-उधर घूम रहे हैं।"

अजनबी को मोटर साइकिल वाले का साथ मिलने की वजह से उसका हौसला बढ़ गया था। वह नया पैतराँ अख्तियार करते हुआ बोला, "चले जाना। पहले यहाँ दो बर्तन पानी के रख दो। हमारे घरों में भी हमारे बच्चे पानी न मिलने के कारण बिलख रहे हैं।"

बात बढ़ती ही जा रही थी।

लग रहा था अब कुछ बर्तनों में पानी है और कुछेक में लहू। लहू वाले बर्तन ठंडे वातावरण में भी तपते जा रहे थे।

जैसे ही तीनों चारों लोग बर्तनों को उठा कर चलने लगे तो मोटर साइकिल वाले ने पिस्तौल निकाल ली।

तीनों-चारों का लहू एकदम पानी में बदल गया। इसके बावजूद वो अपना सरमाथा उनके हवाले नहीं करना चाहते थे।

बोल-कुबोल से शुरू हुई बात अब छीना-छपटी तक पहुँच गई।

बर्तनों पर सरदारी जमाने की होड में मेरा काफी हिस्सा जमीन पर गिर गया।

मुझे बाँए लेने के वास्ते कोई भी पक्ष राजी न था।

आपसी मारपीट में जब दो बर्तन टूटकर खाती हो गए तो बाकि बचे हिस्से का महत्त्व और बढ़ गया।

तीनों-चारों में से दो ने मुझे छक कर पिया।

अब सबकी नजर बाकी बचे हिस्से पर जा टिकी।

मोटर साइकिल वाले ने इस समय गोली चलाना ठीक समझा ताकि पानी के मालिकों को डराकर भगाया जा सके और बाकी बचे हिस्से पर अपना कब्जा जमाया जा सके।

पास से चलाई गोली एक जने को चीरते हुए गुजर गई।

अजनबी अजनबियों की तरह इधर-उधर आँख घुमाकर देखने लगा। वह सारे हालात को फिर से जाँचने लगा।

अपने साथी को मरता देखने वाले बाकी बचे साथियों के लिए भी मैं जीवनदाता की बजाए मृत्युदाता बन सकता था।

मेरी खातिर वे एक-दूसरे को मारने के लिए तैयार थे, यह मैंने भाँप लिया था। खुद को हमेशा तुच्छ समझने वाला मैं दुनिया की कीमती वस्तु बना हुआ था।

दो-तीन में से एक जना फुर्ती से हिला और बाकी बचे बर्तनों को उल्टा दिया। मैं कल्ल-कल्ल करता फिर से प्यासी धरती में समा गया।

मेरा वजूद खत्म हो गया था।

मेरे से थोड़ी-सी दूरी पर स्याह सी पपड़ी का निशान बचा था।

यह नक्शा किस गली मोहल्ले, बस्ती, प्रांत या देश का था, मुझे नहीं पता।



संपर्क

जगतारजीत सिंह-118, प्रताप नगर, जेल रोड, नई दिल्ली-110064, मो. 8120809235,
ईमेल: jagtarjeet2024@gmail.com

आदमी मरने के बाद
कुछ नहीं सोचता।
आदमी
मरने के बाद
कुछ नहीं बोलता।
कुछ नहीं सोचने
और कुछ नहीं बोलने पर
आदमी मर जाता है।

— उदय प्रकाश

मिट्टी की खुशबू

पुष्पेश कुमार 'पुष्प'*

जैसे-जैसे रात गहराती जा रही थी, वैसे-वैसे ठंड भी बढ़ती जा रही थी। रात की इस नीरवता में मंजरी के घुटनों का दर्द भी बढ़ता ही जा रहा था। दर्द के कारण वह सो नहीं पा रही थी। वह किसी प्रकार उठकर दीये की मद्धिम रोशनी में अपने घुटनों पर दर्द निवारक तेल की मालिश करने लगी।

तभी उसे धुंधले प्रकाश में कोई छाया दिखाई दी। वह अपने दर्द को भूल छाया की ओर देखने लगी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो यह छाया किसी और की नहीं बल्कि उसके गुजरे पति रामप्रवेश लाल की हो। वह बिना झिझक के कुछ बोलना चाहती थी कि छाया और धुंधली होते हुए उससे दूर हो गई। वह छाया को अपने हाथों से स्पर्श करना चाहती थी, लेकिन वह छाया को स्पर्श नहीं कर पा रही थी।

“तुम यहाँ गाँव में अकेली पड़ी क्यों इतनी तकलीफ सह रही हो? क्यों नहीं रमेश के पास चली जाती हो? वहाँ कम से कम तुम्हारी देखभाल करने वाला कोई तो होगा? यहाँ तुम्हारी देखभाल करने वाला कौन है? क्यों इतना कष्ट सह रही हो? “छाया से आवाज आई।”

वह आवाज को पहचान गई। यह आवाज उसके पति की थी।

“आप इतने दिनों से कहाँ थे? आप मेरे पास क्यों नहीं आते थे? क्यों मुझे अकेले छोड़कर चले गए?” मंजरी सिसकते हुए बोली।

मंजरी उठने लगी। वह छाया को अपनी बाँहों में भर लेना चाहती थी।

“तुम वहीं बैठी रहो। मेरे पास मत आओ। तुम मेरा कहा मानो और रमेश के पास चली जाओ।” इतना कहकर छाया अदृश्य हो गई। वह अपलक नेत्रों से देखती रह गई।

वह सोचने लगी— “कहीं वह कोई सपना तो नहीं देख रही थी या फिर बूढ़ी आँखों का भ्रम था।”

तेल मालिश करने के बाद भी दर्द कम होने का नाम नहीं ले रहा था। उसकी आँखों से नींद गायब हो चुकी थी। वह अपने घुटने के दर्द को भुलाकर अपने अतीत में खो गई।

* राजनीतिशास्त्र में स्नातक। बीस वर्षों से स्वतंत्र लेखन एवं देश की विशिष्ट पत्र-पत्रिकाओं में 800 से अधिक रचनाएँ प्रकाशित।

गाँव में उसकी जिंदगी सुख से कट रही थी। उसका पति रामप्रवेश लाल ब्लॉक में काम करता था। अपने पति और इकलौते बेटे रमेश के साथ ही उसकी जिंदगी कट रही थी कि अचानक एक दिन रामप्रवेश लाल की एक दुर्घटना में मौत हो गई। मंजरी अकेली रह गई। वह पति की मौत के गम को भुला अपने बेटे के लिए जीने लगी। रमेश इंटर पास कर गया था और पिता की जगह उसे चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी के रूप में नौकरी मिल गई। नौकरी होते ही मंजरी ने रमेश की शादी भी कर दी। रमेश अपनी पत्नी को लेकर शहर चला गया। मंजरी ने शहर जाने से साफ मना कर दिया था। रमेश ने भी इस बात पर ज्यादा जोर नहीं दिया। रमेश हर महीने अपनी माँ का हाल-चाल जानने जरूर आता था।

एक बार रमेश ने मंजरी को शहर ले जाने का मन बना लिया। मंजरी को भी अपने बेटे की जिद के आगे झुकना पड़ा। न चाहते हुए भी शहर जाने को राजी हो गई। मंजरी को शहर का माहौल रास नहीं आया। शहर में कोई किसी का हाल-चाल पूछने वाला नहीं था। वह सारा दिन दो कमरों के मकान में कैद रहती। उसे यह अकेलापन मानो काट खाने को दौड़ता था। उसे अपना गाँव याद आता था। घर के आंगन में लगा तुलसी का पौधा याद आने लगा, जिसमें वह रोज सुबह सूर्य को अर्घ्य देते हुए जल डालती थी। बिना जल के तो वह पौधा सूख जाएगा। घर के पीछे लगी सब्जियों की लतियाँ आवारा घूमने वाले पशु जरूर चर जाएँगे। सुबह आने वाले बच्चों को प्रसाद के रूप में चना-गुड़ कहाँ मिलता होगा? न जाने कितने सवाल मंजरी के मन-मस्तिष्क में कौंध रहे थे।

इस शहर में वह अधिक दिन रही तो, गाँव में उसकी हँसती-खेलती बगिया जरूर उजड़ जाएगी। यह अकेलापन उसे कचोटने लगा। वह शहर के तौर-तरीकों को देखकर ऊब गई थी। उसने गाँव जाने का निश्चय कर लिया।

शाम को रमेश के आते ही वह बोली— “बेटा! मुझे गाँव वापिस पहुँचा दे। यहाँ का माहौल मुझे रास नहीं आता। इससे अच्छी मेरी जिंदगी गाँव में ही कट रही थी। यहाँ अकेलेपन का एहसास होता है। गाँव में अपनों के बीच रहती हूँ तो अपने सारे दुःख-दर्द मिट जाते हैं। तू मुझसे यहाँ रहने की जिद मत कर। मुझे गाँव पहुँचा दे।”

रमेश समझ गया कि माँ के मन से गाँव का मोह अभी टूटा नहीं है। गाँव के अपनेपन का माहौल उसे अपनी ओर खींच रहा है। गाँव की सोंधी मिट्टी की खुशबू माँ के तन-मन में बस गई है। माँ अपनी गाँव की मिट्टी से दूर नहीं रह सकती। गाँव के बच्चों के बीच उसके सारे दुःख-दर्द छू-मंतर हो जाते हैं। माँ कितने प्यार से भगवान को भोग लगाकर चना-गुड़ का प्रसाद बच्चों में बाँटती है। बच्चों के बीच प्रसाद बाँटने में उसे परम सुख की अनुभूति होती है। बच्चे भी उस प्रसाद को पाने के लिए माँ के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। माँ को कितना सुकून देता है बच्चों का यह

अपनापन और प्रेम का भाव। शहर में वो माहौल कहाँ? यहाँ तो हर कोई अपनी ही दुनिया में मस्त है।

“मैं जानता हूँ, माँ! तुम्हें यहाँ का माहौल रास नहीं आता, लेकिन तुम्हारा गाँव में अकेले रहना मुझे कचोटता है। मेरा मन नहीं करता तुम्हें गाँव में अकेले छोड़ने का। कुछ दिन और रह लो, फिर गाँव पहुँचा दूँगा।” रमेश उदास स्वर में बोला।

“मैं वहाँ अकेली कहाँ हूँ। गाँव में सब मेरे अपने हैं। उनके बीच मैं अपनी सारी पीड़ा भूल जाती हूँ। गाँव की मिट्टी से मैं अलग नहीं रह सकती। हर पल उसकी याद सताती है। फिर तेरे बाबू जी की यादें भी तो वहीं बसी हैं। मुझे मत रोक। चल गाँव पहुँचा दे।” मंजरी रमेश से गाँव पहुँचाने की जिद करने लगी।

रमेश ने न चाहते हुए भी मंजरी को गाँव पहुँचा दिया।

तभी पशु-पक्षियों की आवाज ने मंजरी का ध्यान भंग किया। सुबह हो गई थी। लोग नदी में स्नान करने के लिए जा रहे थे। बच्चे भी दरवाजे पर प्रसाद के लिए दस्तक देने लगे थे।

मंजरी का मन उत्साह-उमंग से भर गया। वह दीवार का सहारा लेकर खड़ी हो गई। सुबह की पूजा का समय हो गया था। बच्चे प्रसाद के लिए उसके दरवाजे पर बैठे थे। मंजरी स्नान करने के बाद पूजा-आरती करने के बाद बड़ी थाल में चने-गुड़ का प्रसाद लिए दरवाजे खोल बाँटने लगी। यह मंजरी के लिए परम आनंद की अनुभूति का क्षण था।



संपर्क

पुष्पेश कुमार ‘पुष्प’— विनीता भवन, निकट-बैंक ऑफ इंडिया, काजीचक, सवेरा सिनेमा चौक, बाढ़- 803213 (बिहार), मो 09135014901, ई-मेल—pushpeshkumar530@gmail.com

“जो कुछ भीथा जहाँ-तहाँ हर तरफ
शोर की तरह लिखा हुआ
उसे ही लिखता हूँ
संगीत की तरह”

— मंगलेश डबराल

दादा जी

देवेन्द्र कुमार मिश्रा*

जब माँ बेटे को लेकर चिंताग्रस्त रहने लगे और पिता के चेहरे पर तनाव दिखने लगे और मामूली से विवाद पर वो चाहे परिवार के किसी भी सदस्य के साथ हो, पिता के मुँह से निकल जाए कि कब तक बैठे-बैठे मुफ्त की खाते रहोगे। कुछ करते-धरते क्यों नहीं? और बेटे के जवान खून का स्वाभिमान उसे ललकारने लगे और ऐसे में भी कोई नौकरी हाथ न लगने की निराशा से बेटा स्वयं को परिवार से अलग मानने लगे। उसे लगने लगे कि ये घर उसका नहीं। माता-पिता का है। अब इस घर में गुजारा संभव नहीं है। और माँ भी चुप-चुप सी रहकर बेटे को अपने पैर पर खड़ा होने की सलाह यदा-कदा देने लगे तब बेटा क्या करें? वही जो कार्तिक ने किया।

उसने शहर के ही एक मेडिकल शॉप में काम करना शुरू कर दिया। मध्यमवर्गीय पिता को इस बात से ठेस पहुँची और उन्होंने कहा— *क्या इसलिए खून-पसीना बहाकर पढ़ाया कि तुम इसी शहर में पाँच हजार रुपये माह की नौकरी करके मेरी नाक कटवाओ। मुझे हँसी का पात्र बनाओ। क्या कहेंगे लोग कि बड़े बाबू का लड़का और दूसरे की दुकान में नौकर। कोई ढंग की नौकरी नहीं तलाश सकते।* इसका एक ही अर्थ हुआ कि शहर छोड़ दिया जाए। क्योंकि व्यवसाय करने के लिए पिता से रुपये माँगे जाएँ तो यही उत्तर मिलेगा कि मकान बनाने में, बेटी की शादी करने में जीवनभर की जमा पूँजी खर्च हो गई। जो थोड़ा बहुत पैसा अपने बुढ़ापे के लिए बचा रखा है। उस पर भी तुम अपनी गिद्ध दृष्टि जमाकर बैठे हो। उनका कहना सही भी है लेकिन सरकारी नौकरी तो मिलने से रही। सारे प्रयास विफल हो चुके हैं।

फिर बस एक अंतहीन बहस ही होते रहनी है। कुछ सार तो निकलना नहीं है। मध्यमवर्गीय आदमी को अपनी इज्जत की बड़ी फिक्र लगी रहती है। जीवन गुजर जाता है इज्जत बनाने में फिर उसे बचाने में। दूसरे की दुकान पर नौकरी करना उनके सम्मान के खिलाफ था। सो बेटे कार्तिक ने मन ही मन शहर छोड़ने का फैसला कर लिया। वह दिन-रात यही सोचता रहता। कि कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? हिंदी मीडियम से एम.ए. पास व्यक्ति को कौन नौकरी देगा? बड़ी प्राइवेट कंपनियों में अग्रेजी

* हिंदी भाषा के वरिष्ठ लेखक और पत्रकार।

बोलने वाला चाहिए। उसे कंप्यूटर में दक्षता हासिल होनी चाहिए। तो वो क्या करें? जब सीधे रास्ते सारे बंद नजर आने लगे तो व्यक्ति उल्टा—सीधा सभी तरह से सोचने लगता है। कार्तिक को रुपये चाहिए थे। अच्छी नौकरी चाहिए थी। जो उसे मिलती नजर नहीं आ रही थी। चारों तरफ अँधेरा ही अँधेरा नजर आ रहा था। इससे पहले कि पिता फिर कोई ऐसी कठोर बात कह बैठे। इससे पहले कि माँ प्रेम से उलाहने देने लगे कि बेटा जल्दी से कोई नौकरी तलाश ले। शादी की उम्र हो गई है। लड़की वाले आने लगे हैं। पूछने पर उनसे क्या कहूँ कि बेटे को अभी तक कोई नौकरी नहीं लगी। इस उम्र में भी बेटा रोजगारहीन है। ऐसे में कौन अपनी लड़की देगा। और एक दिन वह अपनी डिग्रियाँ लेकर घर से निकल पड़ा महानगर की ओर कि शायद कुछ बात बन जाए घर में उसने इतना ही कहा—

“यहाँ तो नौकरी मिलने से रही। मैं नौकरी की तलाश में बाहर जा रहा हूँ। शायद कोई बात बन जाए। पिता के ये पूछने पर कि कहा जा रहे हो?”

उसने कहा— “नौकरी की तलाश में।”

“कब तक लौटोगे और वहाँ रहोगे कहाँ?”

“एक माह तक कोशिश करूँगा। मेरा एक दोस्त रहता है मुंबई में उसी के घर जाकर रहूँगा। उससे बात कर ली है।”

“और एक माह में भी बात नहीं बनी तो।” पिता ने प्रश्न दागा जो तोप के गोले की तरह था।

कार्तिक चुप रहा। उसे चुप देखकर पिता ने कहा— “एक माह बाद खाली हाथ वापिस आ जाओगे। नौकरी की तलाश में जा रहे हो या मौज मस्ती करने।”

“मौज मस्ती के लिए रुपये चाहिए होते हैं।” कार्तिक ने नाराजगी से कहा।

पिता ने उसके हाथ पर दस हजार रुपये रखते हुए कहा— “ये रख लो। और हो सके तो खाली हाथ मत लौटना। इतनी कमाई वाली नौकरी जरूर ढूँढ लेना कि भविष्य में अपने साथ—साथ अपने परिवार का पालन—पोषण कर सको। रोटी—कपड़ा जुटा सको।”

जवान बेटे पर वृद्ध बाप को भरोसा नहीं रहता। क्यों नहीं रहता, पता नहीं। उन्हें शायद लगता होगा कि बेटा घूम—फिरके वापिस आ जाएगा। इससे कुछ होने वाला नहीं है। पिता के गुस्से से, उनके कड़वे बोल से बेटे के मन में कड़वाहट भर जाती। आपस में दूरियाँ भी। और एक दिन बेटे ने नौकरी की तलाश कहकर शहर छोड़ दिया। उस शहर से दूर जो उसकी जन्मभूमि थी। वहाँ रहने के लिए कुछ बचा भी नहीं था। उसके सारे दोस्त या तो सरकारी, ऊँची कंपनी में नौकरी कर रहे थे या शहर में ही कोई स्वयं का अच्छा बिजनेस। ऐसे में बेकारी और रोजगार, गरीबी और अमीरी का अंतर मित्रता समाप्त करने के लिए काफी होता है। सफल दोस्त मुँह टेढ़ा

करके निकल जाते हैं। घर—बाहर, मित्रों से मिलते अपमान से तिलमिलाता वह महानगर जाने वाली ट्रेन में सवार हो गया। दिमाग में रह—रहकर प्रश्न उठ रहे थे कि वो कहाँ जाए? करे क्या? अब तो ईश्वर ही कुछ कर सकता है। या तो ईश्वर कुछ करता ही नहीं है और करता है तो न्याय प्रक्रिया की गति की तरह करता है। धीरे—धीरे इतने धीरे कि कई बार लगता है कि कोई ईश्वर नहीं है। महीने भर कार्तिक मुंबई में भटकता रहा। काम मिला भी तो होटल का, हॉकर का, किसी दुकान में पार्ट टाइम फुल टाइम। कुछ जगह उसे टैक्सी चलाने का भी काम मिला किंतु उसके पास लाइसेंस नहीं था। हर बड़ी कंपनी में अंग्रेजी न बोल पाने के कारण उसे रिजेक्ट कर दिया गया। एक कंपनी के मैनेजर ने कहा— *पोस्टग्रेजुएट हो और अंग्रेजी नहीं आती*। उसे आश्चर्य हुआ। और अपने आश्चर्य के साथ उसने काम देने से मना कर दिया। उसने ये जरूर कहा कि मैं तुम्हें कंपनी में वॉचमैन की नौकरी दे सकता हूँ। रहने को एक कमरा दिया जाएगा। वह ना करने वाला था कि उसे पिता के गुस्से, तनाव में कहीं बात याद आ गई।

“कब तक मुफ्त की रोटियाँ तोड़ते रहोगे?” कार्तिक ने हाँ कर दी। वह रातभर कंपनी की रखवाली में हाथ में लाठी लिए घूमता रहता। सीटी बजाता रहता और दिन भर सोता रहता। अपने हाथ से अपना खाना पकाता। बर्तन धोता। वॉचमेन की ड्रेस पहनता और चल देता नौकरी पर। एक दिन पिता का फोन आया। कार्तिक ने बताया कि उसे नौकरी मिल गई है एक कंपनी में। शुरुआती वेतन 8000 /— रुपये प्रतिमाह है। रहने को एक कमरा भी मिला है कंपनी की तरफ से।

“किस पोस्ट पर हो।” पिता ने पूछा।

कुछ देर वह सोचता रहा। फिर उसने जवाब दिया।

“एकाउंटेंट”

“न तुमने कॉमर्स लिया था। न तुमने एकाउंट का कोर्स किया था। फिर एकाउंटेंट कैसे बना दिया तुम्हें?” कार्तिक ने फोन काट दिया।

कुछ दिनों बाद माँ का फोन आया।

“बेटा एक अच्छा रिश्ता आया है। अब तो तुम्हारी नौकरी भी लग गई है तुम्हारी शादी की बात करूँ”।

“अभी नहीं।”

“तो कब करेगा शादी?”

“पहले मुझे ढंग से सेटल तो हो जाने दो।”

कहते हुए कार्तिक ने फोन काट दिया। पता नहीं माँ—पिताजी मुझे मनाने के लिए या ये देखने के लिए कि मैं सचमुच नौकरी कर रहा हूँ या नहीं एक दिन मेरे ऑफिस में चले आए।

कंपनी से उन्हें मेरे क्वार्टर का पता मिला। क्वार्टर क्या था? एक कच्चा, सीलन भरा कमरा था। जिसमें सांस लेने में भी दिक्कत होती थी।

कार्तिक माँ-बाबूजी को सामने देखकर घबरा गया। माँ की आँखों में तो आँसू थे और पिताजी का चेहरा उतरा हुआ था।

“जब काम ढंग का नहीं मिला तो वापिस क्यों नहीं आ गया?” पिताजी ने गरजती आवाज में कहा।

“आपने ही तो कहा था कि कब तक मुफ्त की.....”

“पिता हूँ तुम्हारा। पिता गुस्से में बहुत कुछ कह जाते हैं। इसका मतलब ये तो नहीं कि हर बात दिल पर लगा लो।”

“काम कोई छोटा-बड़ा नहीं होता पिताजी। मैं ईमानदारी से अपने पैर पर खड़ा हूँ।” कार्तिक ने कहा।

“हाँ, वो तो मैं समझ गया बेटा कि तुम अपनी जिम्मेदारी समझते हो। लेकिन इतनी खराब हालत भी नहीं हमारी कि तुम्हें इतनी छोटी नौकरी करनी पड़े। तुम वापिस चलने की तैयारी करो। मैंने तुम्हारे लिए नौकरी की व्यवस्था कर ली है। हम आज रात ही लौटेंगे। मैं रात की ट्रेन की टिकिट बुक करवाकर आता हूँ।” पिताजी स्टेशन चले गए। माँ ने कहा— “बेटा, यदि अच्छी नौकरी होती। तुम बढ़िया तरीके से रहते तो नौकरी छोड़ने को नहीं कहती। बेटा दूर भी रहे माँ-बाप से और सुखी भी न रहे। आजीविका अनुकूल न हो तो अपने घर में दाल-रोटी खाकर रहेंगे साथ में।”

“लेकिन माँ, अपने शहर में भी तो पिताजी को मेरा किसी की दुकान पर काम करना मंजूर नहीं।”

“हाँ, लेकिन ये काम भी उन्हें मंजूर नहीं। मुझे भी नहीं। तुम चिंता मत करो। तुम्हारे लिए अच्छी नौकरी का बंदोबस्त कर लिया जाएगा।”

“लेकिन माँ तब तक मैं बेरोजगार घूमूँगा।”

“बेरोजगार क्यों घूमेगा? अपने घर में रहोगे। तुम्हारे दादाजी ने बहुत डाँटा मुझे और तुम्हारे पिताजी को। जब उन्हें पता चला कि मेरी उपेक्षा और पिताजी के कटुवचनों से तुम रोजगार के लिए शहर छोड़कर मुंबई चले गए हो।”

दादा जी ने कहा— “जवान बेटे से बात करने का ये तरीका नहीं होता। गरम खून है कहीं गुस्से और निराशा में कुछ कर बैठे या कोई गलत रास्ता पकड़ ले तो फिर जिंदगी भर रोते रहोगे। जैसे बेटा के विवाह की जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। वैसे ही आज के बेरोजगारी के दौर में बेटे को पढ़ाना-लिखाना ही काफी नहीं होता। पिता को उसे रोजगार में भी लगाना पड़ता है। मेरे एक दोस्त ने अपने बेटे को यही कहा था। एक बेटे ने बेरोजगारी के कारण पहले शहर छोड़ा। फिर वहाँ किसी ईसाई लड़की से शादी करके घरजमाई बन गया। उसके बाद ससुर और पत्नी की

जली-कटी सुननी पड़ती थी उसे। मजबूरन दो नंबर के काम करने लगा। और एक दिन पकड़ा गया। तो पुलिस ने नारकोटिक्स का केस बनाकर जेल भेज दिया। वर्षों बाद जेल से छूटा तो पत्नी दूसरी शादी कर चुकी थी। ससुर ने घर के बाहर से अपराधी कहकर भगा दिया। अंत में उसने आत्महत्या कर ली। बेटे के भविष्य के लिए एक खेत नहीं बेच सकते। छाती पर रखकर ले जाओगे। अपने मरने पर बेटे को हिस्सा दोगे लेकिन तब तक बेटा ही न रहा तो। तुम्हारे पास है तो अभी करो बेटे के लिए कुछ। उसे रोजगार पे लगा दो। तभी उसकी शादी कर पाओगे। अपने हाथों से बेटे का शुभ-शुभ देखना, करना चाहते हो तो तुम्हें ही कुछ करना पड़ेगा बेटे के लिए। अपने मान-सम्मान के चलते यदि उसे किसी की दुकान में नौकर बने नहीं देखना चाहते तो मालिक बनाओ। भले ही छोटा सा व्यापार क्यों न हो। हाँ, यदि तुम्हारी स्थिति इस लायक नहीं होती तब फिर बात अलग होती।

फिर तुम्हें भी उसके किसी की दुकान पर नौकरी करने में शर्म महसूस नहीं होती मैंने भी तुम्हें पढ़ा-लिखाकर छोड़ नहीं दिया दुनियाँ की भीड़ में कि जाओ और कमाओ। नौकरी से लगाया उस समय नौकरी मिलना आसान था। फिर तुमने बेटे की पढ़ाई पर ध्यान दिया होता तो उसे तकनीकी शिक्षा देते। डिग्री न सही कोई डिप्लोमा करवाते। आज के तकनीकी युग में एम.ए. की डिग्री से क्या होता है? इंजीनियर न सही मैकेनिक का कोर्स करवा देते। आई.टी.आई. में दाखिला करवा देते। कम से कम अपने लिए रोजगार तो ढूँढ लेता। खुद का कोई काम शुरू कर सकता था। इलेक्ट्रीशियन, प्लंबर, कंप्यूटर का ही काम कर लेता।”

माँ के कहने से लगा कि पिताजी को शायद अपनी गलती समझ में आ गई है। उन्हें दुःख हुआ कि उनके डाँटने, घर से भगाने वाले तरीके से बेटा हाथ से निकल सकता है। दादाजी की बुजुर्ग बुद्धि का तो मैं कायल हो गया। इसलिए नहीं कि उनके कहने पर मुझे घर ले जाने आए हैं माँ-पिताजी। बल्कि इसलिए कि इतनी समझ, वर्तमान समय की इतनी जानकारी। जवान पोते के दिल में चल रही उथल-पुथल पर इतनी पकड़। माँ ने कहा— “तुम्हारे दादाजी ने कहा है कि यदि किसी गलत रास्ते पर नहीं भी चला होगा तो मुंबई में ऑटो-टेक्सी चला रहा होगा या किसी होटल में काम कर रहा होगा। ये भी हो सकता है कि किसी कॉलोनी, किसी कंपनी में चौकीदार हो। जाओ देखकर आओ। संतुष्ट हो तो मिलकर लौट आना न हो तो मनाकर लेते आना।”

“वाह दादाजी” मैंने मन ही मन कहा। कार्तिक के पिताजी तीन टिकिट लेकर आ गए वर्दी और क्वार्टर की चाबी मैंनेजर को सौंपी। रात की ट्रेन से कार्तिक, माँ-पिताजी के साथ अपने शहर, अपने घर की ओर चल पड़े।

गाँव से दादाजी शहर आ चुके थे। कार्तिक ने चरण स्पर्श किए। दादाजी ने सीने से लगाकर जीते रहो का आशीर्वाद दिया। फिर पूछा— “खेती करोगे या व्यापार।”

“व्यापार का तो कोई अनुभव नहीं है दादाजी।” कार्तिक ने लाचारी भरे स्वर में कहा।

दादाजी ने समझाते हुए कहा— “ऐसे उदास, हताश होने से काम नहीं चलेगा। अनुभव काम करते—करते ही आता है। तुम्हारा रुझान किस तरफ है?”

“दादाजी मैं खेती करना चाहता हूँ।” कार्तिक ने कहा।

“बेटा, किसानी तुम कर पाओगे। मुझे नहीं लगता। जब तुम थोड़ी—थोड़ी सी बात पर उदास हो जाते हो तो किसानी तो बहुत जोखिम और हिम्मत का काम है। कभी अकाल कभी बाढ़। कभी सब्जियों के, फसल के उचित दाम न मिलना। कभी सरकार की उदासीनता। कई किसान तो आत्महत्या तक कर लेते हैं। बहुत हिम्मत चाहिए किसान बनने के लिए। सरकारी अमले के भ्रष्टाचार से गुजरते हुए मंडी के व्यापारियों की कीमत पर अनाज बेचना पड़ता है कौड़ी के दामों पर। लागत भी नहीं निकलती कई बार। लेकिन है राजा काम। आप अपने मालिक खुद। लाभ—हानि तो लगी रहती है।”

मैंने दादाजी की बात काटते हुए कहा— “दादाजी मैं किसान ही बनूँगा। फिर सरकार कर तो रही है बहुत कुछ। किसानों के लिए कर्ज माफी तक।”

“नहीं बेटा, कर्ज हमें लेना भी नहीं है। बस अकाल, बाढ़ में फसल नष्ट होने पर सरकारी मुआवजा किसानों के पास ईमानदारी से पहुँच जाए इसके लिए तुम्हारे जैसे पढ़े—लिखे व्यक्ति का किसान होना बहुत जरूरी है। हमारी सरकार से बस इतनी लड़ाई है कि उपज का उचित मूल्य मिले। अब बोलो क्या कहते हो? चाहो तो शहर में कोई दुकान खोलकर बैठ जाओ चाहे तो किसानी करो।”

“दादाजी मैं शहर में अपना गोदाम बनाकर अपना अनाज स्वयं बेचूँगा। और भी किसानों का अनाज बेचूँगा। ताकि जल्दबाजी में किसानों का शोषण न हो सके। किसान अपना अनाज स्वयं खुले मार्केट में बेचेंगे। किसान, खेती भी करेंगे फसल आने पर शहर आकर उसे स्वयं बाजार में बेचेंगे।”

“ये तो बहुत बढ़िया बात हुई। किसान पढ़ा—लिखा हो। उसके पास बाजार में अनाज बेचने के साधन हो तो फिर कौन उसका शोषण कर सकता है? किसान स्वयं अपनी कीमत पर अपनी फसल बेचेगा। तो क्या समझूँ मैं?”

“दादाजी मैं किसान बनूँगा। खेती करूँगा।” पोते की बात सुनकर दादाजी खुश हो गए। माँ—पिताजी के चेहरे पर भी प्रसन्नता छा गई। कार्तिक का विवाह संपन्न हो गया। गुजरते समय के साथ वह दो बच्चों का पिता भी बन गया।

खेत में काम करते हुए मजदूरों को देखते दादा—पोते एक साथ टहल रहे थे। कार्तिक ने अचानक पूछा— “दादाजी आपको मुंबई के विषय में इतनी जानकारी कैसे है? वहाँ के जीवन अपराध, रोजगार और जैसा कि आपने पिताजी से कहा था कि

गलत काम नहीं कर रहा होगा तो होटल में बैरा बना होगा या टेक्सी, ऑटो चला रहा होगा या कहीं चौकीदारी कर रहा होगा।”

दादाजी के चेहरे पर हल्की सी मुस्कान आ गई। उन्होंने धीरे से कार्तिक के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा— “किसी से कहना मत। अपने बाप से तो बिल्कुल भी नहीं।” एक बार मैं भी घर से भागकर मुंबई गया था। उस समय उसे बंबई कहते थे। और कार्तिक बिस्मित था। अवाक् था। फिर उसने एक ठहाका लगाया उसके ठहाके के उत्तर में दादाजी ने और भी जोरदार ठहाका लगाया।



संपर्क

देवेन्द्र कुमार मिश्रा— राजुल ड्रीम सिटी, A-29, फर्स्ट फ्लोर अमखेड़ा रोड़, जबलपुर
(म. प्र.)—482004, मोबाइल—9425405022, ई—मेल—devendra.5022mishra@gmail.com

“दर्द के रिश्ते
जब नम होने लगे
और गीत रचने लगेंगी
सन्नाटों की हवाएँ
समझ लो आदमी का लहू
कहीं सस्ते में बिका है”

— ओमप्रकाश वाल्मीकि

कवरुमेण्ट् वेलै

मूल : एस. वीरापांडियन*

अक्काक् कल्याणम्
अरैकुरैया मुटिञ्चतु
वट्टि ऊर् रेदुत्तु वीटु
अटमानम् आच्चु

अप्पा आपरेचन्ल
मूळकात मिच्च चोच्चम्
नकैयुम् मुक्काल् विलैयाच्चु
पणङ्काचु इल्लाट्टियुम्
मानम् मरुवातै मुक्कियम्नु
ऐप्पप् पात्तालुम् चोन्न
अम्मावोटक्
कळुत्तुक् काल्काचुम्
कटैक्कुप् पोन् पिन्नाटि
कयुत्तुक्कु केळङ्कु मञ्चावक्
कम्मियात्तान् तेय्क्कुत्तु
वम्बत्तुक्कु ओरु उत्थोकम् वेण्डुम्
वायारप् पेचुन् तात्ता
कातारक् केक्कामच् चेत्तुप्पोनार्
ओटक्करै निलत्तुल
ओरु कळनि वाङ्क
ओयाम आच वेच्चि
उळ्ळ कळनियुम् वेळङ्कामप् पोच्चु...
कल्याणत्तुक्कुक्

* लेखक, सहायक प्रोफेसर, तमिल विभाग, पच्चैयप्पास कॉलेज फॉर मेन कांचीपुरम, तमिलनाडु

कालम् पोच्चु;
'कूटप्पटिविकरानाम् कूरुकेट्टवन्'नु
ऊरेधल्लाम् पेच्चु;
ओण्टा चैन्
ओटिप्पोच्चु;
उर्र नट्पुकळुम्
ओट्टामाप् पोच्चु;
उचुरा नेनच्च पटिप्पे
इप्पटि ओन्नुत्तुक्कुम्
उपयोकमतुप् पोच्चु ।।

वचन्तकालम् पोऱन्तिटुच्चुनु
वायारा वाळत्तुर
अण्णातुरै चार्किट्ट
ऐप्पटि चोल्लुवेन्;
'ऐल्लाम् पोन्पिन्पु
कटैचियाय् वन्तु चेर्त्तु
कवुरुमेण्ट् वेलै'... ।



संपर्क

एस. वीरापांडियन: सहायक प्रोफेसर, तमिल विभाग, पच्चैयप्पास (Pachaiyappa's)
कॉलेज फॉर मेन, कांचीपुरम, तमिलनाडु-6315011, मोबाइल-7871612211,
ई-मेल: vvraa.s@gmail.com

सरकारी नौकरी

अनुवाद : पी सरस्वती*

बड़ी बहन का विवाह
मेरे आर्थिक योगदान के बगैर
आधा-अधूरा ही संपन्न हुआ
जो कर्ज लिया उसके ब्याज तले दबकर
घर गिरवी रखना पड़ा।

पिताजी के ऑपरेशन में
पहले से गिरवी रखे गहनों को भी
तीन-चौथाई कीमत पर बेचना पड़ा।

पैसा न होते हुए भी,
मान-सम्मान सबसे बढ़कर है,
ऐसा सदा कहने वाली माँ के
मंगलसूत्र के पीले धागे में गूँथे गए
सोने के सिक्के को
मान-सम्मान छोड़कर
जब दुकान पर बेचा गया,
तब से उस पीले धागे पर
हल्दी नाममात्र के लिए लगाती है।

“वंश में कम से कम एक व्यक्ति को सरकारी नौकरी करनी ही चाहिए,
ऐसे कहने वाले दादाजी,
उस ख्वाहिश को पूरा होते देखे बिना ही दुनिया से चल बसे।

* सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय।

नदी के किनारे
एक खेत खरीदने की
अथाह लालसा ने
जो अपना खेत था, उसे भी उजाड़ दिया।

शादी की उम्र निकल गई; पर
'बेवकूफ आगे पढ़ाई में लगा है'
ऐसी गाँव में चर्चा होने लगी।

होंडा शाइन गाड़ी खरीदने की आशा,
निराशा में बदल गई
दोस्त भी समय आने पर साथ छोड़कर चले गए;
शिक्षा को जो जान से बढ़कर समझा
अब वह किसी काम की नहीं रही।

सरकारी नौकरी मिलने के बाद
'वसंत का मौसम आ गया'
कहकर हार्दिक बधाई देने वाले अण्णादुरै सर से
मैं कैसे कहूँ कि
सब कुछ खो देने के बाद,
आखिरकार अब यह सरकारी नौकरी मिली है।



संपर्क

पी. सरस्वती—सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय, मरीना परिसर,
चेन्नई—600005, मोबाइल—9381297979, ई—मेल— psarashindi@gmail.com

देसलाई काठी

मूल : सुकांत भट्टाचार्य (1926-1947)*

आमि ऐकटा छोट्टो देसलाईएर काठी
ऐतो नगन्यो, हौयतो चोखेओ पोड़ि ना
तोबू जेनो
मुखे आमार ऊसखूस कोरछे बारुद—
बूके आमार जोले उठबार दूरंतो उच्छवास;
आमि ऐकटा देसलाई काठी

मोने आछे सेदिन हूलस्थूल बेधेछिलो?
घौरेर कोने जोले उठेछिलो आगुन —
आमाके औबोजा—भोरे ना—निभिए छूंडे फैलाए!
कौतो घौर के दिएछि पुड़िए,
कौतो प्रासाद के कोरेछि धूलिसात्
आमि ऐकाई — छोट्टो ऐकटा देसलाई काठी।

ऐमनि बोहू नौगोर, बोहू राज्यो के दीते पारी छारखार कोरे
तौबूओ औबोजा कौरबे आमादेर?
मोने नेई? ऐई सेदिन
आमरा सौबाई जोले उठेछिलाम ऐकई बाक्से;
चोमके उठेछिले —
आमरा शुनेछिलाम तोमादेर विवर्णो मुखेर आर्तोनाद।

* बांग्ला साहित्य के एक प्रखर और प्रतिभाशाली 'किशोर विद्रोही कवि' जिन्हें 'तरुण नजरूल' भी कहा जाता है, मात्र 21 वर्ष की अल्पायु में निधन के बावजूद उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से ब्रिटिश शासन, सामाजिक विषमता और शोषण के खिलाफ बुलंद आवाज उठाई। 'क्रोड़पत्र', 'धूम नेई' और 'पूर्वाभास' उनके प्रमुख व चर्चित काव्य-संग्रह हैं।

आमादेर की औसीम शोक्ति
ता तो ओनुभौब कोरेछो बारंबार ;
तोबू केनो बोझो ना,
आमरा बोंदी होए थाकबो न तोमादेर पौकेटे पौकेटे,
आमरा बेरिए पोड़बो, आमरा छोड़िए पोड़बो
शौहोरे, गौंजे, ग्रामे – दिगोंतो थेके दिगोंते

आमरा बार-बार जोलि, नितांतो औबोहेलाए
ता तो तोमरा जानोई!
किंतु तोमरा तो जानो ना?
कौबे आमरा जोले उठबो –
सबाई शेषबारेर मौतो!



हे कवि, आसपास के रिसते घावों की अनदेखी करूँ अगर मैं
तो बेझिझक मेरी मृत्यु की घोषणा कर दो;
वंचितों के साथ जारी मेरा संवाद थम जाए
तो फौरन मेरा ज़मीर गिरवी होने का एलान कर दो!

— यशवंत मनोहर

माचिस की तीली

अनुवाद : नीलम शर्मा 'अंशु'*

मैं एक नन्हीं—सी माचिस की तीली हूँ।
इतनी तुच्छ कि शायद किसी को नज़र भी न आऊँ।
फिर भी जान लो—
मेरे मुँह पर बारूद मचल रहा है
सीने में मेरे कुलबुला रहा है धधक उठने का तीव्र आवेग
मैं एक माचिस की तीली हूँ।

याद है, उस दिन कैसी अफरा—तफरी मची थी?
घर के एक कोने में आग भड़क उठी थी—
तिरस्कारपूर्वक बिना बुझाए मुझे फेंक दिया गया था!
न जाने कितने घरों को जलाकर खाक कर दिया,
न जाने कितने महलों को मटियामेट कर दिया।
मैंने अकेले ही — मैं एक नन्हीं—सी माचिस की तीली।

ऐसे ही न जाने कितने नगरों, कितने राज्यों को
मैं खाक में मिला सकती हूँ।
फिर भी क्या हमारा तिरस्कार करोगे?
याद नहीं? अभी तो उस दिन की ही बात है—
जब हम सब एक ही डिबिया में एक साथ सुलग उठे थे;
चौंक गए थे तुम —
हमने तुम्हारे मलिन चेहरों का आर्तनाद सुना था।

* केंद्र सरकार में सेवारत वरिष्ठ अनुवादक, लेखिका और पूर्व दिल्ली एफ.एम. रेनबो पर आर.जे. हैं। 25 वर्षों तक आकाशवाणी में सेवा। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। 'तिस्टा पारेर बृत्तांतों' और 'बीरबल' जैसी प्रमुख कृतियों का पंजाबी व हिंदी में अनुवाद किया है।

हमारी शक्ति कितनी असीम है,
यह तुम बार-बार अनुभव कर चुके हो;
फिर भी क्यों नहीं समझते
कि हम तुम्हारी जेबों में कैद होकर नहीं रहेंगे।
हम निकल पड़ेंगे, हम फैल जाएँगे —
शहरों, कस्बों, गाँवों में—दिगंत से दिगंत तक।

हम बार-बार जल उठते हैं,
तुम्हारी अवहेलना के कारण—
यह तो तुम सब जानते ही हो!
लेकिन तुम यह नहीं जानते—
कब हम सब भड़क उठेंगे
एक साथ, आखिरी बार!



संपर्क

नीलम शर्मा 'अंशु' प्लैट-बी.जी., टाइप-4, टॉवर-2, ईस्ट किदवई नगर, नई
दिल्ली-110023, मोबाइल-9830293585, ई-मेल: rjneelamsharma@gmail.com

मैंने अपनी कविता में लिखा है
'मैं अब घर जाना चाहता हूँ',
लेकिन घर लौटना नामुमकिन है;
क्योंकि घर कहीं नहीं है।

— श्रीकांत वर्मा

उचित शब्द की तलाश में

राजेन्द्र उपाध्याय*

उचित शब्द मिलेंगे
वहाँ उस तट पर
उस नदी के किनारे

भटकता हूँ इसलिए
यहाँ से वहाँ
वहाँ से यहाँ
इस तट से उस तट
किसी नदी के किनारे
किसी ताल तलहटी में।

गया हूँ दूर-दूर
पर्वतों के भी पार

उचित शब्द
शायद किसी पोखर में पड़े हों,
खिले हों कमल की तरह
किसी तरु के कोटर में रखे हों
छोड़ गया हो उन्हें वहाँ कोई आदि कवि
मुझ अकेले अकिंचन कवि के लिए
इसीलिए गया हूँ दूर बहुत दूर
भटका हूँ
उचित शब्द की तलाश में
पर नहीं मिले
मिले भी कभी तो
जैसे गगन में चमकी विद्युत कली
या डाल पर क्षण भर को खिली कली कोई
या तितली

* पूर्व संयुक्त निदेशक, आकाशवाणी दिल्ली। कवि, कथाकार, समीक्षक, अनुवादक और यात्रा-वृत्तांतकार।

गया हूँ दूर-दूर
भटका उचित शब्द की तलाश में
महलों में अट्टालिकाओं में
तो झोंपड़ियों का भी द्वार खटखटाया
मंदिरों में बजाए घंटे
मस्जिदों में भी गया
राजा के दरबार से लेकर साधुओं की गुफा में भी
रानी के दरवाजे दस्तक दी तो विधवा की कुटिया में भी धूनी रमाई
पर नहीं मिले
उचित शब्द
महिलाएँ शृंगार में
पुरुष काम पर
बूढ़े झपकी ले रहे थे
किससे पूछता उचित शब्द
किस गुरु से किस मुल्ला मौलवी से
किस साधु किस फकीर से
कवि सब
उचित शब्द बेचकर
पुरस्कार खरीद चुके थे।
आलोचक उन्हें रगड़-रगड़कर भोंथरा कर चुका था
उचित शब्द नहीं थे।
मैं भी उन्हें बेच चुका था।
हारकर बैठा नदी किनारे
कि चिड़िया आकर मेरे कान में कह गई कुछ
शायद यहीं, यहीं हो मेरा
उचित शब्द।



संपर्क

राजेन्द्र उपाध्याय— जी-402, सिपिटेका संप्रति, सेक्टर-77, नोएडा-201301,
मोबाइल-9953320721, ई-मेल-rajendra.upadhyaya58@gmail.com

हिंदी कविता

जोग लिखी पाती

शैलेन्द्र चौहान*

मेरी नींद में
घुस आए हैं वे सपने
जिन्हें मैंने कभी देखा ही नहीं
मेरे शब्दों की तलाशी ली जा रही है
मेरी खामोशी पर
मुकदमे दर्ज हैं

मैंने नहीं लिखा था
यह शब्दों का यह जंगल
मैं तो बस
एक पत्ता था
हवा में काँपता हुआ
समय ने
मेरी उँगलियों में थमा दी है
यह रिसती हुई कलम

जोग लिखी यह पाती
उनके नाम है
जो अब भी
अपने भीतर बची हुई
उस छोटी-सी आग को
जगाए हुए हैं

मित्रो,
यदि यह पाती

* वरिष्ठ कवि, कथाकार, आलोचक एवं स्वतंत्र पत्रकार। 'नौ रुपये बीस पैसे के लिए' (कविता) और 'पाँव जमीन पर' (उपन्यास) जैसी कई चर्चित कृतियों के लेखक। 'धरती' पत्रिका के संपादक।

तुम तक पहुँचे
तो इसे सिर्फ पढ़ना नहीं
महसूस करना
क्योंकि शब्दों के पीछे
जो चुप्पी है
वही असली वेदना है



संपर्क

शैलेन्द्र चौहान : 34 / 242, सेक्टर-3, प्रतापनगर, जयपुर-302033, मोबाइल-7838897877,
ई-मेल: shailendrachauhan@hotmail.com

“ठगा भी गया हूँ, धोखा भी खाया है। बहुत कम स्थलों पर
विश्वासघात नाम की चीज मिली है। केवल उन्हीं बातों का
हिसाब रखूँ जिनसे धोखा खाया है तो जीवन कष्टकर हो
जाएगा परंतु ऐसी घटनाएँ बहुत कम नहीं हैं,
जहाँ लोगों ने अकारण सहायता की है।”

— हजारीप्रसाद द्विवेदी

सिक्किम— लोकजीवन और संस्कृति

राम प्रकाश यादव

‘सिक्किम— लोकजीवन और संस्कृति’ वीरेंद्र परमार द्वारा लिखित पुस्तक है, जो कि मित्तल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2024 में प्रकाशित हुई है। वीरेंद्र परमार बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के निवासी हैं। भारत सरकार के विभिन्न विभागों में अनेक पदों पर देश के विभिन्न नगरों में कार्यरत रहे हैं। उन्होंने पूर्वोत्तर भारत में 15 वर्षों तक प्रवास किया है और पूर्वोत्तर भारत के समाज एवं संस्कृति, लोक जीवन, लोक साहित्य और आदिवासी समाज पर विपुल लेखन कार्य किया है। उनकी कुल 28 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें से 18 पुस्तकें पूर्वोत्तर भारत पर हैं। उनकी यह पुस्तक सिक्किम के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन और वहाँ के लोक साहित्य पर केंद्रित है। स्वयं लेखक के अनुसार यह पुस्तक आम पाठकों के लिए लिखी गई है। इसलिए इसमें आकड़ों का मकड़जाल और शब्दों की जादूगरी नहीं है। लेखक का दावा है कि यह पुस्तक सिक्किम के बारे में आम पाठकों की जिज्ञासा का शमन कर सकती है।

सिक्किम की भूमि और वहाँ के लोग, सिक्किम के धर्म एवं पर्व व त्योहार, सिक्किम की जातियाँ और जनजातियाँ, सिक्किम के प्रमुख पर्यटन स्थल, सिक्किम का लोक साहित्य इन सबको समझने के लिए उनकी पुस्तक एक आधार ग्रंथ की तरह हिंदी भाषा में उपलब्ध है। ‘सिक्किम’ नाम की व्युत्पत्ति से लेकर सिक्किम का जनसांख्यिकीय विवेचन, सिक्किम का इतिहास, सिक्किम के लोगों का धार्मिक विश्वास, सिक्किम के जनजीवन की आस्था, वहाँ की परंपरा, वहाँ के तीज— त्योहार इन सभी का विवरण इस पुस्तक में उपलब्ध है। सिक्किम का भारत में सम्मिलित होने का पूरा विवरण भी इसमें उपलब्ध कराया गया है। सिक्किम के जिलों, वहाँ की जलवायु, कृषि और पशुपालन, भोजन, सिक्किम की वानिकी एवं पर्यावरण, वहाँ के उद्योग और खनिज संसाधन, भाषिक परिदृश्य, प्रमुख शहरों का विवरण भी इस पुस्तक में उपलब्ध है।

पुस्तक— ‘सिक्किम: लोकजीवन और संस्कृति’: वीरेंद्र परमार, मित्तल पब्लिकेशन, प्रकाशन वर्ष—2024, मूल्य—700 /, पृष्ठ संख्या— 1701

लेखक के शब्दों में, “यहाँ की शस्य— श्यामला धरती के गर्भ में अनेक रहस्य, अनेक कहानियाँ, अनेक पौराणिक आख्यान, अनेक रोमांचकारी किस्से और अनेक बौद्ध मिथक छुपे हुए हैं। महात्मा बुद्ध के उपदेश यहाँ के कण-कण में बिखरे पड़े हैं जो सिक्किम वासियों को जीवन की राह दिखाते हैं।... सिक्किम की प्रकृति में ही सहिष्णुता, सद्भाव और शांति का संदेश है। प्रकृति यहाँ के निर्दोष और निष्पाप लोगों की सहचरी है। सिक्किम अपने अद्भुत और अनिर्वचनीय सौंदर्य के मोहपाश में बाँध लेता है, अपने निष्कपट हाव-भाव से सम्मोहित कर लेता है और अपने अकृत्रिम आचरण से बार-बार आने के लिए आमंत्रित करता है। यहाँ की मिट्टी में आक्रामकता का लेश मात्र भी नहीं है। आधुनिकता की आँधी के बावजूद सिक्किम वासियों ने अपनी परंपरा, लोक विश्वास और लोक निष्ठा की थाती को सुरक्षित रखा है। जातीय और धार्मिक विविधता के बावजूद यहाँ के निवासियों में अद्भुत सद्भाव देखने को मिलता है। सिक्किमवासियों का पाखंडहीन जीवन और निष्पाप आचरण किसी भी समाज के लिए वरेण्य है। सिक्किमी लोग प्रकृति के प्रति पूजा का भाव रखते हैं। वे उत्सव धर्मी और मिलनसार होते हैं। इनका जीवन ही एक उत्सव है।” यहाँ के मूल निवासी लेपचा जाति के अनुसार यह ‘नीमाय एल लोंग’ है, जिसका अर्थ है— भगवान का निवास स्थान। तिब्बती बौद्ध अनुयायी सिक्किम को ‘युक्सस’ शब्द से संबोधित करते हैं, जिसका अर्थ है— तीन महान लामाओं का मिलन।

‘भूमि और लोग’ अध्याय में सिक्किम की भूमि, वहाँ के समृद्ध प्राकृतिक संसाधन, जलवायु, भोजन, कृषि और पशुपालन, वन एवं पर्यावरण, उद्योग और खनिज संसाधन, संस्कृति, भाषिक परिदृश्य, सिक्किम के प्रमुख शहर आदि बिंदुओं के अंतर्गत सिक्किम की एक पूरी तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। नेपाली के आगमन के बाद हिंदू धर्म सिक्किम का सबसे बड़ा धर्म है, जो कुल जनसंख्या का 64 प्रतिशत है। इसके बाद बौद्ध धर्म का प्रचलन है, जो कि कुल जनसंख्या का 28 प्रतिशत है। सिक्किम के प्रारंभिक निवासी लेपचा समुदाय का पारंपरिक धर्म ‘मुन’ है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार सिक्किम के विभिन्न धार्मिक मतावलंबियों का विवरण भी अपने अपनी पुस्तक में उपलब्ध कराया है। सिक्किम के विभिन्न छोटे-बड़े पर्व और त्योहारों का भी सविस्तार वर्णन इस इस पुस्तक में किया गया है।

सिक्किम में शिक्षा के क्षेत्र में त्रिभाषा सूत्र लागू है—

1. अंग्रेजी प्रथम भाषा के रूप में है।
2. लेपचा, लिंबू, भूटिया या नेपाली द्वितीय भाषा के रूप में हैं।
3. हिंदी तृतीय भाषा के रूप में है।

सिक्किम सरकार द्वारा राज्य भाषाओं के रूप में मान्यता प्राप्त ग्यारह भाषाएँ हैं।

सिक्किम की विभिन्न जातियों और जनजातियों के बारे में एक अध्याय है। सिक्किम को मोटे तौर पर चार जातीय समूहों में बाँटा जा सकता है— लेपचा, लिंबू,

भूटिया और नेपाली। सिक्किम के 21 समुदायों की चर्चा पुस्तक में है। उनके आचार-विचार, रीति-रिवाज, पहनावा, उनके धार्मिक विश्वास, उनके समाज में व्याप्त मान्यताओं व विश्वासों आदि का विवरण पुस्तक में सविस्तार उपलब्ध है। सिक्किम के समुदायों के शोधपरक और विश्वसनीय विवरण में विभिन्न पुस्तकों का भी संदर्भ दिया गया है, जिससे लेखन एक प्रामाणिक लेखन के रूप में सामने आता है।

पुस्तक में सिक्किम के प्रमुख पर्यटन स्थलों की चर्चा की गई है, जिनमें गंगटोक, सोमो झील, नाथु-ला पास, क्योंगनोसला अल्पाइन वन्य जीव अभ्यारण्य, रूमटेक बौद्ध मठ, नामची, यमथांग घाटी, नामग्याल तिब्बत अध्ययन संस्थान, बाबा हरभजन सिंह मेमोरियल, हनुमानटोक, जुलुक, जवाहरलाल नेहरू बोटैनिकल गार्डन, युक्सोम, कंचनजंगा नेशनल पार्क, बौद्ध विहार और पाकयोंग हवाई अड्डा सम्मिलित हैं।

‘सिक्किम का लोक साहित्य’ अध्याय के अंतर्गत आपने सिक्किम के लोकगीतों, लोक नृत्य, लोक कथाओं, मिथकों, लोकोक्तियों एवं कहावतों का वर्णन किया है। लिंबू समुदाय के लोकगीतों के विभिन्न वर्गों का भी उल्लेख इस पुस्तक में मिलता है। खासी समुदाय, निवार समुदाय एवं लेपचा समुदाय के लोकगीतों का भी वर्णन किया है। सिक्किम के विभिन्न प्रकार के नृत्य रूपों की भी चर्चा पुस्तक में की गई है, जिसमें संस्कार नृत्य, उत्सव नृत्य और ऋतु संबंधी नृत्य आदि प्रमुख हैं। सिक्किम की विभिन्न लोक कथाएँ भी लेखक में उपलब्ध कराई हैं, जिसमें दो लेपचा लोककथाएँ ‘अनाथ लड़का और निम्फ नदी’ तथा ‘स्वर्ग की सीढ़ी’ हैं। ‘सुनकेसरी रानी’ नेपाली लोक कथा है। ‘सूर्य और हवा’, ‘खुशी का रहस्य’, ‘तीस्ता और रंगित’, ‘बाघ और बिल्ली’ अन्य लोककथाएँ हैं। नेपाली भाषा की कुछ प्रचलित लोकोक्तियों का भी उल्लेख पुस्तक में पढ़ने को मिलता है। ‘सिक्किम: एक झलक’ के अंतर्गत लेखक ने सिक्किम प्रदेश की प्रमुख विशेषताओं का सार प्रस्तुतीकरण किया है। वहाँ के प्रमुख शिक्षण संस्थानों एवं प्रमुख विश्वविद्यालय की सूची भी इस पुस्तक में है। पुस्तक के अंत में कतिपय फोटोग्राफ भी उपलब्ध कराए गए हैं।

साहित्य की दृष्टि से लेखन ने यह विवरण अत्यंत सरस एवं रोचक है, तो सामाजिक विज्ञान के अध्येताओं के लिए यह विभिन्न जानकारीयों का खजाना भी है। अपने लंबे प्रवास में अपनी गहरी शोध दृष्टि से सिक्किम के विविध पक्षों को लेकर जानकारीयों का अद्भुत संग्रह किया है। मानवविज्ञान के अध्येता भी इस पुस्तक से लाभान्वित होंगे। यह पुस्तक लेखक के लंबे अध्यवसाय का परिणाम है। पूरी पुस्तक में क्रमबद्धता और रोचकता निरंतर बनी रही है।

‘सिक्किम— लोकजीवन और संस्कृति’ पुस्तक के सजिल्द संस्करण का मूल्य 700 रुपए रखा गया है, जो कि सामान्य पाठक के लिए कुछ अधिक है। इस पुस्तक का पेपरबैक संस्करण भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जिससे बड़े पाठक वर्ग को इस पुस्तक का लाभ मिल सके। लेखक का परिश्रम भी तभी सार्थक होगा। कुल मिलाकर

यह एक रोचक और पठनीय पुस्तक है। सिक्किम को जानने- समझने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए यह पुस्तक आवश्यक है। सिक्किम जा रहे पर्यटकों के लिए यह सिक्किम की रहस्यमयी भूमि को जानने का द्वार है।



परिचय

वीरेन्द्र परमार— पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी जीवन, संस्कृति और लोक परंपरा पर विपुल लेखन। पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न शहरों में पंद्रह वर्षों तक प्रवास। संप्रति असम विश्वविद्यालय, सिलचर में पदस्थापित।

संपर्क

वीरेन्द्र परमार— 103, नवकार्तिक सोसायटी, प्लॉट नं.-13, सेक्टर-65, फरीदाबाद-121004, मोबाइल-9868200085, ई-मेल: bksegwb@gmail.com

परिचय

राम प्रकाश यादव— सहायक प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

संपर्क

राम प्रकाश यादव— सहायक प्रोफेसर एवं पूर्व विभागाध्यक्ष (प्रभारी) अनुवाद अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र-442001, मोबाइल-7972952363, ई-मेल: dr.ramprakashyadav@gmail.com

समकालीन संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति : “उम्मीद की तरह लौटना तुम”

सिद्धेश्वर

*कोई उम्र नहीं होती है जाने की,
जाया कभी भी जा सकता है...!*

इन मार्मिक पंक्तियों से आरंभ होने वाली चर्चित साहित्यकार पंकज सुबीर की नवीन काव्य-कृति “उम्मीद की तरह लौटना तुम” अपनी सहजता, संवेदनात्मक गहराई और आंतरिक संप्रेषणीयता के कारण पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में पूर्णतः सक्षम है।

समकालीन कविता के वर्तमान दौर में, जहाँ अनेक कवि छंद से मिली स्वतंत्रता का अर्थ केवल सपाटबयानी समझ बैठे हैं और कविता को गद्य में बदल देने की होड़-सी लगी दिखाई देती है, वहीं पंकज सुबीर अपनी कविताओं में काव्य-बिंबों, संवेदनाओं और आत्मीय भाषा के माध्यम से कविता की मूल आत्मा को बचाने का सार्थक प्रयास करते दिखाई देते हैं। एक जीवंत कवि जब जीवन-संघर्ष, राजनीति, अकेलापन, तकनीकी विस्थापन और सामाजिक तनावों से जूझते हुए अपने अनुभवों को काव्यात्मक बिंबों में ढालता है, तब उसकी कविता केवल शब्द नहीं रह जाती, बल्कि समय की साक्षी बन जाती है। “उम्मीद की तरह लौटना तुम” पढ़ते हुए यही अनुभव बार-बार होता है कि कवि ने अनावश्यक बौद्धिकता और कृत्रिमता से स्वयं को बचाते हुए सार्थक कविता का सृजन किया है।

संग्रह की आरंभिक कविताएँ ही यह संकेत दे देती हैं कि ये कविताएँ हृदय की गहराइयों से निकली हैं, गढ़ी हुई नहीं लगती।

*अचानक कुछ नहीं होता,
कई दिनों से थोड़ा-थोड़ा
घट रहा होता है यह ‘अचानक’,
मगर वह थोड़ा-थोड़ा
दिखाई नहीं देता किसी को...!”*

पुस्तक— ‘उम्मीद की तरह लौटना तुम’: पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष—2025, मूल्य—300/- पृष्ठ संख्या—184

इसीलिए जीवन की सबसे बड़ी टूटन भी, अक्सर चुपचाप भीतर जन्म लेती है, और मनुष्य देर से समझ पाता है कि समय कब उसके हाथों से फिसल गया।

ऐसी कविताएँ लिखी नहीं जातीं, बल्कि संवेदनाएँ स्वयं कवि से लिखवा लेती हैं। यही सहजता इस संग्रह की सबसे बड़ी शक्ति है।

मूलतः उपन्यासकार और कथाकार के रूप में चर्चित पंकज सुबीर का मुक्तछंद की ओर झुकाव भी विशेष ध्यान आकर्षित करता है। उनका एक गजल-संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है, किंतु यहाँ कवि का अंतर्मन अधिक उन्मुक्त होकर बोलता दिखाई देता है—

इन दिनों कुछ हो जाने से
सशंकित रहता हूँ हमेशा,
घर लौटता हूँ तो डरा हुआ—सा रहता हूँ
पचास पार की उम्र
शायद ऐसी ही होती है...!

उम्र के इस मोड़ पर, आदमी बाहर से कम, भीतर से अधिक थकने लगता है, और स्मृतियाँ ही उसका सबसे बड़ा सहारा बन जाती हैं।

इन पंक्तियों में जीवन की असुरक्षा, अकेलापन और समय का दबाव अत्यंत स्वाभाविक रूप में व्यक्त हुआ है। कवि के पिता की मृत्यु के बाद उपजी अंतर्वेदना ने इस संग्रह की अनेक कविताओं को जन्म दिया है। यही कारण है कि इन कविताओं में निजी पीड़ा भी है और व्यापक मानवीय संवेदना भी।

“कुछ दुख इतने गहरे होते हैं
कि शब्द भी काँपने लगते हैं,
आँखों की नमी चुपचाप
कविता बनकर बहने लगती है...!”

मुक्त छंद केवल छंद—मुक्त लेखन नहीं है; वह संवेदनाओं की स्वतंत्र धारा है। आधुनिक मनुष्य की बेचैनी, संघर्ष, सपनों और विडंबनाओं को स्वाभाविक रूप में व्यक्त करने का यह एक सशक्त माध्यम बन चुका है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ एक प्रकार की “कविता—उन्माद” की अवस्था में लिखी गई हैं। यह स्वीकारोक्ति कवि की ईमानदारी को रेखांकित करती है। हालाँकि संग्रह की कुछ कविताओं में सपाटबयानी का आभास भी होता है। उदाहरणतः—

वह जो एक शायर है न/जिसकी कनपटी के बालों में चाँदी चढ़ गई है...!”/
उसकी आँखों में अब भी/कुछ अधूरे स्वप्न चमकते हैं/जिन्हें वह धुएँ के साथ/
धीरे—धीरे आसमान में छोड़ देता है।...

इन पंक्तियों में विचार अधिक और कवितापन अपेक्षाकृत कम प्रतीत होता है, इसलिए ऐसी कविताओं से बचना चाहिए! फिर भी संवेदना का एक धुंधला सौंदर्य

पाठक को आकर्षित करता है। मुक्तछंद कविता में विचारों से अधिक उनकी काव्यमय प्रस्तुति महत्वपूर्ण होती है। फिर भी संग्रह की अधिकांश कविताएँ अपनी संरचना, भाषा और संवेदनात्मक प्रभाव के कारण समकालीन कविता का उल्लेखनीय उदाहरण बन जाती हैं।

“तुम्हारी चुप” कविता की पंक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

तुम उस समय बिल्कुल चुप थे

जब बहुत आवश्यक था

तुम्हारा बोलना...!

समय अक्सर मौन लोगों को, इतिहास के कटघरे में खड़ा कर देता है, क्योंकि अन्याय के पक्ष में खड़ी सबसे बड़ी शक्ति कई बार चुप्पी ही होती है। यह कविता उन लोगों के मौन पर करारा प्रहार करती है, जो सामाजिक विसंगतियों को देखते हुए भी चुप्पी साध लेते हैं।

184 पृष्ठों में फैली यह काव्य-कृति “प्रवेश”, “प्रकृति”, “प्रेम”, “प्रतिरोध” आदि खंडों में विभाजित है। “घर”, “जाने की उम्र”, “गति”, “जंग लगी संभावना”, “ठंड की शामें”, “सुनो कालिदास”, “युद्ध के समय में”, “पिता”, “भय के साए में”, “एलियन”, “तानाशाह की हँसी” और “तुम्हारी चुप्पी” जैसी कविताएँ पाठकों को गहरे स्तर पर प्रभावित करती हैं।

आज जब मुक्तछंद के नाम पर अत्यधिक लंबी और बोझिल कविताएँ लिखी जा रही हैं, तब पंकज सुबीर की छोटी-छोटी कविताएँ पाठकों को ठहरकर सोचने के लिए विवश करती हैं। यही कारण है कि सोशल मीडिया और डिजिटल साहित्य के दौर में ऐसी कविताएँ अधिक प्रभावशाली और लोकप्रिय बन रही हैं।

मैं वहाँ नहीं था

जब तुमको मेरी ज़रूरत थी,

मेरे हाथ का स्पर्श भी वहाँ नहीं था

जब तुम्हारे दर्द को उसकी ज़रूरत थी...!

मनुष्य की सबसे बड़ी पीड़ा यही है कि वह अपनों के लिए, अक्सर उसी समय अनुपस्थित होता है, जब उसकी उपस्थिति सबसे अधिक आवश्यक होती है।

इन पंक्तियों में आधुनिक मनुष्य की आत्मकेंद्रित होती संवेदना का अत्यंत मार्मिक चित्र उपस्थित हुआ है।

समझाया जा रहा है कि

आत्मकेंद्रित बनो,

केवल अपने ही बारे में सोचो,

मानो तुम अकेले ही हो दुनिया में...!

लेकिन मनुष्य केवल अपने लिए जीकर, कभी पूर्ण नहीं हो सकता, दूसरों के दुःख में शामिल होना ही उसे सचमुच मनुष्य बनाता है।

कवि ने अपनी इस कविता में आधुनिक समय की संवेदनहीनता और आत्मकेंद्रित जीवन-दृष्टि पर अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रहार किया है।

कवि केवल सामाजिक और पारिवारिक विसंगतियों को ही नहीं, बल्कि अपने अंतर्मन की कमजोरियों और विडंबनाओं को भी ईमानदारी से अभिव्यक्त करता है। यही इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है।

“उम्मीद की तरह लौटना तुम” मानवीय संवेदनाओं, अंतर्वेदना, प्रतिरोध और सकारात्मक सोच की श्रेष्ठ कविताओं का महत्त्वपूर्ण संग्रह है। यह कृति समकालीन हिंदी कविता में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में पूर्णतः सफल सिद्ध होती है।

उपन्यास, कहानी और व्यंग्य जैसी विधाओं में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित करने के बाद जब पंकज सुबीर कविता के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो वे अपने अंतर्मन को पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ पाठकों के सामने खोलकर रख देते हैं। यही आत्मिक खुलापन उनकी चर्चित लंबी कविता ‘देहगाथा’ में भी दिखाई देता है। स्वयं कवि ने स्वीकार किया है कि कविता-सृजन की उनकी लंबी यात्रा पिता के देहावसान के बाद आरंभ हुई। अपनी कविताओं के संदर्भ में उन्होंने अत्यंत मार्मिक शब्दों में लिखा है कि किसी प्रिय व्यक्ति के सदा के लिए चले जाने के बाद भीतर कैसी रिक्तता जन्म लेती है, यह अनुभव उनके लिए बिलकुल नया था। उन्हें लगा मानो उनके व्यक्तित्व का एक बड़ा हिस्सा टूटकर बिखर गया हो। पिता के निधन के बाद वे अपने भीतर एक गहरा सूनापन और अथाह शून्य महसूस करने लगे थे।

इसी मानसिक अवस्था में तीसरे दिन प्रातः वे अन्यमनस्क होकर मेज पर बैठे। सामने रखे कागज और कलम को उठाया और अनायास लिखना शुरू कर दिया। जो शब्द कागज पर उतर रहे थे, वे कविता का रूप ले रहे थे— “पिता, तीन दिन बीत गए...”।

अगले दिन फिर एक कविता लिखी गई और उसके बाद यह सिलसिला निरंतर चलता रहा। प्रारंभिक कविताएँ पिता की स्मृतियों और उनसे जुड़े भावलोक पर केंद्रित थीं, किंतु धीरे-धीरे जीवन और समाज के अनेक विषय उनमें शामिल होते गए। इस प्रकार इस काव्य-संग्रह की कविताओं का जन्म हुआ।

कवि की यह आत्मस्वीकृति केवल एक व्यक्तिगत संस्मरण नहीं, बल्कि उनकी रचनात्मक चेतना की जड़ों तक पहुँचने का माध्यम है। इसलिए इसका उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि इससे पाठक कवि की संवेदनात्मक यात्रा को अधिक निकटता से समझ पाता है और फिर इन कविताओं को केवल पढ़ता नहीं, बल्कि आत्मसात भी करता है।

पिता को समर्पित उनकी प्रारंभिक कविताएँ— ‘रबाब: एक मुसलसल इश्क’, ‘गौतम राज ऋषि के लिए’, ‘लिफाफा’, ‘ताना-बाना’, ‘तुम पीले और उदास आँखें’

तथा 'विश्वास'— इस संग्रह में सम्मिलित हैं। यद्यपि ये कविताएँ अपेक्षाकृत पुरानी हैं, किंतु जो कविता अपने समय का सच कहती है और जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करती है, वह कभी पुरानी नहीं होती। उसकी प्रासंगिकता समय के साथ और अधिक गहरी होती जाती है।

'गौतम राज ऋषि के लिए' कविता में एक शायर के दर्द, उसकी तन्हाई और उसके इश्क की तपिश को कवि अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं—

कभी—कभी ऐसा लगता है
ठंड की गहरी और उदास रातों में
दूर तक फैला हुआ जो कोहरा है,
उसकी सिगरेट का धुआँ है।

और कविता के अंत में वे लिखते हैं—
सिगरेट का धुआँ

इश्क को मुकम्मल करता है!
दुआएँ दो उस शायर को,
जो अपना कलेजा फूँककर
दुनिया को इश्क के काबिल बना रहा है।

निस्संदेह, इश्क केवल जीवन को आकार ही नहीं देता, बल्कि मनुष्य को मनुष्य बने रहने की तहजीब भी सिखाता है। पंकज सुबीर की कविताएँ तमाम पीड़ाओं, विडंबनाओं और कुंठाओं के बीच भी प्रेम, संवेदना और मानवीय सरोकारों की ओर लौटती हैं। उनकी कविताओं में उपस्थित यह इश्क निजी भावुकता नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का रूप ग्रहण कर लेता है। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ नफ़रत, हिंसा और अत्यधिक व्यस्त होती जा रही दुनिया के बीच मनुष्यता की लौ जलाए रखने का प्रयास करती दिखाई देती हैं।

सामान्यतः कविता—संग्रह यदि डेढ़ सौ पृष्ठों से अधिक का हो जाए तो उसमें एकरसता आने का खतरा रहता है, किंतु पंकज सुबीर का यह 186 पृष्ठों का संग्रह 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' इस आशंका को निर्मूल कर देता है। यह पुस्तक पाठकों को कहीं भी बोझिल नहीं लगती। विशेष रूप से उन पाठकों को यह संग्रह अधिक आकर्षित करेगा जो कविता में भाव, विचार, संवेदना, आत्मचिंतन और सामाजिक सरोकारों का समन्वय देखना चाहते हैं।

आत्मसंघर्ष और आत्मचेतना को जागृत करने वाले विचार उनकी अनेक कविताओं में दिखाई देते हैं। 'समाप्त असहमतियाँ' कविता इसकी एक उल्लेखनीय मिसाल है—

कितना अच्छा लगता है
जब समाप्त हो जाती हैं सारी असहमतियाँ,
हम जो कुछ भी कहते हैं, करते हैं,
उस पर हर तरफ स्वीकार में हिलते हुए सिर नजर आते हैं,
कहीं कोई उठा हुआ हाथ दिखाई नहीं देता...

यहाँ 'उठा हुआ हाथ' केवल विरोध का प्रतीक नहीं है, बल्कि स्वतंत्र चिंतन, लोकतांत्रिक चेतना और असहमति के अधिकार का भी संकेतक है। कविता का यही उठा हुआ हाथ आगे चलकर कवि की बंधी हुई मुट्ठी में परिवर्तित हो जाता है। समकालीन कविता के सौंदर्यबोध और वैचारिक प्रतिबद्धता का यह अत्यंत प्रभावशाली उदाहरण है।

इस संग्रह की कई कविताओं में कवि नए प्रतिमान और नए मुहावरे गढ़ने का सफल प्रयास करते हैं। वे परिचित अनुभवों को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं। 'फर्क' शीर्षक कविता में मनुष्य की मानसिक चेतना और धरती की निस्वार्थता को अत्यंत सरल किंतु प्रभावी ढंग से व्यक्त किया गया है—

बहुत फर्क होता है किसान और धरती में,
किसान बीज डालता है,
धरती उस बीज को पौधे के रूप में तैयार करती है,
किसान उस पौधे से परिणाम चाहता है,
किंतु धरती का कोई स्वार्थ नहीं होता।

इन पंक्तियों की सहजता ही इनकी सबसे बड़ी शक्ति है। जीवन के गहरे दार्शनिक सत्य को इतनी सरल भाषा में व्यक्त कर देना आसान नहीं होता। मानसिक द्वंद्वों और जटिल अनुभूतियों को कविता में रूपांतरित करना एक कठिन साधना है, और पंकज सुबीर इस साधना में पर्याप्त सफल दिखाई देते हैं। यही इस संग्रह की प्रमुख विशेषताओं में से एक है।

समग्रतः 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' केवल कविताओं का संग्रह नहीं, बल्कि संवेदनाओं, स्मृतियों, प्रेम, प्रतिरोध, आत्ममंथन और मानवीय विश्वास की एक लंबी यात्रा है। इसका आकर्षक आवरण चित्र भी शीर्षक की तरह आशा और उजास का भाव जगाता है। मुझे विश्वास है कि उनकी अन्य चर्चित कृतियों की तरह यह काव्य-संग्रह भी पाठकों के बीच अपनी विशिष्ट पहचान बनाएगा। विशेष रूप से ऐसे समय में, जब पाठकों का एक वर्ग कविता से दूर होता जा रहा है, यह पुस्तक उन्हें पुनः कविता की ओर लौटने के लिए प्रेरित करने की क्षमता रखती है। सच तो यह है कि 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' अपने शीर्षक की तरह ही पाठकों को संवेदना, विचार और कविता के संसार में लौट आने का आत्मीय आमंत्रण देती है।



परिचय

पंकज सुबीर— हिंदी के चर्चित कथाकार, उपन्यासकार कहानीकार, व्यंग्यकार एवं संपादक। इनकी प्रमुख कृतियों में— 'अकाल में उत्सव', जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज था', 'ईस्ट इंडिया कंपनी' (कहानी संग्रह), तथा 'यायावर' (यात्रा-वृत्तांत) आदि शामिल हैं। राजेंद्र याद हंस कथा-सम्मान, वागीश्वरी पुरस्कार सहित अनेक साहित्यिक सम्मानों से सम्मानित।

संपर्क

पंकज सुबीर: पी.सी. लैब, शॉप न. 3-4-5-6 सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्यप्रदेश-466001, मोबाइल-9977855399, ई-मेल: subeerin@gmail.com

परिचय

सिद्धेश्वर वरिष्ठ साहित्यकार, चित्रकार और पूर्व मध्य रेल से सेवानिवृत्त अधिकारी हैं। इन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में दस हजार से अधिक रचनाएँ, आठ हजार से अधिक रेखाचित्र तथा 'बूंद-बूंद सागर' व 'इतिहास झूठ बोलता है, जैसी कई पुरस्कृत पुस्तकें रची हैं। इन्हें प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त और अज्ञेय सम्मान सहित दर्जनों राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

संपर्क

सिद्धेश्वर— 'सिधेश सदन', अवसर प्रकाशन (किड्स कार्मल स्कूल के बाएँ) द्वारिकापुरी रोड न.-02, हनुमान नगर, कंकड़बाग, पटना-800026 (बिहार), मोबाइल-9234760365, ई-मेल: sidheshwarpoet.art@gmail.com

शब्द सजगता से भाषिक—संपन्नता तक

सुशांत कुमार पाण्डेय

भाषा मनुष्य की सबसे विलक्षण सृष्टि है और शब्द उस चेतना के बीज हैं, जिनसे भावों का वृक्ष फलता है। जब कोई लेखक शब्दों को केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि साधना का साध्य मानकर उनकी आत्मा तक पहुँचना चाहता है, तो वह केवल एक पुस्तक नहीं रचता— वह एक 'शब्द—यज्ञ' करता है। प्रसिद्ध भाषाविद् और व्युत्पत्तिशास्त्री कमलेश कमल की नवीनतम कृति 'शब्द—संधान' इसी यज्ञ की अग्निशिखा है, जहाँ शब्दों की आहुति देकर अर्थ और अभिप्राय का पुनर्जन्म कराया गया है।

कमलेश कमल शब्द—साधना में तल्लीन साधक हैं। 'भाषा—संशय—शोधन' जैसी बहुचर्चित और लोकप्रिय कृति के पश्चात् यह पुस्तक इस बात की पुनः पुष्टि करती है कि उनके लिए भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक उत्तरदायित्व है। शब्द उनके लिए 'जियावनहारा' हैं। वे मानते हैं— 'शब्द नित्य है, शब्द ब्रह्म है। एक ही वाणी कभी दीर्घायित—विलंबित होती है तो कभी प्रकंपित, तो कभी जपित।' यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि कमलेश कमल शब्द को केवल रूप और उच्चारण तक सीमित नहीं मानते; उनके लिए शब्द एक जीवंत सत्ता है, जिसका आत्म—साक्षात्कार 'संधान' द्वारा ही संभव है।

'शब्द—संधान' पुस्तक तीन खंडों में विभाजित है: 'शब्द—संधान', 'शब्द—संधान के सूत्र', और 'शब्द—संकलन'। यह विभाजन न केवल विषयवस्तु की दृष्टि से सुव्यवस्थित है, बल्कि क्रमशः पाठक को गहराई की ओर ले जाता है।

प्रथम खंड— 'शब्द—संधान':

इस खंड में 100 शीर्षकों के अंतर्गत बहुप्रयुक्त और भ्रमजनक शब्दों की व्युत्पत्ति, प्रयोग और सूक्ष्म भेदों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यहाँ लेखक द्वारा 'संधान' शब्द का प्रयोग पूर्णतः न्यायोचित है। प्रमाण के तौर पर 'साधारण, सामान्य, सहज, सरल और आसान' जैसे लगभग समानार्थी संदर्भों में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति एवं

पुस्तक— शब्द संधान: कमलेश कमल, प्रभात प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष—2025, मूल्य— 500 /— पृष्ठ संख्या— 2031

उनका अर्थ सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार "आजादी, स्वाधीनता, स्वतंत्रता, स्वच्छंदता और उच्छृंखलता" जैसे अनेकानेक शब्द-युग्मों के अंतर को लेखक ने व्युत्पत्तिगत और प्रयोगात्मक प्रविधि से सुस्पष्ट किया है। ये सभी 100 अध्याय भाषिक चेतना की दृष्टि से पठनीय और अत्यंत उपयोगी हैं। लेखक के दृष्टिकोण को समझने के लिए भूमिका से यह उद्धरण द्रष्टव्य है—

हिंदी का शब्द—संसार अत्यंत विपुल है। यह अध्येता पर निर्भर करता है कि वह इस समुद्र से ज्ञान के कितने मोती चुनकर संतुष्ट होता है। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है— हिंदी में 'नीरज' का अर्थ कभी 'कमल' होता है, तो कभी 'मिट्टी रहित'। 'निर्+ रज्' से व्युत्पन्न 'नीरज' का अर्थ 'मिट्टी रहित' होता है, जबकि 'नीर + ज' से व्युत्पन्न होकर यह 'कमल' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इतना ही नहीं, कमल के पर्यायवाची शब्दों— 'पंकज', 'जलज', 'सरोज' इत्यादि का प्रयोग भी प्रसंगानुसार निर्धारित होता है। यही तो हिंदी शब्द—संस्कार की सूक्ष्मता और विविधता है।

भूमिका में ही अन्यत्र लिखा है—

वस्तुतः, यह पुस्तक केवल शब्दार्थ का उद्घाटन नहीं करती; अपितु यह भाषा के प्रति भावनात्मक आस्था, सांस्कृतिक जुड़ाव और भाषिक अनुशासन की पुनर्स्थापना का एक विनम्र प्रयास है। उदाहरण के लिए— 'प्रमाण' से बने दो शब्द 'प्रमाणित' और 'प्रामाणिक' को देखें तो यह जिज्ञासा हो सकती है कि प्रमाणित की भाँति प्रामाणिक क्यों नहीं बनता; 'प्रामाणिक' क्यों बनता है। इसके लिए आदिवृद्धि के व्याकरणिक नियमों को सार रूप में जानना आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार हिंदी प्रेमियों के लिए यह जानना रोचक हो सकता है कि एक जैसे प्रतीत होने वाले तीन शब्द— 'रमणीय', 'माननीय' और 'स्थानीय' की निर्माण—प्रक्रिया एक नहीं है, बल्कि अलग—अलग है। 'रम्' और 'मान्' में 'अनीय' प्रत्यय जुड़ता है, जबकि 'स्थान' में 'ईय'। यह भी जानना रोचक हो सकता है कि 'रम्' और 'अनीय' से 'रमनीय' क्यों नहीं बनता, रमणीय क्यों बनता है।

द्वितीय खंड— 'शब्द—संधान के सूत्र':

इस खंड में आठ अध्याय हैं। लेखक यहाँ यह प्रतिपादित करते हैं कि शब्दों की संरचना में गणितीय सूत्रों की भाँति एक तार्किक नियमबद्धता होती है। मात्रा के तनिक परिवर्तन से अर्थ में भारी भिन्नता आ सकती है— यह केवल पिंगलशास्त्र नहीं, भाषा के गहन अभ्यास का भी अंग है।

इस खंड में 'हिंदी शब्दों के अर्थ का न करें अनर्थ', 'बिस्किट का बिस्कुट बनना' आदि अध्याय अत्यंत विचारोत्तेजक और रोचक हैं। 'हिंदी के साथ हुई त्रासदी' नामक लेख में लेखक तीखे शब्दों में लिखते हैं:—

'हिंदी की तत्सम संपन्नता को इससे विलग कर दिया गया और इसे उर्दू के करीब लाने की कोशिश की गई।' यह अध्याय भाषाशास्त्र के साथ—साथ भाषा—राजनीति के विमर्श को भी इंगित करता है।

तृतीय खंड— 'शब्द-संकलन':

इस खंड में हिंदी के पर्यायवाची, विलोम एवं श्रुतिसम भिन्नार्थक शब्दों की विस्तृत सूची दी गई है। यह संकलन एक जीवंत कोश की तरह है, जो न केवल विद्यार्थियों और प्रतियोगिता परीक्षार्थियों के लिए, बल्कि लेखकों, पत्रकारों, शिक्षकों और भाषाशोधकर्ताओं के लिए भी अत्यंत उपयोगी है।

लेखक का उद्देश्य केवल संग्रह देना नहीं, बल्कि शब्दों के प्रयोग, संदर्भ और भिन्नता को समझने की दृष्टि प्रदान करना है।

भाषा के प्रति दृष्टिकोण: समरसता और गरिमा

कमलेश कमल की भाषा-दृष्टि न तो शुद्धतावादी रूढ़ियों में बंद है, न ही नव-प्रयोगवाद की अव्यवस्था में डूबी हुई। वे भाषा को जीवंत मानते हैं और लिखते हैं:-

“शब्दों का चुनाव केवल व्याकरण की दृष्टि से नहीं, भाव की गरिमा को ध्यान में रखते हुए भी होना चाहिए।”

यह संतुलन इस पुस्तक की सबसे बड़ी शक्ति है। उन्होंने जहाँ एक ओर तत्सम शब्दों की गरिमा को प्रतिष्ठित किया है, वहीं लोक और जनभाषाओं से आए शब्दों को भी उचित स्थान दिया है। उनकी दृष्टि समन्वय की है— पर समर्पण की नहीं।

शैली, प्रस्तुति और भाषा

‘शब्द-संधान’ की भाषा विद्वत्तापूर्ण होते हुए भी बोझिल नहीं है। लेखक ने भाषिक विवेचन को संवादधर्मी और लोकप्रिय शैली में ढालने का सफल प्रयास किया है। परिणामस्वरूप यह पुस्तक केवल भाषाविदों या शोधार्थियों तक सीमित नहीं रह जाती, बल्कि सामान्य पाठक भी इसे आत्मीयता से पढ़ सकता है।

लेखक की शैली विश्लेषणात्मक है, किंतु उसमें व्याख्या की सरसता और भाव की गरिमा का अद्भुत समन्वय है। कहीं-कहीं व्यंग्य की आँच और चुटीले उद्धरण पुस्तक को और अधिक जीवंत बनाते हैं— जैसे: “सूर्या मतलब सूरज नहीं होता।”

प्रकाशन और सामग्री

प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित यह कृति मुद्रण, आवरण और संयोजन की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। पुस्तक का प्रारूप ऐसा है कि वह संदर्भ ग्रंथ के रूप में भी उपयोगी है और शौकिया पठनीय सामग्री के रूप में भी।

300 पृष्ठों की यह पुस्तक हिंदी भाषा की विकास-यात्रा, उसकी चुनौतियों और उसके उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं को एक नई दृष्टि से प्रस्तुत करती है। यह केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि भाषा के प्रति एक सजग, सन्नद्ध और समर्पित लेखक की भावांजलि है।

‘शब्द-संधान’ उन दुर्लभ कृतियों में से है जो केवल ज्ञान नहीं देती, दृष्टि देती है। यह पुस्तक बताती है कि भाषा की गहराई तक पहुँचने के लिए केवल शब्दकोश

या व्याकरण नहीं, संवेदनशीलता और संशोधनशीलता भी चाहिए। कमलेश कमल की यह साधना हमें सिखाती है कि भाषा जीवित तभी रहती है जब उसका आत्ममंथन होता रहे। और यह आत्ममंथन ही 'संधान' है। भाषिक संस्कृति के क्षरण के इस दौर में कमलेश भाषिक संस्कारों का संवर्धन करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि शब्द-संधान के द्वारा शब्द-चिंतन को स्वभाव बना लिया जाए। यह कृति हर उस व्यक्ति की पाठ्य-सूची में होनी चाहिए जिसे भाषा से प्रेम है और जो शब्दों को केवल लिखने-पढ़ने का उपकरण नहीं, बल्कि गरिमापूर्ण जीवन का एक आवश्यक उपकरण मानता है।



परिचय

कमलेश कमल— चर्चित वैयाकरण एवं भाषा विज्ञानी। विगत 22 वर्षों से शब्दों की व्युत्पत्ति एवं शुद्ध प्रयोग पर सतत लेखन। संप्रति— संपादक, 'राष्ट्रवाक्' पत्रिका।

संपर्क

कमलेश कमल : ब्लॉक-2, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स लोधी रोड, नई दिल्ली-110003
मोबाइल-7051734688, ई-मेल: kamalkeekalam@gmail.com

परिचय

सुशांत कुमार पाण्डेय— वरिष्ठ शोध अध्येता, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय।
वर्तमान में स्वतंत्र भाषा समीक्षक व संपादक के रूप में कार्यरत।

संपर्क

सुशांत कुमार पाण्डेय: वरिष्ठ शोध अध्येता, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी, उत्तर प्रदेश-221005, मोबाइल-9015538065,
ई-मेल: kumarsushant187@gmail.com

सहज अनुभवों का संचय : पृथ्वी घूम रही है

श्यामसुंदर पाण्डेय

‘पृथ्वी घूम रही है’ उमाकांत खुबालकर जी का पाँचवाँ कहानी-संग्रह है। नीरज बुक सेंटर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित यह संग्रह आकाशवाणी, दूरदर्शन, केंद्रीय हिंदी निदेशालय आदि महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में लंबे समय तक सेवा कर चुके खुबालकर जी के अनुभव का एक विस्तृत फलक है। यही कारण है कि प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ समाज के विविध पक्षों की आधारभूमि पर केंद्रित हैं। ‘खुबालकर जी को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिए यह समस्त सामग्री ऐसे ही मिली है जिसे उन्होंने लंबे समय से सहेजकर रखा और जीवन के अनुभवों से सनी यह सामग्री की पोटली जब बड़ी और भारी हो गई तो उन्होंने यह पोटली इस कहानी के माध्यम से हमारे सामने खोल दी है बड़ी-छोटी कुल बाईस कहानियों के इस संग्रह में अंतिम ग्यारह छोटी-छोटी कहानियाँ हैं जिन्हें लघु कथाओं की श्रेणी में भी रखा जा सकता है। इस संग्रह की प्रथम कहानी ‘प्रतिघात’ प्रेम और चरित्रहीनता पर केंद्रित है। जहाँ अधेड़ उम्र की शिल्पा अमीर पति की मृत्यु के बाद प्रेमी कमल के साथ रहते हुए अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से विमुख हो जाती है। यहाँ तक कि अपनी बेटी बिब्बो के विवाह में आने तक से मना कर देती है। वहीं उसके घर की नौकरानी कम्मो का प्रेमी दिनेश कमल की हत्या इसलिए कर देता है कि उसने पहले कम्मो की इज्जत पर हाथ डाला था। कहानी भारतीय समाज की मनोभूमि का यथार्थ प्रस्तुत करती है। जहाँ अधेड़ावस्था का प्रेम आज भी स्वीकार्य नहीं है और ऐसे प्रेमियों की हत्या ही समस्या का एकमात्र निदान मान लिया जाता है। यही कारण है कि कमल की मृत्यु पर ‘घर में आनंद का सैलाब उमड़ रहा है और दूसरी तरफ बड़ी बहू (शिल्पा) जमीन पर अपना सर पटक-पटककर रो रही है। संग्रह की दूसरी कहानी ‘परावर्तन’ महानगरीय जीवन व्यस्तताओं के बीच छीजते मानव संबंधों को बयाँ करती है। विकास की अंधी दौड़ में शामिल ‘और-और-और’ की तलाश में व्याकुल हम अपने प्राथमिक कर्तव्यों को भी भूलते जा रहे हैं। यद्यपि इस दौड़ की कोई मंजिल निश्चित नहीं हो पा रही है जिस

पुस्तक— ‘पृथ्वी घूम रही है’: उमाकांत खुबालकर, नीरज बुक सेंटर, प्रकाशन वर्ष—2024, मूल्य—250/- पृष्ठ संख्या—119।

पड़ाव पर ठहरकर हम थोड़ी 'सॉस' ले लें। यहाँ तक कि इस जिंदगी की बेतहाशा दौड़ में हम अपने रास्ते तक भटककर शहद में गिरी मक्खी की स्थिति में पहुँच रहे हैं।

कहानी में पति नितिन और पत्नी निकिता दोनों बड़े पदों पर कार्यरत हैं। भौतिक संसाधन भी इफरात में हैं लेकिन दोनों की बेचैनी इस बात की प्रमाण है कि घर सिर्फ दीवारों का घेरा नहीं होता। घर आने पर आदमी को घर के सदस्यों से स्नेह, प्रेम और अपनेपन के पाग में पगे दो मीठे बोल की तलाश भी होती है। यही अपनापन पत्रकारिता में बड़ा नाम रखनेवाले नितिन को जब व्यावसायिक रंगमंच के क्षेत्र में अपना भविष्य सजा रही निकिता से नहीं मिलता है तो उसका झुकाव नौकरानी भानु की तरफ होता है। कैरियर को ऊँचाइयों पर पहुँचाने की लालसा में व्यक्ति किस प्रकार अपनी मान-मर्यादाओं को आज तिलांजलि दे रहा है, इसका एक वास्तविक उदाहरण यहाँ तब मिलता है जब 'निकिता कभी-कभी लाइट मूड में कहा करती थी कि तुम भी कोई गर्लफ्रेंड ढूँढ लो न! जीवन की नीरसता खत्म हो जाएगी।' महत्वाकांक्षा की यह अंधी दौड़ उसे उस रास्ते तक पहुँचा देती है जहाँ एक माँ शादी के दस वर्ष बाद गर्भ में आए शिशु का गर्भपात करवा देती है और पति की उपस्थिति में ही प्रेमी को घर बुलाने लगती है। वहीं पति 'दिल पर पत्थर रखकर अकेलेपन से जूझता रहता है।' कहानी का अंत इस बात का संकेत करता है कि भटका हुआ व्यक्ति कभी सुख-शांति का जीवन नहीं जी सकता है। संग्रह की तीसरी कहानी 'पृथ्वी घूम रही है' मध्यवर्गीय परिवारों के झंझटों से जूझते एक पुरुष की छटपटाहट को व्यक्त करती है। नौकरी के लिए विधायक की कृपा से कांट्रेक्ट बेसिस पर नौकरी करने वाला सूरज अपनी बहन, माँ, दलितों द्वारा पुष्टैनी जमीन पर कब्ज़ा, बहन के विवाह में लिया गया कर्ज, बच्चों की महँगी पढ़ाई का खर्च, चाचा आदि संबंधियों द्वारा सामूहिक कार्यों से मुँह मोड़ लेने से उत्पन्न समस्याओं और पत्नी द्वारा इन सबके लिए दिए जाने वाले तानों आदि के बीच जिस प्रकार पिस रहा है वह मध्यवर्गीय परिवार के उस हर आदमी का दर्द है जो इन जिम्मेदारियों को लेकर चलता है।

कहानी पाठक के समक्ष मध्यवर्गीय समाज का सच प्रस्तुत करने में पूर्णतः सक्षम है। कहते हैं 'चेतन से अचेतन अधिक शक्तिशाली होता है।' प्रस्तुत संग्रह की कहानी 'नारी-अस्मिता' कुछ इसी भाव को लेकर चलती है जहाँ लाजवंती और भंवरी दो दुकानदारिनें आपस में व्यवसाय को लेकर ईर्ष्या-द्वेष रखती हैं, गाली-गलौज करती हैं, एक दूसरे को अपने-अपने शब्द बाणों से नीचा दिखाने का काम करती हैं लेकिन अंदर ही अंदर एक दूसरे की लाचारियों को भी समझती हैं। यही कारण है कि एक के मान-सम्मान पर हमला होते देखकर दूसरी पूरी निडरता के साथ उस हमलावर का प्रतिरोध करती है। अपनी ही पत्नी को अपमानित होते देखकर भी जहाँ पति मौन

रहता है वहाँ एक महिला का प्रतिरोध नारी जागरण का ही उदाहरण है। समाज में महिलाओं के बीच इसी कमी को महसूसते हुए कथा सम्राट प्रेमचंद जी ने लिखा कि 'कुल्हाड़ी लकड़ी को इसलिए काटती है कि उसकी बेंत लकड़ी की होती है।' प्रस्तुत कहानी यहाँ उसी कमी को पूरी करती दिखाई देती है।

'अपराधी का न्याय तंत्र' कहानी पीढ़ीगत संस्कारों के टकराहट की अनुगूँज है। कहानी के मुख्य पात्र नौकरी से अवकाश प्राप्त प्रो. रामधन जिस मानसिक यंत्रणा से गुजर रहे हैं वह पिछली पीढ़ी का वास्तविक दर्द है। कोरोनाकाल के उपरांत प्रारंभ घर बैठे ऑनलाइन नौकरियों ने इस पीढ़ी के जले पर नमक छिड़कने का काम किया है। जब इस पीढ़ी को अपने बच्चे दिखाई तो घर में ही देते हैं लेकिन इनकी बातों में जब शामिल नहीं होते तो इन्हें चिढ़ होती है। युवा पीढ़ी की बढ़ती खीझ और झुझलाहटें भी इन्हें व्यथित करती हैं। लेखक बड़ी साफगोई के साथ यह संदेश देने में सफल हो जाता है कि बच्चे बूढ़ों से उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं जैसा अपने माता-पिता का देखते हैं। इन बच्चों में प्रेमचंद के हामिद की चेतना नहीं है बल्कि इन्हें लगता है कि 'इधर मेरी साइकिल चोरी चली गई और आप (दादा जी) मजे से सो रहे हैं। कहानी का एक पक्ष अंतरजातीय विवाहों की स्वीकृति का संदेश भी देता है जिसका समर्थन एक अपराधी द्वारा किया जाता है। 'अपहृत दिशाएँ' कहानी के पात्र अपने-अपने विचारों एवं कार्यों से सचमुच अपहृत ही लगते हैं। यहाँ तक कि लेखक स्वयं कभी स्त्री विमर्श की किसी 'बोल्ड' लेखिका से प्रभावित लगते हैं तो कहीं लगता है कि शिक्षा विभाग से अति पीड़ित होने के कारण अपने मन का गुस्सा उड़ेल रहे हैं अथवा इन वर्गों की उन सच्चाइयों से हमें अवगत करा रहे हैं जिन पर अब तक मर्यादा का पर्दा पड़ा हुआ था। नवलेखक शिविर के प्रभारी शिवाकांत का चरित्र तो विभाग की ऐसी गतिविधियों को कठघरे में खड़ा कर देता है जो नए लेखकों को परिष्कृत-परिमार्जित करने के लिए आयोजित की जाती हैं। जिसके संबंध में 'माँ और बेटी दोनों को पटा लेने की बात कही जाती है। कहानी के मध्य में शिक्षा विभाग के जिन कुकृत्यों को चित्रित किया गया है वह घटनाएँ शिक्षा माफ़ियाओं की काली करतूतों का पर्दाफ़ाश करती हैं। यद्यपि कि 'दीपशिखा की बेटी शैलजा को जूनियर कॉलेज के अध्यापकों द्वारा इसलिए फ़ेल कर देना कि वह प्रिंसिपल के घर पर अकेले उनसे मिलने नहीं गई' और 'प्रिंसिपल की पत्नी रूमा बेन अपने घर पर स्कूल की मजबूर और निरीह बच्चियों से जबरन देह व्यापार कराती हैं।' ऐसी घटनाएँ पाठक को बड़ी आसानी से हजम नहीं होती हैं। क्योंकि, लाख कमियों के बाद भी इन विभागों पर सामान्यजन का विश्वास बना हुआ है लोग अपने बच्चों को इन स्थानों पर कुछ नया सीखने के लिए भेजते हैं। कहानी के उत्तरार्ध में शैलजा निशिकांत से कहती है कि 'अगर आप मेरी माँ से सच्चा प्यार करते हो तो अपनी पत्नी को तलाक देकर शादी

कर लो।' और, बात न बनते देखकर अपने परिचित फिल्म प्रोड्यूसर मुकुंद से अपनी माँ की शादी करवा देती है। लेकिन, वहाँ भी धनवान मुकुंद की नजर दीपशिखा की संपत्ति पर पड़ती है तो उसे वहाँ से भागना पड़ता है। संभवतः इसीलिए लेखक द्वारा इस कहानी का शीर्षक 'अपहृत दिशाएँ' रखा गया है। बेटी द्वारा अपनी माँ के लिए प्रेमी और पति की तलाश भारतीय समाज में आज भी 'बोल्डनेस' की पराकाष्ठा ही कही जायेगी।

'हुँकार' कहानी वर्तमान के उस नारी वर्ग का यथार्थ है जो घर और कार्यालय कई स्तरों पर अपने मान-सम्मान के लिए लड़ रही है। वहीं पुरुष वर्ग की नजर पत्नी की कमाई की एक-एक पाई पर तो रहती है लेकिन किसी दूसरे पुरुष से बात कर लेना, किसी से कुछ सहयोग ले लेना जैसे कार्य उसे अपने मान-सम्मान के विरुद्ध लगते हैं। पत्नी का स्कूटी चलाना उसे नापसंद है। नगरों-महानगरों में यही स्थिति हर वर्ग की महिलाओं की है। स्वाभाविक है कि घर का वातावरण कार्यालय के कार्यों और हमारे व्यक्तित्व दोनों को प्रभावित करता है। इन दोनों स्तरों पर लड़ती कावेरी एक दिन अपने दुराचारी पति से अलग होने का निर्णय कर लेती है 'अब इस अन्याय और शोषण पर विराम लगना चाहिए। होने दो हमारे कुल-परिवार की बदनामी। आखिर कब तक घुटती रहूँगी मैं।' इसके लिए वह पुलिस का सहयोग भी लेती है। नारी की यह हुँकार उसके बढ़ते आत्मविश्वास की परिचायक है। कार्यालयों में सहयोगियों द्वारा उड़ाई जाने वाली खिल्लियों और 'बॉस' की चाटुकारिता का भी सुंदर उदाहरण यहाँ दर्शनीय है। 'कर्मचारी तंत्र' कहानी सरकारी कर्मचारियों की उत्तरदायित्वहीनता और नकारात्मक भावों की वास्तविक अभिव्यक्ति है। इसके कथानक से गुजरते हुए वह हर पाठक जो सरकारी कार्यालयों की गतिविधियों से परिचित है उसे इस कहानी के पात्र लगभग सभी कार्यालयों में मिल जाएँगे। सरकारी कर्मचारियों की यही कर्महीनता और उनकी नकारात्मकता सरकारी विभागों का बंटोधार कर रही है। शिक्षा विभाग भी उससे अछूता नहीं है। नए शिक्षा अधिकारी के ज्वाइन करते ही नीचे के कर्मचारियों में इसलिए हड़कंप मच जाती है कि वह समय पर कार्यालय और विद्यालय पहुँचने की बात करता है जो कि सरकारी कर्मचारियों के मान-सम्मान के विरुद्ध है। कहा जाता है कि यदि किसी गाड़ी के सभी पुर्जे सड़े हुए हों तो उत्साही चालक भी उसे पर्याप्त गति नहीं दे पाता है। मनकूराम गुप्ता जैसे कर्मचारी आजीवन कार्यालय में 'देर से आना, जल्दी जाना' वाले सिद्धांतों पर चलते हैं और अधिकारियों को 'देख लेंगे' जैसी धमकियाँ देने से भी नहीं हिचकते हैं। यहाँ तक कि ड्राइवर तक उस अधिकारी के साथ असहयोग करता है और अंत में कुत्तों के गुराने पर उसे 'प्लीज मुझे, बचा लो। ये सभी मुझे काट खाएँगे।' जैसी बातें करते हुए, कहते हुए उन्हीं कामचोरों से गुहार लगानी पड़ती है। पृष्ठ संख्या की दृष्टि से

यह कहानी भले ही छोटी है लेकिन सरकारी कार्यालयों का सच व्यक्त करने में पूर्णतः सक्षम है।

‘अथ कछुआ पुराण नवकथा’ कहानी है तो प्रतियोगिताओं में भेदभाव पर केंद्रित लेकिन छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से समाज की अनेक विडंबनाओं पर भी चोट करती है। उदाहरण के लिए ‘सभी कछुए स्वभाव एवं गति से गरीबी रेखा की तरह स्थिर मनोवृत्ति के होते हैं।’ इसी प्रकार ‘जब तक हमारी माँग पूरी नहीं होती है, हमारे सदस्य राजघाट पर आमरण अनशन पर बैठ जाएँगे।’ सभी क्षेत्रों में फैलते जाति, वर्ग आदि विभेदों और उनके प्रभावों का भी सुंदर अंकन यहाँ हुआ है। ‘कालचक्र’ कहानी मानवीय संबंधों पर केंद्रित है। स्त्री-पुरुष संबंधों के वे अनेक पक्ष उभरकर यहाँ आते हैं जिन्हे स्वाति और श्रीकांत ने अन्यों से छिपा रखा है। स्वाति का विवाह श्रीकांत से तय होने वाला है लेकिन उसके पहले ही वह श्रीकांत से मिलती है और एक बिल्डर के साथ अपने संबंधों की बात बताते हुए कहती है ‘मेरा यह अफेयर शादी के बाद भी जारी रहेगा। यह गुड प्रॉमिस है कि ताजिंदगी आपको कपड़े-लत्ते, खान-पान, ऐशो-आराम के लिए किसी बात की कमी नहीं रहेगी।’ यह प्रस्ताव श्रीकांत को अनपेक्षित नहीं लगता है क्योंकि वह कड़ी मेहनत के बाद भी बहुत कम वेतन कमा पाता है। यहाँ लेखक यह संकेत करना चाहता है कि आज व्यक्ति भौतिक सुखों के लिए अपने नैतिक मूल्यों की हत्या करने में भी नहीं हिचकता है। ‘आहुति’ कहानी रोहिणी जैसी उस शिक्षित और नौकरीशुदा युवती के जीवन पर केंद्रित है जो अपने जीवन के समस्त सुखों की आहुति दे देती है। वर्तमान में उच्च शिक्षित युवतियों के समक्ष अपनी बराबरी का लड़का न मिलना एक समस्या हो गई है। ये युवतियाँ स्वाभाविक रूप से अपनी योग्यता का पति ढूँढते हुए या अपने ‘कैरियर’ को ऊँचाइयों तक पहुँचाने के लिए प्रारंभ में विवाह करने से मना कर देती हैं और धीरे-धीरे उम्र एवं पद जब दोनों बढ़ जाते हैं तो उनकी बराबरी का कोई मिलता ही नहीं। निश्चित ही जीवन का अकेलापन इन्हें भी काटने दौड़ता है जिससे बचने के लिए इनके द्वारा तमाम उपाय किए जाते हैं। वहीं समाज की नज़रें भी इनके प्रति शंका से ही देखती हैं। ऐसे में भी रोहिणी स्वयं को एक अच्छी बेटि के रूप में प्रस्तुत करती है और छोटी बहन के प्रेम विवाह को घर के सदस्यों से मान्यता दिलवाती है।

‘तिर्यक रेखा’ और इसके बाद की सभी कहानियाँ छोटी-छोटी हैं जो समाज के अलग-अलग पक्षों पर केंद्रित हैं। ‘तिर्यक रेखा’ के माध्यम से लेखक द्वारा नंदिनी जैसी एक महिला की व्यथा-कथा का चित्रण किया गया है जो घर, कार्यालय, महँगाई और सामाजिक रिश्तों से ताल-मेल बैठाने की कोशिशों में अपना जीवन व्यतीत कर देती हैं। ‘तांडव’ कहानी आधुनिकता के नाम पर शरीर प्रदर्शन और धर्म के नाम पर होने वाले अंधविश्वासों पर व्यंग्य है। सच्चाई भी है कि एक तरफ भगवान

के नाम पर लाखों लीटर दूध बहा दिया जाता है और दूसरी तरफ गरीबों के बच्चे उचित भोजन के अभाव में कुपोषण के शिकार बन जाते हैं। 'युगबोध' कहानी गाँवों की जमीन बेचकर शहरों में घर खरीद लेने की मानसिकता पर करारी चोट करती है। स्पष्ट है कि कुछ दशक पहले जब गाँव के लोग जमीन को अपनी माँ कहते हुए बेचने से मना कर दिया करते थे उन्हीं के बच्चे जमीनें बेचने में खुशी का अनुभव कर रहे हैं। दलाली और ठेकेदारी के धंधे भी इसी खरीद-बिक्री की नींव पर खूब फल-फूल रहे हैं। 'जीते रहो बरखुरदार' कहानी में लेखक ने प्रौढ़ावस्था के प्यार को बड़े ही अनोखे अंदाज़ में प्रस्तुत किया है। जहाँ सबकी आँखों में धूल झोंककर घर का मुखिया अपनी प्रेमिका के साथ घर बसा लेता है। 'समीकरण' कहानी यह संदेश लेकर आती है कि आज बढ़ती महँगाई ने पारिवारिक जिम्मेदारियों और संबंधों का समीकरण बदल दिया है। 'फेलामिना आंटी' एंग्लोइंडियन परिवार की उस महिला पर केंद्रित है जो पति के जीते जी उसका सम्मान तो नहीं करती है लेकिन उसकी मृत्यु के बाद उसकी कमी उसे महसूस होती है। 'साक्षात्कार' कहानी 'कमाई अठन्नी खर्चा रुपैया' के सिद्धांत पर चलने वाले चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी दुर्गाप्रसाद और उसकी पत्नी के जीवन पर केंद्रित है। जीवनभर नौकरी के बाद पंडिताई करके अधिक खर्च करने वाले दुर्गाप्रसाद की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी का वेश्या व्यापार में लगना इस बात का संकेत है कि मन और खर्च दोनों पर अनियंत्रण व्यक्ति को विनाश के गर्त में ही ले जाता है। 'व्यथाकथा' कहानी नैतिक मूल्यों के पतन वाली जीवन शैली पर चोट करती है। यहाँ लाइन में अपने आगमन के अनुसार खड़े होना अपनी बेइज्जती समझी जाती है और लोग रूप एवं बल का प्रयोग करके पहले से खड़े वरिष्ठ लोगों को भी धक्का देते हुए आगे बढ़ जाते हैं। इसी प्रकार सकारात्मक सोच पर आधारित कहानी है 'इंतजाम'। यह कहानी 'जहाँ चाह वहाँ राह' का ही प्रतिबिंब है। 'गुरु दक्षिणा' कहानी एक डॉक्टर शिष्य द्वारा अपनी अध्यापिका को ठगने का रोचक दृश्य प्रस्तुत करती है। साथ ही आज पैसे के बल पर हर काम संभव है, के सिद्धांत पर व्यंग्य करती है। 'शोकांतिका' इस संग्रह की अंतिम कहानी है। जिसमें तार के जाल में फँसे एक कबूतर को बचाने में प्राप्त असफलता पर दुःख व्यक्त किया गया है।

संग्रह की समस्त कहानियाँ इस बात की प्रमाण हैं कि उमाकांत खुबालकर की तीखी नज़रें समाज के जिन पक्षों पर पड़ती हैं, रचनाकार उन पर विचार करता है और वही सच्चाईयाँ कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। इन कहानियों की भाषा पूर्णतः पात्रानुकूल और बोधगम्य है। इस नए कहानी संग्रह के लिए खुबालकर जी को हार्दिक बधाईयाँ।



परिचय:

उमाकांत खुबालकर— लेखक तथा कथाकार, पूर्व सहायक निदेशक वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग। पूर्व संपादक 'ज्ञान गरिमा सिंधु' (त्रैमासिक)।

संपर्क:

उमाकांत खुबालकर— 33/11, नोवा, अशोक रोड, शिप्रा सन सिटी, इंदिरापुरम, गाजियाबाद-201014, मो.—9868151357, ई—मेल: umakant.cstt@gmail.com

परिचय:

श्यामसुंदर पाण्डेय— प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, बी. के. बिड़ला महाविद्यालय, थाणे महाराष्ट्र।

संपर्क:

श्यामसुंदर पाण्डेय— प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, बी. के. बिड़ला महाविद्यालय, कल्याण थाणे (महाराष्ट्र)—421301, मो.—9820114571, ई—मेल: ssdpandey1@gmail.com

आपने लिखा

‘भाषा’ पत्रिका का मई-जून 2026 का अंक हिंदी पत्रकारिता के 200 वर्ष पूरे होने पर प्रकाशित किया गया है। पत्रकारिता से जुड़े पाठकों के लिए ही नहीं, बल्कि पत्रकारिता के अनेक आयामों पर लेखों को सहेजे यह विशेषांक सामान्य पाठकों के लिए भी उपयोगी है। इस अंक से गुजरते हुए हिंदी पत्रकारिता के इतिहास, उसके विकास तथा सामाजिक व राष्ट्रीय स्तर पर उसके योगदान को सरल और व्यवस्थित ढंग से जाना और समझा जा सकता है।

किसी भी पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के वैविध्य को, उसके उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए समग्रता के साथ पढ़ने के लिए संपादकीय महत्वपूर्ण अंश होता है। इस दृष्टि से संपादकीय में ‘उदन्त मार्तण्ड’ से शुरू हुई हिंदी पत्रकारिता की यात्रा और देश की आजादी तथा सामाजिक जागरूकता में उसकी भूमिका पर जिस प्रकार से प्रकाश डाला गया है वह उल्लेखनीय है।

विशेषांक में प्रकाशित हुए वैविध्यपूर्ण लेखों की बात करें तो पाते हैं कि देश के अलग-अलग राज्यों में हिंदी पत्रकारिता के विकास, स्त्री पत्रकारिता, बाल पत्रकारिता, आदिवासी पत्रकारिता, सोशल मीडिया और आज की पत्रकारिता की चुनौतियों पर कई अच्छे लेख शामिल हैं। इसके अलावा साक्षात्कार, संस्मरण और पुस्तक समीक्षा भी दी गई हैं, जिससे यह अंक और अधिक उपयोगी बन गया है।

लगभग सभी लेख जानकारीपूर्ण हैं और पाठकों को हिंदी पत्रकारिता के अतीत और वर्तमान दोनों से परिचित कराते हैं। यह विशेषांक शोधार्थियों, विद्यार्थियों, शिक्षकों और पत्रकारिता में रुचि रखने वाले सभी पाठकों के लिए उपयोगी है। कुल मिलाकर, भाषा का यह विशेषांक हिंदी पत्रकारिता की 200 वर्ष की यात्रा को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण और संग्रह योग्य प्रकाशन है।

डॉ. वेद मित्र शुक्ल, राजधानी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, राजा गार्डन,
नई दिल्ली-110015
मो. 9599798727



भाषा पत्रिका मई-जून 2026 का विशेषांक प्राप्त हुआ, हिंदीतर भाषी प्रांतों की हिंदी पत्रकारिता विषयक यह विशेषांक अपने संयोजन और संपादन में महत्वपूर्ण है। प्रधान संपादक की कलम से 1947 में आजाद भारत की लोकतांत्रिक भूमिका की व्याख्या के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका का संदर्भ, विभिन्न विद्वानों,

पत्रकारों, समाज सुधारकों एवं वीर सपूतों के ओजस्वी लेखन एवं भाषण का जिक्र करना ध्यान आकर्षित करता है। बदलते हुए समय में मीडिया की क्या भूमिका है, मीडिया किस तरह से समाज को जोड़ने का कार्य कर रही है, हिंदीतरभाषी पत्र-पत्रिकाओं की क्या स्थिति है, हिंदी ने किस तरह से हिंदीतरभाषी क्षेत्रों को जोड़ने का कार्य किया है इस तरह के महत्वपूर्ण संदर्भों का जिक्र करना पत्रिका संपादन में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में दर्शाया गया है। अन्य अनेक लेखों में जैसे— उदन्त मार्त्तण्ड एवं हिंदी पत्रकारिता, प्रौद्योगिकी मुद्रण एवं संप्रेषण, हिंदी गद्य का उन्नयन, पूर्वोत्तर भारत की सांस्कृतिक विविधता, हिंदी पत्रकारिता का पूर्वोत्तर भारत में विकास, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, नागालैंड, मिजोरम में पत्र-पत्रिकाओं की क्या स्थिति है साथ ही पत्रिका के इस अंक में भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में व्यंजित राष्ट्रीय आत्मबोध का स्वर उद्घाटित किया गया है।

यह अंक अपने महत्वपूर्ण आलेखों तथा संपादन कौशल को दर्शाता है। पत्रकारिता से संबंधित महत्वपूर्ण आलेखों को इसमें स्थान दिया गया है। पत्रिका का यह महत्वपूर्ण अंक पाठकों को पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सफल होगा। मैं इस अंक के सभी लेखकों तथा संपादक महोदय का आभार ज्ञापित करती हूँ।

प्रो. सुचिता त्रिपाठी
आर्य महिला पी.जी. कॉलेज
चेतगंज, वाराणसी।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड-7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली - 110066

ई-मेल - chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. - 011-26105211 एक्सटेंशन नं. 248, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए दिनांक से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय सदस्यता शुल्क रुपये, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. दिनांक भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम :
पूरा पता :
.....
.....
मोबाइल/दूरभाष :
ई-मेल :
संबद्धता/व्यवसाय :
आयु :
पूरा पता जिस पर :
पत्रिका प्रेषित की जाए :

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
एक प्रति का मूल्य	रु. 100.00
वार्षिक सदस्यता	रु. 500.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 5000.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in - Quick Payment - Ministry (007 Higher Education) Purpose (Education receipt)--- 211766 JR. ADMN. OFFICER, CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम, पूरा पता और दूरभाष भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की पत्राचार पाठ्यक्रम योजना

हिंदी पत्राचार पाठ्यक्रम योजना

हिंदीतरभाषी भारतीयों और विदेशियों के लिए पत्राचार द्वारा हिंदी सिखाने की योजना के अंतर्गत अंग्रेजी, तमिल, मलयालम और बांग्ला माध्यमों से एक-एक वर्षीय 'हिंदी सर्टिफिकेट कोर्स' तथा 'हिंदी डिप्लोमा कोर्स' संचालित किए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त उच्चस्तरीय छात्रों के लिए एडवांस हिंदी डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी संचालित किया जा रहा है। पत्राचार द्वारा हिंदी शिक्षण में आने वाली समस्याओं के निराकरण के लिए व्यक्तिगत संपर्क कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है जिनमें विद्यार्थियों की कठिनाइयों का व्यक्तिगत रूप से समाधान किया जाता है। वर्ष 2018 तक छह लाख से भी अधिक विद्यार्थी इस पाठ्यक्रम का लाभ उठा चुके हैं। 'हिंदी सर्टिफिकेट कोर्स' का उद्देश्य छात्रों को हिंदी का व्यावहारिक ज्ञान कराना है। इसके लिए 15 वर्ष से अधिक आयु के हिंदीतरभाषी भारतीय नागरिक प्रवेश के पात्र हैं। विदेश स्थित भारतीय नागरिकों, प्रवासियों तथा विदेशियों के लिए न्यूनतम आयु सीमा 10 वर्ष है। उनकी मातृभाषा कोई भी हो सकती है। 'हिंदी डिप्लोमा कोर्स' का उद्देश्य छात्रों को हिंदी का उन्नत ज्ञान कराना है। इनमें 'हिंदी सर्टिफिकेट कोर्स' परीक्षा अथवा गृह मंत्रालय की प्रवीण परीक्षा उत्तीर्ण व्यक्ति या हिंदी का समुचित ज्ञान रखने वाला व्यक्ति प्रवेश का पात्र है इसमें प्रवेश के लिए आयु सीमा कम से कम 12 वर्ष है। तीनों पाठ्यक्रम प्रतिवर्ष जुलाई से मई तक चलते हैं। एडवांस हिंदी डिप्लोमा पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए आयु सीमा कम से कम 14 वर्ष है। प्रवेशार्थियों को केंद्रीय हिंदी निदेशालय की डिप्लोमा परीक्षा अथवा हिंदी सहित दसवीं परीक्षा उत्तीर्ण होना आवश्यक है। प्रत्येक सर्टिफिकेट तथा डिप्लोमा का शुल्क भारत में रहने वालों के लिए 50.00 रुपए, विदेशों में रहने वालों के लिए 50.00 अमेरिकी डॉलर या 30.00 पाउंड है। एडवांस हिंदी डिप्लोमा पाठ्यक्रम के लिए यह शुल्क 200.00 रुपए है। विदेशों में रहने वालों के लिए 200.00 अमेरिकी डॉलर या 120.00 पाउंड है। यह राशि भारत में केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के नाम रेखांकित भारतीय पोस्टल ऑर्डर/बैंक ड्राफ्ट (ब्रिटिश पोस्टल ऑर्डर/अंतरराष्ट्रीय), जिसकी अदायगी भारत में नई दिल्ली स्थित किसी भी प्राधिकृत बैंक/डाकघर में हो सके, रजिस्ट्री डाक से भेजनी चाहिए।

देश के पूर्वोत्तर प्रदेशों के उन छात्रों के लिए अंग्रेजी माध्यम से सिविल सेवा हिंदी पाठ्यक्रम निःशुल्क चलाया जाता है, जिन्होंने आई.ए.एस. परीक्षा में 'भारतीय भाषा प्रश्नपत्र' के रूप में हिंदी को लिया है तथा जिनकी मातृभाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं है। इसका सत्र प्रतिवर्ष जनवरी से आरंभ होता है।

क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से हिंदी सीखने वालों के लिए अनेक स्वयं शिक्षक, बेसिक ग्रामर ऑफ मॉडर्न हिंदी, प्राइमर इत्यादि पुस्तकों और विविध भारतीय भाषाओं व अंग्रेजी कमेंट्री के साथ ऑडियो सीडी तथा वीडियो डी.वी.डी. का निर्माण किया गया है।

इसी योजना के अंतर्गत पर्यटकों और विद्यार्थियों के उपयोग के लिए विविध व्यावहारिक वार्तालाप-पुस्तिकाएँ प्रकाशित की गई हैं। लगभग 800 वाक्यों वाली अंग्रेजी-हिंदी, हिंदी-अंग्रेजी, तमिल-हिंदी, हिंदी-बांग्ला, हिंदी-कन्नड, हिंदी-कश्मीरी, हिंदी-असमिया और हिंदी-तेलुगु वार्तालाप पुस्तिकाएँ अब तक प्रकाशित की जा चुकी हैं। इन वार्तालाप पुस्तिकाओं को देखने पर स्पष्ट होता है कि भारतीय भाषाएँ एक-दूसरे के बहुत निकट हैं।

भाषांतरित वृत्तचित्र/वीडियो कार्यक्रमों का विवरण

- | | |
|--|--|
| 1. हिंदी में लिंग का आधार (बांग्ला) | 14. रामचंद्र शुक्ल (मलयालम) |
| 2. मुंशी प्रेमचंद एपिसोड - 1 (बांग्ला) | 15. हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना भाग 1 (मलयालम) |
| 3. मुंशी प्रेमचंद एपिसोड - 2 (बांग्ला) | 16. हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना भाग 2 (मलयालम) |
| 4. संत कबीर (बांग्ला) | 17. हिंदी कहानी का विकास (भाग-1) (मलयालम) |
| 5. रामचंद्र शुक्ल (बांग्ला) | 18. हिंदी कहानी का विकास (भाग-2) (मलयालम) |
| 6. हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना भाग 1 (बांग्ला) | 19. मुंशी प्रेमचंद एपिसोड - 1 (तमिल) |
| 7. हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना भाग 2 (बांग्ला) | 20. मुंशी प्रेमचंद एपिसोड - 2 (तमिल) |
| 8. हिंदी कहानी का विकास (भाग-1) (बांग्ला) | 21. कबीर (तमिल) |
| 9. हिंदी कहानी का विकास (भाग-2) (बांग्ला) | 22. रामचंद्र शुक्ल (तमिल) |
| 10. हिंदी में लिंग का आधार (मलयालम) | 23. हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना भाग 1 (तमिल) |
| 11. मुंशी प्रेमचंद एपिसोड - 1 (मलयालम) | 24. हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना भाग 2 (तमिल) |
| 12. मुंशी प्रेमचंद एपिसोड - 2 (मलयालम) | 25. हिंदी कहानी का विकास (भाग-1) (तमिल) |
| 13. कबीर (मलयालम) | 26. हिंदी कहानी का विकास (भाग-2) (तमिल) |

